

MAHL 602



उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्याशाखा
नाटक एवं कथेत्तर साहित्य (भाग एक)
तृतीय सेमेस्टर 602

नाट्य



विशेषज्ञ समिति

प्रो. एच.पी.शुक्ल
मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्तविश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो.सत्यकाम
हिन्दी विभाग
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो.आर.सी.शर्मा
हिन्दी विभाग
अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़

डॉ. राजेन्द्र कैड़ा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ. शशांक शुक्ला
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डॉ. राजेन्द्र कैड़ा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ. शशांक शुक्ला
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. सविता मोहन पूर्व निदेशक, उत्तराखण्ड भाषा संस्थान, देहरादून	1
डॉ. शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	2, 3, 4, 5, 9, 10,
डॉ. प्रभा पंत हिन्दी विभाग, एम. बी. पी. जी. कॉलेज, हल्द्वानी	6, 7, 8

कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2022

प्रकाशक: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल -263139

मुद्रक : प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल -263139

ISBN - 978-93-84632-72-4

तृतीय सेमेस्टर 602

खण्ड 1 हिंदी नाटक एवं एकांकी	पृष्ठसंख्या
इकाई 1 हिंदी नाट्य साहित्य का विकास एवं स्वरूप विवेचन	1-15
इकाई 2 अंधेर नगरी: पाठ एवं मूल्यांकन	16-32
इकाई 3 ध्रुवस्वामिनी: पाठ एवं मूल्यांकन	33-74
इकाई 4 आधे-अधूरे: पाठ एवं मूल्यांकन	75-98
इकाई 5 पृथ्वीराज की आँखें: पाठ एवं मूल्यांकन	99-114
खण्ड 2 –निबंध एवं अन्य गद्य विधाएं : तात्विक विवेचन	पृष्ठ संख्या
इकाई 6 हिंदी निबंध साहित्य का स्वरूप एवं तात्विक विवेचन	115-129
इकाई 7 अन्य गद्य विधाओं का स्वरूप एवं तात्विक विवेचन-1	130-141
इकाई 8 गद्य की अन्य विधाओं का स्वरूप व तात्विक विवेचन-2	142-154
इकाई 9 यात्रा साहित्य: तात्विक विवेचन	155-164
इकाई 10. आत्मकथा विधा: तात्विक विवेचन	165-173

इकाई 1 हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास एवं स्वरूप विवेचन

इकाई की रूपरेखा

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 नाटक का स्वरूप
 - 1.3.1 नाटक के तत्व
- 1.4 हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास एवं परिचय
 - 1.4.1 भारतेन्दु युग
 - 1.4.2 प्रसाद युग
 - 1.4.3 प्रसादोत्तर युग
 - 1.4.4 स्वातन्त्र्योत्तर युग
- 1.5 सारांश
- 1.6 शब्दावली
- 1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

सूर और तुलसी का भक्ति काल में जो स्थान है वही स्थान आधुनिक साहित्य में जयशंकर प्रसाद का है, प्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य को व्यापक दृष्टिकोण और नवीन विषय प्रदान किया। प्रसाद जी ने द्विवेदी युगीन काव्यादर्श के विरुद्ध विद्रोह कर नवीन काव्य-धारा और गद्य विधाओं का लेखन प्रारम्भ किया, समकालीन समस्याओं के निराकरण के लिए प्रसाद ने प्राचीन भारतीय इतिहास का आश्रय लिया है। जयशंकर प्रसाद कि गणना आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ कवियों में की जाती है, प्रसाद मूलतः कवि हैं परन्तु उन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा की रचना की है। कवि के पश्चात उनका नाटककार स्वरूप सर्वाधिक चर्चित रहा है। भारतीय साहित्य के इतिहास में 'नाटक' को पूर्ण साहित्य की गरिमा दी गयी है कहानी, कविता, नाटक में स्वतः ही समाहित हो जाते हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में 'नाटक' की विस्तृत व्याख्या की गयी है, इस इकाई में आपको नाटक के स्वरूप, हिन्दी नाटक के इतिहास की विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप :

- नाटक के स्वरूप को पहचान सकेंगे
- नाटक के सर्वमान्य तत्त्वों को जान सकेंगे
- हिन्दी नाटक के उद्भव को जान सकेंगे
- हिन्दी नाट्य साहित्य के विभिन्न चरणों का क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे

1.3 नाटक का स्वरूप

संस्कृत के आचार्यों ने नाटक के स्वरूप पर विस्तार से विचार किया है। भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' में कहा गया है - जिसमें स्वभाव से ही लोक का सुख-दुःख समन्वित होता है तथा अंगों आदि के द्वारा अभिनय किया जाता है, उसी को नाटक कहते हैं। अभिनव गुप्त ने लिखा है- नाटक वह दृश्य काव्य है जो प्रत्यक्ष कल्पना एवं अध्यवसाय का विषय बन सत्य एवं असत्य से समन्वित विलक्षण रूप धारण करके सर्वसाधारण को आनन्दोपलब्धि प्रदान करता है। महिम भट्ट के अनुसार- अनुभाव- विभावादि के वर्णन से जब रसानुभूति होती है तो उसे काव्य कहते हैं और जब काव्य को गीतादि से रंजित एवं अभिनेताओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है तो वह नाटक का स्वरूप धारण कर लेता है। रामचन्द्र, गुणचन्द्र के अनुसार- जो प्रसिद्ध आद्य (पौराणिक एवं ऐतिहासिक) रामचरित पर आधारित हो, जो धर्म, काम एवं अर्थ का फलदाता हो और जो अंक , आय (पाँच अर्थ-प्रकृति) दशा (पंचावस्था) से समन्वित हो, उसे नाटक कहा जाता है। भारतीय आचार्य रस- निष्पत्ति को उद्देश्य मानते हुए ही नाटक का स्वरूप निर्धारित करते हैं, जबकि

पाश्चात्य आचार्यों ने 'कार्य' को महत्व देते हुए, संघर्ष, संकलन त्रय, दुःखान्त, सुखान्त आदि लक्षणों को प्रमुखता दी है।

1.3.1 नाटक के तत्व

संस्कृत नाट्यशास्त्र में नाटक के तीन मूलभूत तत्व माने हैं- वस्तु, नेता और रसा। और इन्हीं तीनों का विस्तृत निरूपण किया है। पाश्चात्य काव्य शास्त्र में नाटक के छः तत्व माने गए हैं। आज यही छः तत्व हिन्दी नाट्यकला के प्रमुख तत्वों के रूप में ग्रहण किए गए हैं- 1. कथावस्तु 2. पात्र या चरित्र-चित्रण 3. कथोपकथन या संवाद 4. देशकाल या वातावरण 5. भाषा- शैली 6. उद्देश्य।

वस्तु अथवा कथावस्तु- नाटक की मूल कथा को ही वस्तु, कथानक या कथावस्तु आदि नामों से पुकारा जाता है। कथावस्तु दो प्रकार की होती है- 1. आधिकारिक अर्थात् मुख्य 2. प्रासंगिक अथवा प्रसंगवश आई हुई गौण कथाएं। यह मुख्य कथा के विकास और सौन्दर्यवर्द्धन में सहायक होती है। आधार के भेद से कथावस्तु तीन प्रकार की होती है- 1. प्रख्यात, जिसका आधार इतिहास, पुराण या जनश्रुति होता है। 2. उत्पाद्य, जो नाटककार की अपनी कल्पना होती है। 3. मिश्रित, जिसमें इतिहास और कल्पना का मिश्रण होता है। नाटक को कथावस्तु में कार्य-व्यापार की दृष्टि से पाँच अवस्थाएँ मानी गयी हैं- 1. आरम्भ, 2. विकास, 3. चरमसीमा, 4. उतार, 5. अंत या समाप्ति। भारतीय प्राचीन आचार्यों का वर्गीकरण भी इसी प्रकार का है, केवल नाम का भेद है, जो इसी क्रम में इसी प्रकार है, 1. आरम्भ, 2. प्रयत्न, 3. प्रत्याशा, 4. नियताप्ति, 5. फला। कथानक की पाँचों अवस्थाएँ महत्वपूर्ण हैं। पाश्चात्य नाटक में संघर्ष को महत्व प्राप्त है, जबकि भारतीय नाटक में नेता और उसके आदर्श को। भारतीय नाटकों में भी संघर्ष देखा जा सकता है किन्तु उसकी स्थिति सीधी और स्पष्ट होती है।

पात्र और चरित्र चित्रण- सम्पूर्ण नाटक पात्र और उनकी गतिविधियों पर ही आधारित होता है। पात्र ही कथानक को आगे बढ़ाता हुआ अन्त की ओर ले जाता है। वही कथा का संवाहक भी होता है। पाश्चात्य नाट्य कला में भारतीय नाट्य कला की भांति नायक का कोई सुनिश्चित स्वरूप नहीं है, वह साधारण और असाधारण, किसी भी स्थिति का हो सकता है। आधुनिक नाटकों में पात्रों का चरित्र-चित्रण आदर्श से हटकर यथार्थवादी पद्धति पर किया जा रहा है। पात्रों को व्यक्ति पात्र, प्रतिनिधि पात्र इन दो भेदों में विभक्त किया जा सकता है। नाटक के नायकों के चार प्रकार माने हैं- धीरोदात्त, धीर-ललित, धीर-प्रशांत, और धीरोद्धता। नाटकों में भी चरित्र- चित्रण उपन्यास की ही भांति होता है। परन्तु उपन्यासकार की भांति नाटक का विश्लेषणात्मक या प्रत्यक्ष रूप से चरित्र- चित्रण नहीं कर सकता, उसे परोक्ष या अभिनयात्मक ढंग से काम लेना पड़ता है। कथावस्तु, घटनाओं और कथोपकथनों के द्वारा नाटकीय पात्रों के चरित्र का उद्घाटन होता है।

कथोपकथन- नाटक संवादों के माध्यम से ही लिखा जाता है, पात्र का चरित्र- चित्रण, कथा का विकास, रोचकता और वातावरण सृजन सभी संवादों से ही होता है। संवाद अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक का अधिक प्राण तत्व होता है। संवाद की प्रसंग- परिस्थिति, पात्रानुरूपता उसका मूल तत्व है। संवाद जिसके सार्थक, संक्षिप्त, वक्र और अन्तः शक्ति सम्पन्न होते हैं,

नाटक उतना ही सफल होता है। नाटक में संवादों की भाषा सरल, सरस और प्रभावपूर्ण होनी चाहिए।

देश काल वातावरण : संकलनत्रय- नाटक में देशकाल का निर्वाह आवश्यक है। युगीन सन्दर्भों को रूपायित करने के लिए नाटक में देशकाल के अनुरूप ही पात्र की वेषभूषा, परिस्थितियों, आचार-विचार आदि होने चाहिए। इसके सफल निर्वाह से पात्र सजीव प्रतीत होते हैं। कथा-युग के अनुरूप ही समाज राजनीति और परिस्थितियों का अंकन भी होना चाहिए। सफल नाटककार दृश्य विधान, मंच व्यवस्था, वेशभूषा और अभिनय आदि के द्वारा सजीव वातावरण की सृष्टि कर लेता है। प्राचीन ग्रीक आचार्यों ने देश तथा काल की समस्या पर विचार कर, 'संकलन त्रय' का विधान किया है। इसके अनुसार स्थल, कार्य तथा काल की एकता पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। उनका मत है कि किसी नाटक में घटी घटना किसी एक ही कृत्य से, एक ही स्थान से सम्बन्धित हो और एक ही दिन में घटी हो। ऐसा करने से देश- काल और वातावरण का सुसंगत चित्रण करने में कोई बाधा नहीं आ पाती।

भाषा-शैली- नाटक एक दृश्य काव्य है। दर्शक संवादों के द्वारा ही कथ्य को ग्रहण करता है, अभिनय उसे हृदय में उतार देता है, अतः भाषा सरल, स्पष्ट और सजीव होने पर ही दर्शक और श्रोता को रसानुभूति कराने में समर्थ होती है। इसलिए नाटक में शब्दों, वाक्यों और भाषा का ऐसा प्रयोग होना चाहिए, जो सहज ग्राह्य हो। नाटक के लिए भाषा-शैली की सरसता अनिवार्य है। भाषा-शैली विषयानुकूल, प्रसाद, ओज और माधुर्य गुण युक्त होनी चाहिए, साथ ही प्रभावपूर्ण भी होनी चाहिए।

उद्देश्य- नाट्यशास्त्र में पुरुषार्थ-चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को नाटक का उद्देश्य माना गया है। इसी के साथ रसानुभूति को भी नाटक का प्रयोजन माना गया है। आज के नाटक जीवन का चित्रण करते हैं, अतः जीवन की समस्याओं की प्रस्तुति और उनकी व्याख्या तथा समाधान नाटकों का उद्देश्य है। नाटककार इस उद्देश्य की सिद्धि पात्रों के संवाद, उनके कार्य- कलाप और नाना घटनाओं द्वारा करता है। नाटक में नाटककार जीवन की व्याख्या परोक्ष रूप में व्यंजित करता है। जितना ही उद्देश्य महान होगा, उतनी ही रचना श्रेष्ठ होगी। जो लेखक जितनी अधिक उदात्त मानवीय संवेदना के रूप में अपना जीवनोद्देश्य प्रकट करता है, वह उतना ही महान कलाकार बनता है।

अभिनेयता एवं रंगमंच- भारतीय आचार्यों के अनुसार 'अभिनय' नाटक का प्रमुख अंग है। यह नाटक की अभिव्यक्ति का प्रधान साधन है। भरत मुनि ने नाटक के चार प्रकार माने हैं- 1. आंगिक, 2. वाचिक, 3. आहार्य, 4. सात्विक। नाटक की सार्थकता उसके अभिनीत होने में ही है। यद्यपि कुछ नाटक केवल पढ़ने के लिए ही होते हैं, जैसे अधिकांश प्रसाद जी के नाटक। प्राचीन काल में संस्कृत-नाटकों का अभिनय होता था, इसलिए रंगमंच की सुचारू व्यवस्था थी। रंगमंच की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई आदि की सीमाएँ निश्चित थी, परन्तु प्राचीन हिन्दी नाटकों का अभाव होने से रंगमंच का कोई विकास नहीं हो पाया। आधुनिक काल में आकर जब नाटकों

की रचना आरम्भ हुई तो रंगमंच अत्यन्त निम्नकोटि का और अव्यवस्थित हो गया था। भारतेन्दु जी ने उसमें कुछ सुधार किए, उसी समय से हिन्दी के रंगमंच का अस्तित्व आरम्भ होता है।

अतः अभिनय या रंगमंच नाटक का अनिवार्य तत्व है। नाटक की सफलता की महत्वपूर्ण कसौटी है। रंगमंच पर अभिनय के द्वारा प्रस्तुत होने पर ही नाटक की सार्थकता सिद्ध होती है, अतः नाटक अभिनय के योग्य होना चाहिए।

1.4 हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास एवं स्वरूप

हिन्दी में नाटक के स्वरूप का समुचित विकास आधुनिक युग से आरम्भ होता है। सन् 1850 से अब तक के युग को हम नाट्य-रचना की दृष्टि से तीन खण्डों में विभक्त कर सकते हैं- (1) भारतेन्दु युग (1857-1900 ई.), (2) प्रसाद युग (1900-1930), और (3) प्रसादोत्तर युग (1930 से अब तक)। इनमें से प्रत्येक युग का परिचय यहाँ कमशः प्रस्तुत किया जाता है।

1.4.1 भारतेन्दु युग

स्वयं बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी का प्रथम नाटक अपने पिता बाबू गोपालचन्द्र द्वारा रचित 'नहुष नाटक' (सन् 1841 ई.) को बताया है। किन्तु तात्विक दृष्टि से यह पूर्ववर्ती ब्रजभाषा पद्य नाटकों की ही परम्परा है। सन् 1861 ई. में राजा लक्ष्मणसिंह ने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का अनुवाद प्रकाशित करवाया। भारतेन्दु जी की प्रथम नाटक 'विद्या-सुन्दर' (सन् 1868 ई.) भी किसी बंगला के नाटक का छाया अनुवाद था। इसके अनन्तर उनके अनेक मौलिक व अनुवादित नाटक प्रकाशित हुए जिनमें पाखण्ड-बिडम्बन (1872), वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1872), धनंजय-विजय, मुद्राराक्षस (1875), सत्य- हरीश्चन्द्र (1875), प्रेम योगिनी (875), विषस्य विषमौषधम् (1876), कर्पूर- मंजरी (1876), चन्द्रावली (1877), भारत दुर्दशा (1876), नील देवी (1877), अंधेर नगरी (1881) और सती- प्रताप (1884) आदि उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु के नाटक मुख्यतः पौराणिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विषयों पर आधारित हैं। सत्य हरीश्चन्द्र, धनंजय-विजय, मुद्राराक्षस, कर्पूर-मंजरी ये चारों अनुवादित हैं। अपने मौलिक नाटकों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों एवं धर्म के नाम पर होने वाले कुकृत्यों आदि पर तीखा व्यंग्य किया है। 'पाखण्ड-बिडम्बन', वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, इसी प्रकार के नाटक हैं। 'विषस्य- विषमौषधम्' में देशी नरेशों की दुर्दशा, राष्ट्रभक्ति का स्वर उदघोषित हुआ है। इसमें 'अंग्रेज' को भारत-दुर्देव के रूप में चित्रित करते हुए भारतवासियों के दुर्भाग्य की कहानी को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें स्थान- स्थान पर विदेशी शासकों की स्वेच्छाचारिता, पुलिस वालों के दुर्व्यवहार, भारतीय जनता की मोहान्धता पर गहरे आघात किए गए हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को संस्कृत, प्राकृत, बंगला व अंग्रेजी के नाटक-साहित्य का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने इन सभी भाषाओं में अनुवाद किए थे। नाट्यकला के सिद्धान्तों का भी उन्होंने अध्ययन किया था, उन्होंने अपने नाटकों में अभिनय की भी व्यवस्था की थी तथा उन्होंने अभिनय में भाग भी लिया था। इस प्रकार नाट्यकला के सभी अंगों का उन्हें पूरा ज्ञान और अनुभव था। यदि हम एक ऐसा नाटककार ढूँढें जिसने नाट्य- शास्त्र के गंभीर अध्ययन के आधार

पर नाट्य-कला पर सैद्धान्तिक आलोचना लिखी हो, जिसने प्राचीन और नवीन, स्वदेशी और विदेशी नाटकों का अध्ययन व अनुवाद प्रस्तुत किया हो, जिसने वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक एवं मौलिक नाटकों की रचना की हो ओर जिसने नाटकों की रचना की नहीं, अपितु उन्हें रंगमंच पर खेल कर दिखाया हो इन सब विशेषताओं से सम्पन्न नाटककार, हिन्दी में ही नहीं- अपितु समस्त विश्व-साहित्य में केवल दो चार ही मिलेंगे और उन सब में भारतेन्दु का स्थान सबसे ऊँचा होगा। उनकी शैली सरलता, रोचकता एवं स्वाभाविकता गुणों से परिपूर्ण है

भारतेन्दु युग के अन्य नाटककारों में लाला श्रीनिवास दास, राधाकृष्णदास, बालकृष्ण दास भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन, राधाचरण गोस्वामी, प्रताप नारायण मिश्र आदि का नाम उल्लेखनीय है। लाला श्रीनिवास दास ने -‘प्रहलाद चरित्र’, रणधीर-प्रेम मोहिनी (1877), और संयोगिता- स्वयंवर (1855), की रचना की। इनमें सर्वश्रेष्ठ रचना ‘रणवीर सिंह और प्रेम-मोहनी’ है। इसका सुसंगठित, चरित्र- चित्रण स्वाभाविक तथा कथोपकथन वाताकुलित एवं परिस्थितियों के अनुसार हैं। लाला जी ने कहीं-कहीं प्रादेशिक भाषाओं का भी प्रयोग वातावरण को यथार्थ रूप देने के लिए किया है। इसे हिन्दी का पहला दुःखान्त नाटक भी माना गया है।

राधाकृष्ण के द्वारा रचित नाटकों में ‘महारानी पदमावती (1883), धर्मालाभ (1885), महाराणाप्रताप सिंह तथा राजस्थानकेसरी (1897) उल्लेखनीय हैं। जिसमें महारानी पदमावती का कथानक ऐतिहासिक है। जिसमें सतीत्व के गौरव की व्यंजना की गई है। धर्मालाभ में विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों का वार्तालाप दिखाते हुए अंत में सभी धर्मों की एकता का प्रतिपादन किया गया है। ‘दुखिनी बाला’ अनमेल विवाह के परिणामों को व्यक्त करता है। इनका सर्वश्रेष्ठ नाटक ‘महाराणाप्रताप सिंह’ है जिसमें महाराणा के साहस, शौर्य, त्याग की व्यंजना अन्त्यन्त ओजपूर्ण शैली में की गई है। महाराणा का चरित्र स्वयं उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है-

जब लौं तन प्राण न तब लौं मुख की मोड़ौं।

जब लौं कर में शक्ति न तब लौं शस्त्रहिं छोड़ौं

जब लौं जिह्वा सरस दीन वच नाहिं उचारौं।

जब लौं धड़ पर सीस झुकावन नाहिं विचारौं।

महाराणा के साथ- साथ अकबर के चरित्र को भी सहानुभूति के साथ उजागर किया है। बालकृष्ण भट्ट ने लगभग एक दर्जन मौलिक एवं अनुदित नाटक प्रस्तुत किए हैं। उनके मौलिक नाटकों में ‘दमयंती स्वयंवर’, ‘वृहन्नला’, ‘वेणुसंहार’, ‘कलिराज’, की सभा, ‘रेल का विकट खेल’, ‘बाल विवाह’, ‘जैसा काम वैसा परिणाम’, आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें अन्तिम चार प्रहसन हैं जिनमें अपने युग ओर समाज के विभिन्न वर्गों एवं परिस्थितियों पर व्यंग्य किया गया है। वस्तुतः प्रहसनों की परम्परा को आगे गढ़ाने में भट्ट जी का अद्भुत योगदान है। बद्रीनारायण ‘प्रेमधन’ ने समाज एवं राष्ट्र की विभिन्न परिस्थितियों से प्रेरित होकर ‘भरत सौभाग्य’ (1888), ‘प्रयागरामागमन’ (1904), वारांगन-रहस्य’ (अपूर्ण), वृद्ध- विलाप’ आदि नाटकों की रचना की जो राष्ट्र-सुधार की भावनाओं से अनुप्राणित है। इसी प्रकार राधाचरण गोस्वामी ने भी अनेक

नाटकों की रचना की जैसे-‘सती चन्द्रावली’ (1890), ‘अमर-राठौर’ (1894), ‘श्रीदामा’ (1904), ‘बूढ़े मुंह मुंहासे’ (1887), ‘भंग-तरंग’ (1892)। इनमें प्रथम तीन को छोड़कर शेष प्रहसन हैं। जिनमें अपने युग की सामाजिक एवं धार्मिक बुराईयों की आलोचना व्यंग्यात्मक शैली में की गई है। प्रताप नारायण मिश्र के ‘भारत-दुर्दशा’ (1902), ‘गो-संकट’ (1886), ‘हठी हमीर’, ‘कलिकौतुक रूपक’, आदि भी राष्ट्र जागरण एवं समाज सुधार की प्रेरणा से रचित हैं, किन्तु नाट्य कला की दृष्टि से साधारण कोटि के हैं। भारतेन्दु युग के अन्य मौलिक नाटक-रचयिताओं में देवकीनन्दन त्रिपाठी शालिग्राम, अम्बिकादत्त व्यास, जंगबहादुर मल्ल, बलदेव प्रसाद, तोताराम, ज्वालाप्रसाद मिश्र, दामोदर शास्त्री आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। देवकी नन्दन त्रिपाठी ने अनेक पौराणिक नाटकों एवं प्रहसनों की रचना की थी। उनके पौराणिक नाटक ‘सीता-हरण’ (1876), ‘रूक्मणी-हरण’ (1876), ‘कंस वध’ (1904), आदि हैं तथा प्रहसनों की नामावली इस प्रकार है- ‘रक्षा बन्धन’ (1878), ‘एक-एक के तीन-तीन’ (1879), ‘स्त्री चरित्र’ (1879), ‘वैश्य-विलास’, ‘बैल छः टके को’, आदि। त्रिपाठी जी के पौराणिक नाटक उच्च कोटि के नहीं हैं, किन्तु प्रहसनों में व्यंग्यात्मक शैली का विकास यथेष्ट रूप में हुआ है। शालिग्राम ने भी ‘अभिमन्यु वध’ (1896), ‘पुरू-विक्रम’ (1906), ‘मोरघ्वज’ (1890), आदि पौराणिक तथा ‘लावण्यवती-सुदर्शन’ (1892), ‘माध्वानन्द-कामकंदला’ (1904), आदि रोमांटिक नाटकों की रचना की थी, जो कलात्मक दृष्टि से सामान्य कोटि के हैं। अम्बिकादत्त व्यास के दो नाटक-‘भारत-सौभाग्य’ (1887), ‘गो संकट नाटक’ (1886), युगीन परिस्थियों पर आधारित है। इनके अतिरिक्त उनके द्वारा रचित ‘ललिता नाटिका’, ‘मन की उमंग’, आदि भी उपलब्ध है। इनमें प्रेम और हास्य का सम्मिश्रण है। खड्ग बहादुर मल्ल ने भी ‘महारास’ (1885), ‘हर-तालिका’ (1887), ‘कल्प-वृक्ष’ (1887), आदि पौराणिक नाटकों की रचना की है, किन्तु इनके अतिरिक्त उनका एक प्रहसन ‘भारते-भारत’ (1888) भी उपलब्ध है। बलदेव प्रसाद मिश्र का ‘मीराबाई’ (1897), भक्ति-भाव से परिपूर्ण है। इसमें बीच-बीच में मीरा के पदों का भी उपयोग किया गया है। इनके अतिरिक्त तोताराम रचित ‘विवाह विडम्बन’ (1900), कृष्णदेव शरण सिंह गोप का ‘माधुरी रूपक’ (1888), दामोदर शास्त्री का ‘रामलीला नाटक’ (1869), ज्वाला प्रसाद मिश्र का ‘सीता-बनवास’ (1875), काशीनाथ खत्री के ‘तीन ऐतिहासिक रूपक’ (1884), आदि भी इस युग की उल्लेखनीय कृतियां हैं। प्रहसनों की परम्परा को आगे बढ़ाने की दृष्टि से किशोरी लाल गोस्वामी का ‘चौपट-चपेट’ (1891), गोपालराम गहमरी का ‘जैसे का तैसा’, नवल सिंह का ‘वेश्य नाटक’, विजया नंद त्रिपाठी का ‘महा अंधेर नगरी’ (1895), बलदेव प्रसाद मिश्र का ‘लल्ला बाबू’ आदि उल्लेखनीय है। इनमें समाज के विभिन्न वर्गों की कलुषित प्रवृत्तियों पर व्यंग्य किया गया है।

अनुवाद- इस युग में संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी के नाटकों के अनुवाद भी बहुत बड़ी संख्या में प्रस्तुत हुए। संस्कृत के कालिदास, भवभूति, शूद्रक, हर्ष आदि के नाटकों के हिन्दी अनुवाद लाला सीताराम, देवदत्त तिवारी, नन्दलाल, ज्वालाप्रसाद मिश्र ने तथा बंगला के ‘पदमावती’, ‘कृष्णकुमारी’, ‘वीरनारी’ आदि का बाबू रामकृष्ण वर्मा, उदित नारायण लाल, ब्रजनाथ आदि ने

प्रस्तुत किए। अंग्रेजी के शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद भी तोताराम, रत्नचन्द्र, मथुराप्रसाद उपाध्याय आदि के द्वारा किए गए। वस्तुतः 19वीं सदी के अन्त तक विभिन्न भाषाओं के अनेक उत्कृष्ट नाटकों के अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत हो गए थे, जिनकी परवर्ती नाटककारों को बड़ी प्रेरणा मिली।

1.4.2 प्रसाद युग

इस युग के नाटक- साहित्य को भी विषय गत प्रवृत्तियों की दृष्टि से चार वर्गों में विभक्त किए जा सकता है- 1. ऐतिहासिक, 2. पौराणिक, 3. काल्पनिक, 4. अनुदित नाटक। इनमें से प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त परिचय यहां क्रमशः दिया जाता है।

(1) ऐतिहासिक नाटक - इस युग के सर्व-प्रमुख नाटककार जयशंकर प्रसाद ने मुख्यतः ऐतिहासिक नाटकों की ही रचना की थी। उनके नाटकों का रचना-क्रम इस प्रकार है- 'सज्जन' (1910), 'कल्याणी- परिणय' (1911), 'करूणालय' (1913), 'प्रायश्चित' (1914), 'राजश्री' (1915), 'विशाख' (1921), 'अजातशत्रु' (1922), 'जनमेजय का नाग-यज्ञ' (1926), 'स्कन्दगुप्त' (1928), 'एक घूँट' (1929), 'चन्द्रगुप्त' (1929), और 'ध्रुवस्वामिनी' (1933)। प्रसाद जी अपने देशवासियों में आत्म-गौरव, स्वाभिमान उत्साह एवं प्रेरणा का संचार करने के लिए अतीत के गौरव पूर्ण दृश्यों को अपनी रचनाओं में चित्रित किया। यही कारण है कि उनके अधिकांश नाटकों का कथानक उस बौद्ध-युग से सम्बन्धित है। जबकि भारत की सांस्कृतिक-पताका विश्व के विभिन्न भागों में फहरा रही थी। प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति को प्रसाद ने बड़ी सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है, उसमें केवल उस युग की स्थूल रेखाएं ही नहीं मिलती हैं। धर्म की बाह्य-परिस्थितियों की अपेक्षा उन्होंने दर्शन की अन्तरंग गुत्थियों को स्पष्ट करना अधिक उचित समझा है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी उन्होंने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करते हुए उनमें परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन व विकास दिखाया है। मानव-चरित्र के सत् और असत् दोनों पक्षों को पूर्ण प्रतिनिधित्व उन्होंने प्रदान किया है। नारी-रूप को जैसी महानता, सूक्ष्मता, शालीनता एवं गम्भीरता कवि प्रसाद के हाथों प्राप्त हुई है उससे भी अधिक सक्रिय एवं तेजस्वी रूप उसे नाटककार प्रसाद ने प्रदान दिया है। प्रसाद के प्रायः सभी नाटकों में किसी न किसी ऐसी नारी- पात्र की अवधारणा हुई है जो धरती के दुःखपूर्ण अन्धकार के बीच प्रसन्नता की ज्योति की भांति उदीप्त है, जो पाशविकता, दनुजता और क्रूरता के बीच क्षमा, करुणा एवं प्रेम के दिव्य संदेश की प्रतिष्ठा करती है जो अपने प्रभाव से दर्जनों को सज्जन, दुराचारियों को सदाचारी, और नृशंस अत्याचारियों को उदार लोक-सेवी बना देती है। 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' की उक्ति को इन दिव्य नायिकाओं पर पूर्णतः लागू होती है।

इस युग के अन्य ऐतिहासिक नाटकों में बद्रीनाथ भट्ट द्वारा रचित 'चन्द्रगुप्त' (1915), 'दुर्गावती' (1926), 'तुलसीदास' (1925), सुदर्शन द्वारा रचित 'दयानन्द' (1917), मुंशी प्रेमचन्द का 'कर्बला' (1924), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का 'महात्मा ईसा' (1922), जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' के 'प्रताप-प्रतिज्ञा' (1928), गोविन्द बल्लभ पंत का 'वरमाला' (1925), चन्द्रराज भण्डारी का 'सम्राट-अशोक' (1923), आदि उल्लेखनीय हैं। बद्रीनाथ भट्ट

के नाटकों में 'दुर्गावती' सर्वश्रेष्ठ है। इसकी घटनाएँ ऐतिहासिक हैं, तथा चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता है। संवाद एवं भाषा-शैली की दृष्टि से यह उत्कृष्ट रचना है। सुदर्शन का 'दयानन्द' चरित्र प्रधान नाटक है। चरित्र-चित्रण एवं घटना क्रम के विकास की दृष्टि से यह भी एक सफल नाटक है। 'प्रेमचन्द का 'काबा कर्बला' पाठ्य रचना की दृष्टि से तो ठीक है किन्तु अभिनय की दृष्टि से दोष-पूर्ण है। नाटक की असाधारण लम्बाई, पात्रों की अत्यधिक संख्या, युद्ध, मार-काट, सेना के प्रयोग आदि के दृश्यों के कारण यह अनभिनेय बन जाता है। इस वर्ग के अन्य नाटक, महात्मा ईसा, 'प्रताप-प्रतिज्ञा', 'वरमाला' आदि अवश्य उच्च कोटि के नाटक हैं। इनमें ऐतिहासिकता, स्वाभाविकता, एवं कल्पना का सुन्दर संयोग हुआ है।

(2) **पौराणिक नाटक-** पौराणिक नाटकों की एक सशक्त परम्परा का प्रवर्तन इस युग से बहुत पूर्व ही भारतेन्दु-मण्डल के विभिन्न लेखकों द्वारा हो चुका था, जिसकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। इस युग के पौराणिक नाटकों की एक सूची यहां प्रस्तुत है- 1. गंगाप्रसाद कृत 'रामाभिषेक नाटक' (1910), 2. ब्रजनन्द कृत 'रामलीला नाटक' (1908), 3. गिरिधर लाल का 'रामवन यात्रा' (1910), 4. नारायण सहाय का 'रामलीला नाटक' (1911), 5. राम गुलाम का 'धनुष-यज्ञ लीला' (1912), 6. महावीर सिंह का 'नल-दमयन्ती' (1905), 7. गोचरण गोस्वामी का 'अभिमन्यु-वध' (1906), 8. लक्ष्मी प्रसाद का 'उर्वशी' (1910), 9. शिवनन्दन सहाय का 'सुदामा नाटक' (1907), 10. ब्रजनन्दन सहाय का 'उद्धव' (1909), 11. रामनारायण मिश्र का 'कंस-वध' (1910), 12. परमेश्वर मिश्र का 'रूपवती' (1907), 13. हरिनारायण का 'कामिनी-कुसुम' (1907), 14. रामदेवी प्रसाद का 'चन्द्रकला-भानु कुमार' (1904)। ये नाटक सामान्यतः साधारण कोटि के हैं। इनमें से अनेक पर पारसी रंगमंच की छाप है।

(3) **कल्पनाश्रित नाटक-** जिन नाटकों की कथा वस्तु में इतिहास पुराण और कल्पनामिश्रित होती है उन्हें कल्पनाश्रित नाटक कहा जाता है। इस वर्ग के नाटकों के दो भेद किए जा सकते हैं- 1. प्रहसन एवं 2. सामाजिक नाटक। प्रहसनों के अंतर्गत मुख्यतः जे.पी. श्रीवास्तव द्वारा रचित 'दुमदार आदमी' (1919), उलट फेर (1919), 'मर्दानी औरत' (1920), बद्रीनारायण भट्ट द्वारा रचित 'चुर्गी की उम्मीदवारी' (1919), 'विवाह विज्ञापन' (1927), बेचेन शर्मा के दो नाटक चार बेचारे सम्मिलित किए जा सकते हैं। सामाजिक नाटकों के अंतर्गत मिश्र बन्धुओं के नाटक मुंशी प्रेम चन्द्र का संग्राम, लक्ष्मण सिंह का गुलामी का नशा प्रमुख नाटक है।

(4) **अनुदित नाटक-** इस युग में संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी से अनेक नाटकों के अनुवाद किए गए सत्य नारायण भवभूती के नाटकों का, रूपनारायण पाण्डेय ने बंगला के द्विजेन्द्र लाल राय के ऐतिहासिक नाटकों का तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाटकों का अनुवाद किया। अंग्रेजी के नाटकों का अनुवाद भी मुंशी प्रेमचन्द्र और ललित प्रसाद शुक्ल द्वारा किया गया।

1.4.3 प्रसादोत्तर युग

(1) **ऐतिहासिक नाटक** - इस युग में ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा का विकास हुआ। हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावन लाल वर्मा, गोविन्द बल्लभ पंत, उदय शंकर भट्ट, इस युग के प्रमुख नाटककार हैं। हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में रक्षाबंधन (1934), शिव साधना

(1937), स्वपन भंग (1940), आहुति (1940), उद्धार (1949), शपथ (1951), भग्न प्राचीर (1954) आदि को सम्मिलित है। प्रेमी जी ने अपने नाटकों में प्राचीन इतिहास को न लेकर मुगल कालीन इतिहास का संदर्भ लिया है और उसके परिपेक्ष में वर्तमान राजनैतिक, साम्प्रदायिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया है। वृदांवनलाल वर्मा इतिहास के विशेषज्ञ हैं उनके ऐतिहासिक नाटकों में झासी की रानी (1948), बीरबल (1950), ललित विक्रम (1953) आदि उल्लेखनीय हैं।

(2) सामाजिक नाटक - गोविन्द बल्लभ पंत ने अनेक सामाजिक व ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है। उनके 'राज-मुकुट' (1935), 'अन्तःपुर का छिद्र' (1940), आदि ऐतिहासिक नाटक हैं। पहले नाटक में मेवाड़ की पन्ना धाय का पुत्र के बलिदान तथा दूसरे में वत्सराज उदयन के अन्तःपुर की कलह का चित्रण प्रभावोत्पादक रूप में किया गया है। पंत जी के नाटकों पर संस्कृत, अंग्रेजी, पारसी आदि विभिन्न परम्पराओं का प्रभाव परिलक्षित होता है। अभिनेयता का उन्होंने अत्यधिक ध्यान रखा है। उनकी कला का उत्कृष्टतम रूप उनके सामाजिक नाटकों में मिलता है।

(3) पौराणिक नाटक - इस युग में पौराणिक नाटकों की परम्परा का भी विकास हुआ। विभिन्न लेखकों ने पौराणिक आधार को ग्रहण करते हुए अनेक उत्कृष्ट नाटक प्रस्तुत किए, सेठ गोविन्द दास का 'कर्तव्य' (1935), चतुरसेन शास्त्री का 'मेघनाद' (1936), पृथ्वीनाथ शर्मा का 'उर्मिला' (1950), सद्गुरुशरण अवस्थी का 'मझली रानी', रामवृक्ष बेनीपुरी का 'सीता की मां', गोकुल चन्द्र शर्मा का 'अभिनय रामायण', किशोरीदास वाजपेयी का 'सुदामा' (1939), चतुरसेन शास्त्री का 'राधा-कृष्ण', वीरेन्द्र कुमार गुप्त का 'सुभद्रा-परिणय', कैलाशनाथ भटनागर के 'भीम-प्रतिज्ञा' (1934), और 'श्रीवत्स' (1941), उदय शंकर भट्ट के 'विद्रोहिणी अम्बा' (1935), और 'सगर-विजय' (1937), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का 'गंगा का बेटा' (1940), डॉ. लक्ष्मण स्वरूप का 'नल-दमयन्ती' (1941), प्रभुदत्त ब्रह्मचारी का 'श्री शुक' (1944), तारा मिश्रा का 'देवयानी' (1944), गोविन्द दास का 'कर्ण' (1946), प्रेमनिधि शास्त्री का 'प्रणपूर्ति' (1950), उमाशंकर बहादुर का 'वचन का मोल' (1951), गोविन्द बल्लभ पंत का 'ययाति' (1951), डॉ. कृष्ण दत्त भारद्वाज का 'अज्ञातवास' (1952), मोहन लाल 'जिज्ञासु' का 'पर्वदान' (1952), हरिशंकर सिन्हा 'श्रीवास' का 'मां दुर्गे' (1953), लक्ष्मी नारायण मिश्र के 'नारद की वीणा' (1946), और 'चक्रव्यूह' (1954), रांगेय राघव का 'स्वर्ण भूमि का यात्री' (1951), मुखर्जी गुंजन का 'शक्ति-पूजा' (1952), जगदीश का 'प्रादुर्भाव' (1955), सूर्यनारायण मूर्ति का 'महा विनाश की ओर' (1960) आदि। प्राचीन संस्कृति के आधार पर पौराणिक गाथाओं के असम्बद्ध एवं असंगत सूत्रों में संबंध एवं संगति स्थापित करने का प्रयास पौराणिक नाटक हमें आज के जीवन की व्यापकता एवं विशालता का संदेश देते हैं। रंग-मंच एवं नाटकीय शिल्प की दृष्टि से अवश्य इनमें अनेक नाटक दोषपूर्ण सिद्ध होंगे किन्तु गोविन्द बल्लभ पंत, सेठ गोविन्द दास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, जैसे मंजे हुए नाटककारों ने इसका कोई संदेह नहीं किया कि ये नाटक विषय-वस्तु की दृष्टि से पौराणिक होते हुए प्रतिपादन-शैली एवं कला के

विकास की दृष्टि से पौराणिक होते हुए प्रतिपादन- शैली एवं कला के विकास की दृष्टि से आधुनिक है तथा वे समाज की रूचि एवं समस्याओं के प्रतिकूल नहीं हैं।

(4)कल्पनाश्रित नाटक - इस युग के कल्पनाश्रित नाटकों को भी उनकी मूल प्रवृत्ति की दृष्टि से तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- 1. समस्या-प्रधान नाटक, 2. भाव- प्रधान, 3. प्रतीकात्मक नाटक। समस्या- प्रधान नाटकों का प्रचलन मुख्यतः इब्सन, बर्नाड शा आदि पाश्चात्य नाटककारों के प्रभाव से ही हुआ है। पाश्चात्य नाटक के क्षेत्र में रोमांटिक नाटकों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यथार्थवादी नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें सामान्य जीवन की समस्याओं का समाधान विशुद्ध बौद्धिक दृष्टिकोण से खोजा जाता है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के समस्या प्रधान नाटकों में 'सन्यासी' (1931), 'राक्षस का मन्दिर' (1931), 'मुक्ति का रहस्य' (1932), 'राजयोग' (1934), 'सिन्दूर की होली' (1934), 'आधीरात' (1937), आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे थे। मिश्र जी के इन नाटकों में बौद्धिकतावाद, यथार्थवाद, एवं फ्रायडवाद की प्रमुखता है। सामाजिक नाटकों के क्षेत्र में सेठ गोविन्द दास, उपेन्द्र नाथ अशक, वृंदावनलाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी आदि का महत्वपूर्ण योगदान है। सेठ गोविन्ददास ने ऐतिहासिक, पौराणिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी अपने अनेक नाटकों में किया है, जिनमें से 'कुलीनता' (1940), 'सेवा-पथ' (1940), 'दुःख क्यों?' (1946), सिद्धांत- स्वातंत्र्य' (1938), 'त्याग या ग्रहण' (1943), 'संतोष कहाँ' (1945), 'पाकिस्तान' (1946), 'महत्व किसे' (1947), 'गरीबी-अमीरी' (1947), 'बड़ा पापी कौन' (1948) आदि उल्लेखनीय हैं। सेठ जी ने आधुनिक युग की विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का चित्रण सफलतापूर्वक किया है। ऊँच-नीच का भेद, 'भ्रष्टाचार एवं राजनीति के आधार पर नाटक लिखो। उपेन्द्र नाथ अशक ने राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं का चित्रण अपने नाटकों में किया उनके उल्लेखनीय नाटकों में - कैद (1945), उड़ान (1949), छठा बेटा (1955), अलग- अलग रास्ते प्रमुख हैं।

वृंदावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक और सामाजिक नाटक लिखे उनके नाटकों में राखी की लाज (1943), बांस की फांस (1947), नीलकंठ (1951), प्रमुख हैं। वर्मा जी इन नाटकों में विवाह जाति - पाति और सामाजिक बुराइयों का अंकन किया है। इस युग के अन्य सामाजिक नाटकों में उदय शंकर भट्ट का कमला (1950), हरिकृष्ण प्रेमी का 'छाया', प्रेमचन्द का प्रेम की बेदी (1933), चतुरसेन शास्त्री का पद ध्वनि 1952, शम्भू नाथ सिंह का धरती और आकाश (1954), उल्लेखनीय हैं। प्रतीकवादी नाटकों की परम्परा जयशंकर प्रसाद के कामना से मानी जा सकती है। सुमित्रानन्दन का 'ज्योत्सना' (1934), भगवती प्रसाद वाजपेयी का 'छलना', सेठ गोविन्द दास का नवरस एवं डॉ. लक्ष्मी नारायण दास का 'मादा कैक्टस' उल्लेखनीय हैं।

1.4.4 स्वातन्त्र्योत्तर युग

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हिन्दी नाटक का विकास तेजी से हुआ कुछ लेखकों ने पुरानी परम्परा का ही निर्वाह किया किन्तु कुछ लेखकों ने नए शिल्प का प्रयोग किया। इसे हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकता है-

1. **सामाजिक एवं सांस्कृतिक नाटक** - इस वर्ग में मुख्यतया जगदीश चन्द्र माथुर, नरेश मेहता, विनोद रस्तोगी, डॉ. लक्ष्मी नारायण दास एवं डॉ. शंकर शेष की रचनाएं आती हैं। जगदीश चन्द्र माथुर ने 'कोर्णाक' 1952, पहला राजा 1969, 'दशरथनन्दन' 1974 में सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के विषय में लिखा है। विष्णु प्रभाकर ने 'युगे-युगे क्रान्ति', 'टूटते परिवेश' आदि नाटकों में पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं को चित्रित किया है। नरेश मेहता ने सुबह के घण्टे (1956), और खण्डित यात्राएं (1962) में आधुनिक राजनीति और विसंगतियों पर प्रकाश डाला है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने 50 से अधिक नाटकों की रचना की है- 'अंधा कुआं', 'रात रानी', 'दर्पण', 'कफ्यू', 'अब्दुला दीवाना', 'मि. अभिमन्यू' उनके महत्वपूर्ण नाटक हैं। डॉ. शंकर शेष ने अपने नाटकों में व्यक्ति समाज और संस्कृति के अन्तर द्वंद्व को उदघाटित किया है। 'बिन बाति के दीप', 'फंदी', 'खजुराहो के शिल्पी', 'एक और द्रोणाचार्य' उनके उल्लेखनीय नाटक हैं।

2. **व्यक्तिवादी नाटक** - इस वर्ग में मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, रमेश बक्षी, मुद्रा राक्षस की रचनाएं आती हैं। मोहन राकेश ने अपने तीन नाटकों 'आषाढ़ एक दिन' (1958), 'लहरों के राजहंस' (1963), 'आधे-अधूरे' (1969), में व्यक्ति एवं समाज के द्वंद्व को प्रदर्शित किया है। सुरेन्द्र वर्मा ने 'द्रोपदी' (1972), 'सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' 1975, और 'आठवां सर्ग' नाटक में परम्परागत मान्यताओं को चुनौती दी है। रमेश बक्षी ने अपने 'देवयानी का कहना है' नाटक में वैवाहिक संस्था की उपयोगिता पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाया है, इसी प्रकार मुद्राराक्षस ने 'तिल चट्टा' 1975, में विवाह के संबंध में परम्परागत मूल्यों के प्रति विद्रोह किया है। इस वर्ग के लेखकों की दृष्टि मुख्यतः व्यक्ति स्वातन्त्र्य, अहम, और प्रेम संबंधों पर केन्द्रित रही है।

3. **राजनैतिक नाटक** - राजनीति सदा से ही नाटकों का विषय बनती रही है। स्वतन्त्रता के पश्चात् राजनीति को आधार बनाकर अनेकानेक नाटक लिखे गए, जिनमें दया प्रकाश सिन्हा का इतिहास चक्र एवं कथा एक कंश की, विपिन अग्रवाल का 'ऊँची-नीची टांग का जांधिया', हमीदुल्ला का 'समय संदर्भ', गिरीराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो', सुशील कुमार सिंह का 'सिंहासन खाली है', मणि मधुकर का 'रस-गन्धर्व' सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी' विशेष उल्लेखनीय हैं इनमें एक ओर जनता का शोषण करने वाले राजनीतिज्ञों का भण्डाफोड़ किया गया है तो इसमें दूसरी ओर सत्ताधारी वर्ग द्वारा किए जाने वाले अनाचार, दुराचार और भ्रष्टाचार का चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त शरद जोशी का अन्धों का हाथी, मन्नू भण्डारी का बिना दिवार का घर, शम्भू नाथ सिंह का 'धरती और आकाश' आदि भी उल्लेखनीय रचनाएं हैं। हिन्दी नाटक के क्षेत्र में डॉ. कुसुम कुमार का नाम भी महत्वपूर्ण है 'संस्कार को नमस्कार', 'रावण लीला', इनके महत्वपूर्ण नाटक हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी नाटक का विकास अनेक रूपों और अनेक दिशाओं में हुआ है। यद्यपि प्रारम्भ में हिन्दी रंगमंच के अभाव तथा एकांकी रेडियो रूपों एवं चलचित्रों की प्रतियोगिता के कारण इसकी विकास की गति मंद रही परन्तु कुछ स्वतन्त्र संस्थाओं द्वारा नाटकों

का अभिनय किया जाता रहा है, टेलिविजन में दिखाए जाने वाले उबाउ विषयों से दर्शक धीरे-धीरे नाटक देखने की ओर पुनः उत्सुक हो रहे हैं. आशा है नाटकों का विकास पूर्व की भांति निरन्तर होता रहेगा

1.5 सारांश

नाट्य साहित्य के स्वरूप तथा हिन्दी नाटक के विस्तृत इतिहास का अध्ययन करने के पश्चात आप जान गए होंगे की नाट्य विधा साहित्य की सबसे सशक्त विधा है।

नाटक जीवन का ही प्रतिरूप है जीवन के थके हुए क्षणों से बोझिल मनुष्य ने मनोरंजन हेतु नाटक की उत्पत्ति की होगी जो आज तकनीकी विकास के रूप में फिल्म और टेलीविजन के नाटकों के रूप में हमारे समक्ष है।

हिन्दी नाट्य साहित्य के विकास से भी आप परिचित हो गए है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सामाजिक विसंगतियों शिक्षा नवजागरण के लिए नाटकों का माध्यम अपनाया, जयशंकर प्रसाद ने भारत के प्राचिन इतिहास को पुनः हमारे समक्ष प्रस्तुत करने के लिए नाटकों की रचना की जिसका की हम आगे आने वाले पृष्ठों पर विस्तृत अध्ययन करेंगे।

1.6 शब्दावली-

नाट्य शास्त्र	-	भरत मुनि द्वारा रचित ग्रंथ
नाटक पात्र	-	साहित्य की एक ऐसी विधा जिसे रंगमंच पर अभिनय के माध्यम से कथोपकथन द्वारा जीवन्तता प्रदान करते हैं।
कथा वस्तु	-	नाटक के संदर्भ में कथावस्तु का तात्पर्य उस कथा से है जिसको अभिनय व संवाद के माध्यम से व्यक्त करते हैं।
रंगमंच	-	नाटक की कथा जिस भूमि, स्थान अथवा मंच पर अभिनय व संवादों के माध्यम से मंचित होती है उसे रंगमंच कहा जाता है। नाट्य शास्त्र में रंगमंच के आकार प्रकार वास्तु रंग संयोजन, की विस्तृत व्याख्या की गयी है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1. नाट्य शास्त्र किसके द्वारा लिखा गया है ?

उत्तर - भरत मुनि।

प्रश्न 2. साहित्य के कितने स्वरूप होते हैं ?

उत्तर - साहित्य के दो स्वरूप होते हैं - 1 गद्य, 2 पद्य।

प्रश्न 3. नाटक, साहित्य के किस स्वरूप से सम्बन्धित है ?

उत्तर - नाटक, साहित्य के गद्य रूप से सम्बन्धित है।

प्रश्न 4. हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास का वर्गीकरण कीजिए ?

उत्तर - हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है -

भारतेन्दु युग, प्रसाद युग, प्रसादोत्तर युग, स्वातन्त्रोत्तर युग।

प्रश्न 5 राधा कृष्ण दास द्वारा रचित नाटकों के नाम बताइये ?

उत्तर - रानी पदमावती, धर्मालाभ, महाराणा प्रताप सिंह, राजस्थान केसरी।

प्रश्न 6. धर्मवीर भारती द्वारा लिखित काव्य नाट्य का नाम बताइये ?

उत्तर - अंधा युग।

प्रश्न 7. लक्ष्मीनारायण लाल ने किस प्रकार के नाटक लिखे हैं ?

उत्तर - लक्ष्मीनारायण लाल ने मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर आधारित नाटक लिखे हैं।

प्रश्न 8. हिन्दी का प्रथम नाटक किसे माना जाता है ?

उत्तर - बाबू गोपालचन्द्र द्वारा लिखित 'नहुष नाटक' (1841) को प्रथम नाटक माना जाता है।

प्रश्न 9. 'लहरों का राजहंस', 'आषाढ़ का एक दिन' नाटकों के रचयिता का नाम बताइये?

उत्तर - मोहन राकेश।

प्रश्न 10. वृदांवन लाल वर्मा के सामाजिक नाटकों का नाम बताइये?

उत्तर - राखी की लाज, बांस की फांस, खिलौने की खोज, केवट, नीलकंठ, सगुन, वृदांवन लाल वर्मा जी के प्रमुख सामाजिक नाटक हैं।

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी भाषा एवं साहित्य विश्व कोश, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त
2. प्रसाद के नाटक, डॉ. परमेश्वरी लाल
3. प्रसाद के नाटक स्वरूप और संरचना, डॉ. गोविन्द चातक
4. हिन्दी नाटक उदभव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा
5. हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास, डॉ. सोमनाथ गुप्त

1.9 निबंधात्मक प्रश्न-

1. नाटक का स्वरूप निर्धारित करते हुए उसके विभिन्न तत्वों पर प्रकाश डालिए?
2. हिन्दी नाटक के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालिए?

इकाई 2 अंधेर नगरी : पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 पाठ का उद्देश्य
- 2.3 अन्धेर नगरी: पाठ
- 2.4 अन्धेर नगरी: आलोचना
 - 2.4.1 कथावस्तु
 - 2.4.2 चरित्र/पात्र
 - 2.4.3 संवाद
 - 2.4.4 देशकाल एवं वातावरण
 - 2.4.5 भाषा का प्रश्न
- 2.5 अंधेर नगरी: मूल्यांकन
- 2.6 सारांश
- 2.7 शब्दावली
- 2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

‘अंधेर नगरी’ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का न केवल प्रसिद्ध नाटक (प्रहसन) है। बल्कि भारतीय नाट्य परम्परा में भी वह अपना विशिष्ट स्थान रखता है। ‘लोक’ का सृजनात्मक प्रयोग कैसे किया जा सकता है? इसकी व्यंजना अंधेर नगरी के माध्यम से हमें प्राप्त होती है। सामान्य कथानक से लगने वाले अंधेर नगरी की व्यंजना पूरे राष्ट्र तक कैसे प्रसरित हो जाती है। यह इस नाटक के माध्यम से हमें देखने को मिलती है। चूरन, पाचक, सब्जीवाला इत्यादि के माध्यम से वर्गीय चरित्रों को निर्मित कर भारतेन्दु ने अपने कथ्य को सामाजिक विस्तार दे दिया है। बाजार का दृश्य सायास रखा गया है, जो नाटक को सामाजिक आधार प्रदान करता है। इस नाटक की तीसरी विशेषता यह है कि इसके पात्र प्रतीकात्मक अर्थ पैदा करने में सक्षम हो गये हैं। चौपट्ट राजा, अंधेर नगरी, बाजार, नारायणदास, गोवर्धनदास, महन्त व अन्य पात्र अपना प्रतीकात्मक अर्थ भी रखते हैं। नाटक के पात्र विस्तार को संकेतरूप में ही रखा गया है, लेकिन उसके बावजूद पात्र अपनी व्यंजना करने में सफल हुए हैं। नाटक की एक अन्य विशेषता इसका संकेतात्मक स्वरूप है। ज्यादा कहने की अपेक्षा संकेतो में अपनी बात नाटककार ने कहीं है।

2.2 पाठ का उद्देश्य

एम0ए0एच0एल0 202 की यह दूसरी इकाई है। नाटक एवं कथेत्तर साहित्य की अवधारणा से संबंधित इस पुस्तक में मुख्यतः नाटक एवं अन्य गद्य विधाओं पर चर्चा की गई है। यह इकाई हिन्दी के प्रसिद्ध नाटक ‘अन्धेर नगरी’ के पाठ एवं आलोचना पर केन्द्रित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझ सकेंगे।
- अंधेर नगरी? नाटक के मूल पाठ से परिचित हो सकेंगे।
- अंधेर नगरी की विशेषता को समझ सकेंगे व उसका मूल्यांकन कर सकेंगे।
- नाटक की विशेषता से परिचित हो सकेंगे।
- नाटक की भाषा की समझ पैदा हो सकेगी।

2.3 अंधेर नगरी: मूल पाठ

अंधेर-नगरी

चौपट्ट राजा

टके सेर भाजी टके सेर खाजा

प्रथम दश्य

(वाह्य प्रान्त)

(महन्त जी दो चेलों के साथ गाते हुए आते हैं)

सब- राम भजो राम भजो राम भजो भाई

राम के भजे से गतिाक तर गई,
 राम के भजे से गति गात पाई।
 राम के भजे से काम बनै सब,
 राम के भजन बिनु सबहि नसाई।
 राम के नाम से दोनो नयन बिनु
 सूरदास भये कविकुल राई
 राम के नाम से घास जंगल की,
 तुलसीदास भये भाज रघुराई।

महन्त- बच्चा नारायणदा! यह नगर तो दूर से बड़ा सुन्दर दिखालाई पड़ता है! देख, कुछ भिच्छा-उच्छा मिले तो ठाकुर जी का भोग लगे।

ना0दा0-और क्या! गुरुजी महाराज! नगर तो नारायण के आसरे से बहुत ही सुन्दर है जो है सो, पर भिक्षा सुन्दर मिलै तो बड़ा आनन्द हो।

महन्त- बच्चा गोबरधनदास! तू पश्चिम की ओर से जा और नारायणदास पूरब की ओर से जाएगा। देख, जो कुछ सोधा सामग्री मिले तो श्री शालग्राम जी का बाल भोग सिद्ध हो।

गो0दा- गुरुजी! मैं बहुत सी भिक्षा लाता हूँ। यहाँ लोग तो बड़े मालदार दिखलाई पड़ते हैं। आप कुछ चिन्ता मत कीजिए।

महन्त- बच्चा बहुत लोभ मत करणा। देखना, हाँ-
 लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत माना
 लोभ कभी नहीं कीजिए, यामें नरक निदान।
 (गाते हुए सब जाते हैं)

दूसरा दृश्य

(बजार)

कवाब वाल- कवाब गरमागरम मसालेदार-चौरासी मसाला बहत्तर आंच का -कावाब गरमागरम मसालेदार-खाय सो होंट चाअै, न खाय सो जीभ काटै। कवाब लो, कवाब का ढेर-बेचा टके सेर।

घासीराम- चने जोर गरम-

चने बनावै घासीराम। निज की झोली में दुकान।
 चना चुरमुर-चुरमुर बोलै। बाबू खाने को मुँह खोलै।
 चना खावै तौकी मैना। बोले अच्छा बना चबैना।
 चना खार्ये गफूरन मुत्रा। बोलै और नहीं कुछ सत्रा।
 चना चबाते सब बंगाली। जिनकी धोती ढीली ढाली।
 चना खाते मियां जुलाहे। डाढी हलती गाह बगाहै।
 चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते।
 चने णोर गरम-टके सेर

नारंगीवाली- नरंगी ले नरंगी- सिलहट की नरंगी, बुटवल की नरंगी, रामबाग की नरंगी, आनन्दबाग की नरंगी। भई नीबू से नरंगी। मैं तो पिया के रंग न रंगी। मैं तो झूली लेकर संगी। नरंगी ले नरंगी। कंवला नीबू, मीठा नीबू, रंगतरा, संगतरा। दोनों हाथों लो नहीं पीछे हाथ ही मलते रहोगे। नरंगी ले नरंगी। टके सेर नरंगी

हलवाई- जलेबियाँ गरमागरमा ले सेव इमरती लड्डू गुलाबजामुन, खुरमा, बुदिया, बर्फी, समोसा, पेडा, कचौड़ी, दालमोठ, पकौड़ी, घेवर, गुपचुपा हलुवा गरम चमाका। घी में गरम चीनी में तरातर चासनी में चमाचम ले मूरे का लड्डू। जो खाय सो भी पछताय जो न खाय सो भी पछताय। रेवड़ी कड़ाका। पापड़ कड़ाका। ऐसी जात हलवाई जिसके छत्तिस कौम है भाई जैसे कलकत्ते के विल्सन, मन्दिर के भिररिए, वैसे अंधेर नगरी के हम। सब सामान ताजा। खाजा ले खाजा। टके सेर खाजा।

कुजड़िन- ले धनिया, मेथी, सोआ, पालक, चौराई, बथुआ, करेमू, नोनियाँ, कुलफा, कसारी, चना, सरसों का सागा। मरसा ले मरसा। ले बैगन लौकी, कोहड़ा, आलू, अरुई, बन्डा नेनुआँ सूरन राम तरोई मुर्ई ले आदी मिरचा लहसुन पियाज टिकोरा। ले फालसा खिरनी आम अमरूद निबुआ मटर होरहा। जेसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी। ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और वैरा।

मुगल- बादाम पिस्ते अखरोट अनार बिहीदाना मुनक्का किशमिश अंजीर आबजोश आलूबुखारा चिलगोजा सेब नाशपती बिही सरदा अंगूर का पिटारी आमारा ऐसा मुल्क जिसमें अंगरेज का भी दाँत कट्टा हो गया। नाहक को रूपया खराब किया। हिन्दोस्तान का आदमी लक-लक हमारे यहाँ आदमी बुबंक-बुबंक लो सब भैवा टके सेरा।

पाचकवाला- चूरन अमल बेद का भारी। जिसकी खाते कृष्ण मुरारी।
मेरा पाचक है पचनोला। जिसकी खाता श्याम सलोना।
चूरन बना मसालेदारा। जिसमें खट्टे की बहार।
मेरा चूरन जो कोई खाये। मुझ को छोड़ कहीं नहीं जाए।
हिन्दू चूरन इसका नाम। विलायत पूरन इसका काम।
चूरन जब से हिन्द में आया। इसका धन बल सभी घटाया।
चूरन ऐसा हट्टा कट्टा। कीना दाँत सभी का खट्टा।
चूरन चला दाल की मण्डी। इसकी खार्येंगी सब रंडी।
चूरन अमले सब जो खावै। दूनी खशवत तुरंत पचावै।
चूरन नाटक वाले खाते। इनकी नकल पचा कर लाते।
चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते ॥
चूरन खाते लाला लोग। जिनकी अकिल अकिल अजीरन रोग।
चूरन खावै एडिटर जात। जिनके पेट पचै नहिं बात।
चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।
ले चूरन का ढेर, बेचा टके सेरा।

मछलीवाली- मछरी ले मछरी।

मछरिया एक टके कै बिकाया।

लाख टका के वाला जोबन, गाहक सब ललचाया।

नैन मछरिया रूप जाल में, देखतहि फैसि जाया।

बिनु पानी मछरी सो बिरहिया, मिले बिना अकुलाया।

जातवाला (ब्राह्मण) जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाएं और धोबी को ब्राह्मण कर दें। टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करें। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान। टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचें, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानें, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावें। वेद धर्म कुल मरजादा सचाई बड़ाई सब टके सेरा। लुटाय दिया अनमोल माल ले टके सेरा।

बनियां- आटा दाल लकड़ी नमक घी चीनी मसाला चावल ले टके सेरा।

(बाबा जी का चेला गोबरधन आता है। और सब बेचने वालों की आवाज सुन-सुनकर खाने के आनन्द में बड़ा प्रसन्न होता है।)

गो0दा0-क्यों भाई बणिये, आटा कितने सेर?

बनियां- टके सेरा।

गो0दा0-औ चावल?

बनियां- टके सेरा।

गो0 दा0- और चीनी?

बनियां- टके सेरा।

गो0दा0-और घी?

बनियां- टके सेरा।

गो0दा0-सब टके सेर सचमुच।

बनियां- हाँ महाराज, क्या झूठ बोलूंगा।

गो0दा0-कुँजड़िन के पास जाकर) क्यों भाई भाजी क्या भाव?

कुँजड़िन'- बाबा जी, टके सेरा। निबुआ मुरई धनिया मिरचा साग सब टके सेरा।

गो0दा0-सब भाजी टके सेरा। वाह! वाह। बड़ा आनन्द है। यहाँ सभी चीज टके सेरा। (हलवाई के पास जाकर) क्यों भाई हलवाई? मिठाई कितने सेर?

हलवाई- बाबा जी! लडुआ हलुआ जलेबी गुलाब जामुन खाजा टके सेरा।

गो0दा0-वाह!वाह! बड़ा आनन्द है? क्यों बच्चा, मुझसे मसखरी तो नहीं करता? सचमुच सब टके सेर?

हलवाई- हाँ बाबा जी, सचमुच सब टके सेर। इस नगरी की चाल ही यही है। यहाँ सब चीज टके सेर बिकती है।

गो0दा0-क्यों बच्चा। इस नगरी का नाम क्या है?

हलवाई- अन्धेर नगरी।

गो0दा0-और राजा का क्या नाम है?

हलवाई- चौपट्ट राजा?

गो0दा0-वाह!वाह! अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा, टके सेर भाजी टका सेर खाजा (यही गाता है और आनन्द से बगल बजाता है)

हलवाई- तो बाबा जी, कुछ लेना देना हो तो लो दो।

गो0दा0-बच्चा, भिक्षा माँग कर सात पैसे लाया हूँ, साढेः तीन सेर मिठाई दे दे, गुरु चले सब आनन्दपूर्वक इतने में छक जायेंगे।

(हलवाई मिठाई तोलता है बाबा जी मिठाई लेकर खाते हुए और अन्धेर नगरी गाते हुए जाते हैं।) (पटाक्षेप)

तीसरा दृश्य

(स्थान जगल)

(महन्त जी और नारायणदास एक ओर से राम भजो इत्यादि गाती गाते हुये आते हैं और एक ओर से गोबरधनदास अन्धेर नगरी गाते हुए आते हैं)

महन्त- बच्चा गोबरधनदास! कह क्या भिक्षा लाया। गठरी तो भारा मालूम पड़ती है।

गो0दा0-बाबा जी महाराज! बड़े माल लाया हूँ, साढे तीन सेर मिठाई है।

महन्त- देखूँ बच्चा! बड़े (मिठाई की झोली अपने सामने रखकर खोल कर देखता है) वाह!

वाह! बच्चा! इतनी मिठाई कहाँ से लया? किन धर्मात्मा से भेंट हुई?

गो0दा0-गुरुजी जो महाराज! सात पैसे भाव में मिल थे, उससे इतनी मिठाई मोल ली है।

महन्त- बच्चा नारायण दास ने मुझसे कहा था कि यहाँ सब चीज टके सेर मिलती है, तो मैंने इसकी बात का विश्वास नहीं किया। बच्चा यह कौन सी नगरी है? और इसका कौन सा राजा है जहाँ टके सेर भाजी और टके सेर खाजा है।

गो0दा0-अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा, टके सेर खाजा टके सेर खाजा।

महन्त- तो बच्चा! ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं है, जहाँ टके सेर भाजी और टके से ही सेर खाजा हो।

दोहा-

सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपा।

ऐसे देश कुदेश में, कबहुँ न कीजै बाना।

कोकिल वायस एक सम, पण्डित मूरख एका।

इन्द्रामन दाडिम विषम, जहाँ न नकु विवेकु।

बसिये ऐसे देश नहिं, कनक बृष्टि जो होया।

रहिए तो दुख पाइये, प्रान दीजिये रोया।

सो बच्चा चलो यहाँ से। ऐसी अन्धेर नगरी में हजार मन मिठाई मुफ्त की मिलै तो किस काम की। यहाँ एक छन नहीं रहना।

गो0दा0-गुरू जी तो संसार भर में कोई देश ही नहीं है। दो पैसा पास रहने ही में मजे मै पेट भरता है। मैं तो इस नगर को छोड़ कर नहीं जाऊँगा। और जगह दिन भर मांगो तो भी पेट नहीं भरता। वरन बाजे बाजे दिन उपास करना पड़ता है। सौ मे तो यहाँ रहूँगा।

महन्त- देख बच्चा, पीछे पछतायेगा।

गो0दा0-आपकी कृपा से कोई दुख न होगा, मे तो यही कहता हूँ कि आप भी यहीं रहिये।

महन्त- मैं तो इस नगर में अब एक क्षण भी नहीं रहूँगा। देख मेरी बात मान नहीं पीछे पछताएगा। मैं तो जाता हूँ, पर इतना कहे जाता हूँ कि कभी संकट पड़े तो हमारा स्मरण करना।

गो0दा0-प्रणाम गुरू जी, मैं आप का नित्य ही स्मरण करूँगा। मैं तो फिर भी कहता हूँ कि आप भी यहीं रहिये।

(महन्त जी नारायण दास के साथ जाते हैं, गोबर्धनदास बैठकर मिठाई खाता है)

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

(राज सभा)

(राजा-मन्त्री और नौकर लोग यथास्थान स्थित है)

एक सेवक- (चिल्ला कर) पान खाइए महाराज।

राजा- (पीनक से चौंक के घबड़ाकर उठता है) क्या कहा। सुपनखा आईए महाराज। (भागता है)

मन्त्री- (राजा का हाथ पकड़कर) नहीं नहीं, यह कहता है कि पान खाइए महाराज।

राजा- दृष्ट लुच्चा पाजी! नाहक हमको डरा दिया। मन्त्री इसको सौ कोड़े लगैं।

मन्त्री- महाराज! इसका क्या दोष है। न तमोली पान लगाकर देता, न यह पुकारता।

राजा- अच्छा, तमोली को दो सौ कोड़े लगैं।

मन्त्री- पर महाराज, आप पान खाइए सुनकर थोड़े ही डरे हैं। आप तो सूपनखा के नाम से डरे हैं, सुपनखा की सजा हो।

राजा- (घबड़ाकर) फिर वही नाम। मन्त्री बड़े खराब आदमी हो। हम रानी से कह देगे कि मन्त्री बेर-बेर तुको सौत बुलाने चाहता है। नौकर! नौकर! शराब।

नौकर- (एक सुराह में से एक गिलास में शराब उझल कर देता है) लीजिए महाराज। पीजिए महाराज।

राजा- (मुँह बनाकर पीता है) और दे।

(नेपथ्य में -दुहाई है दुहाई का शब्द होता है।)

कौन चिल्लाता है- पकड़ लाओ।

(दो नौकर एक फर्यादी को पकड़ लाते हैं।)

फरयादी - दोहाई हो महाराज दोहाई है। हमारा न्याय होया।

राजा- चुप रहो। तुम्हारा न्याय यहाँ ऐसा होगा कि जैसा जम के यहाँ भी न होगा। बोलो क्या हुआ।

- फ0- महाराज कल्लू बनिया को दीवार गिर पड़ी सो मेरी बकरी उकसे नीचे दब गई दोहाई है महाराज न्याय हो।
- राजा- (नौकर से) कल्लू बनिया को, दीवार को अभी पकड़ लाओ।
- मन्त्री- महाराज, दीवार नहीं लाई जा सकती।
- राजा- अच्छा, उसका भाई, लड़का, दोस्त, आशना जो हो उसको पकड़ लाओ।
- मन्त्री- महाराज! दीवार ईंट चूने का होता है, उसको भाई बेटा नहीं होता।
- राजा- अच्छा कल्लू बनिये को पकड़ लाओ।
(नौकर लोग दौड़कर बाहर से बनिये को पकड़ लाते हैं)
क्यों बे बनिये! इसकी लरकी, नहीं बरकी क्यों दबकर गर गई।
- मन्त्री- बरकी नहीं महाराज बकरी।
- राजा- हां, हां, बाकरी क्यों मर गई बोल, नहीं अभी फाँसी देता हूँ।
- कल्लू- महाराज! मेरा कुछ दोष नहीं। कारीगर ने ऐसी दीवार बनाया कि गिर पड़ी।
- राजा- अच्छा कल्लू को छोड़ दो, कारीगर की पकड़ लाओ। (कल्लू जाता है। लोग कारीगर को पकड़ लाते हैं) क्यों बे कारीगर! इसकी बकरी किस तरह मर गई।
- कारीगर- महाराज मेरा कुछ कसूर नहीं चूने वाले ने ऐसा वोदा बनाया कि दीवार गिर पड़ी।
- राजा- अच्छा इस कारीगर को बुलाओ, नहीं नहीं निकालो, उकस चूने वाले को बुलाओ। (कारीगर निकल जाता है, चूने वाला पकड़कर लाया जाता है) क्यों बे खैर सुपाड़ी चूने वालो इसकी बकरी कैसे मर गई।
- चूने वाला- महाराज! मेरा कुछ दोष नहीं, भिश्ती ने चूने ने पानी ढेर दे दिया, इसी से चूना कमजोर हो गया होगा।
- राजा- अच्छा चुन्नीलाल को निकालो, भिश्तो को पकड़ो। (चूने वाला निकल जाता है, भिश्ती लाया जाता है) क्यों बे भिश्ती! गंगा-जमुना की किश्ती! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई।
- भिश्ती- महाराज गुलाम का कोई कसूर सनहीं, कस्साई ने मसक इतनी बड़ी बना दिया कि उसमें पानी जादे आ गया।
- राजा- अच्छा कस्साई को लाओ, भिश्ती निकालो। (लोग भिश्ती को निकालते हैं और कसाई को लाते हैं) क्यों बे कस्साई, मशक ऐसी क्यों बनाई कि दीवार लगाई बकरी दबाई।
- कस्साई- महाराज! गड़रिया ने टके पर ऐसी बड़ी भेंड़ मेरे हाथ बेची कि उसकी मशक बड़ी बन गई।
- राजा- अच्छा कस्साई को निकालो, गड़रिये को लाओ। (कस्साई निकल जाता है। गड़रिया आता है) ऐसी बड़ी भेंड़ क्यों बेचा कि बकरी मर गई।
- गड़रिया- महाराज उधर से कोतवाल साहब की सवारी आई, सो उकसे देखने में मैंने छोटी भेंड़ का ख्याल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं।
- राजा- अच्छा इसको निकालो, कोतवाल को अभी सरबमुहर पकड़ लाओ।

(गड़ेरिया निकाला जाता है, कोतवाल पकड़ा जाता है) क्यों बे कोतवाला तैनें सवारी ऐसी धूम से क्यों निकाली कि गड़ेरिया ने घबड़ाकर बड़ी भेड़ बेचा, जिससे बकरी गिर कर कल्लू बनियाँ दब गया।

कोतवाल- महाराज, महाराज! मैंने तो कोई कसूर नहीं किया मैं तो शहर के इन्तजाम के वास्ते जाता था।

मन्त्री- (आप ही आप) यह तो बड़ा गजब हुआ, ऐसा न हो कि बेककूफ इस बात पर सारे नगर को फूँक दे या फाँसी दे। (कोतवाल से) यह नहीं, तुम ने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाली।

राजा- हां हां नहीं; तुमने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाली कि उसकी बकरी दबी।

कोतवाल- महाराज महाराज-

राजा- कुछ नहीं, महाराज! महाराज ले जाओ, कोतवाल को अभी फाँसी दो। दरबार बरखास्ता।

(लोक एक तरफ से कोतवाल को पकड़ कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मन्त्री को पकड़ कर राजा जाते हैं।)

(पटाक्षेप)

पाँचवा दृश्य

(आराण्य)

(गोवर्धनदास गाते हुए जाते हैं)

अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टके सेर भाजी टका सेर खाजा।।

नीचे-ऊँचे सब एकहि ऐसे। जैसे भडुएँ पंडित तैसे।।

कुल मरजाद न मान बड़ाई। सबै एक से लोग लुगाई।।

जात पात पूछे नहिं कोई। हरि की भजे सो हरि को होई।।

वेश्या जोरू एक समाना। बकरी गऊ एक करि जाना।।

सांचे मारे मारे डोलै। छली दुष्ट सिर चढ़ि-चढ़ि बोलै।।

प्रगट सभ्य अन्तर छलकारी। सोई राज सभा बलभारी।।

सांच कहे ते पनहीं खायै। झूठे बहुविधि पदवी पावै।।

छलिमान एका के आगे। लाख कहो एकहु नहिं लागे।।

भीतर कोई मलिन की कारो। चाहिये बाहर रंग चटकारी।।

धर्म अधर्म एक दरगाई। राजा करे सो न्याव सदाई।।

भीतर स्वाहा बाहर सादे। राजा करहिं अमल अरूप्यादे।।

अन्धा धुन्ध मच्या सब देसा। मानहु राजा रहत विदेशा।।

गो द्विज श्रुति आद नहिं होई। मानहु नृपति विधर्मि कोई।।

ऊँचे नीच सब एकहि सारा। मानहुं ब्रह्म ज्ञान विस्तारा।।

अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा।।

(बैठकर मिठाई खाता है)

गुरु जी ने हमको नाहक यहाँ रहने को मना किया था। माना कि देस बहुत बुरा है। पर अपना क्या। अपने किसी राज काज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, रोज मिठाई चाभना, मजे में आनन्द से राम भजन करना।

(मिठाई खाता है)

(चार प्यादे चार ओर से आकर उसको पकड़ लेते हैं)

1 प्या0- चल बे चल, बहुत खा कर मुटाया है। आज पूरी हो गई।

2 प्या0- बाबा जी चलिए, नमोनारायन कीजिये।

गो0दा0- (घबड़ा कर) है! यह आफत कहाँ से आई। अरे भई, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो मुझको पकड़ते हो।

1 प्या0- आप ने बिगाड़ा है या बनाया है, इस से क्या मतलब अब चलिये मुझे फाँसी चढ़िए।

गो0दा0-फाँसी। अरे बाप रे बाप फाँसी!! मैंने किसकी जमा लूटी है, कि मुझको फाँसी! मैंने किसके प्राण मारे कि मुझको फाँसी!

2 प्या0- आप बड़े मोटे हैं, इस वास्ते फाँसी होती है।

गो0दा0-मोटे होने से फाँसी। यह कहाँ का न्याय है। अरे, हंसी फकीरों से नहीं करनी होती।

1 प्या0- जब सूल चढ़ लीजिएगा तब मालूम होगा कि हंसी है कि रच। सीधी राह से चलते हो कि घसीट कर ले चलें।

गो0दा0-अरे बाबा क्यों बेकसूर का प्राण मारते हो। भगवान के यहाँ क्या जवाब दोगे?

1 प्या0- भगवान को जबाब राजा देगा। हमो क्या मतलब। हम तो हुक्मी बन्दे हैं?

गो0दा0- तब भी बाबा क्या है कि हम फकीर आदमी को नाहक फाँसी देते हो?

1 प्या0- बात है कि कल कोतवाल को फाँसी का हुकम हुआ था। जब फाँसी देने को उसे ले गये; तो फाँसी का फन्दा बड़ा हुआ; क्योंकि कोतवाल साहब दुबले हैं। हम लोगों ने महाराज से अर्ज किया, इस पर हुकम हुआ कि एम मोटा आदमी पकड़कर फाँसी दे दो, क्योंकि बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी को सजा होनी जरूर है, नहीं तो न्याय न होगा। इसी वास्ते ले जाते हैं कि कोतवाल के बदले तुमको फाँसी दें।

गो0दा0-तो क्या और कोई मोटा आदमी इस नगर भर में नहीं मिलता जो मुझ अनाथ फकीर को फाँसी देते हैं।

1 प्या0- इसमें दो बात है- एक तो नगर भर में राजा के न्याय के डर से कोई मुटाता ही नहीं, दूसरे और किसी का पकड़ा तो वह न जाने क्या बात बनावे कि हमी लोगों के सिर कीहं न घहराय और फिर इस राज में साधू महात्मा इन्हीं लोगों के सिर कहीं न घहराय और फिर इस राज में साधू महात्मा इन्हीं लोगों की दुर्दशा है, इससे तुम्ही को फाँसी देंगे।

गो0दा0-दुहाई परमेश्वर की, अरे मैं नाहक मारा जाता हूँ। अरे यहां बड़ा ही अन्धेरे है, अरे गुरु जी महाराज कहा मैंने न माना उसका फल मुझ को भोगना पड़े। गुरु जी कहां हो! आओ, मेरे प्राण बचाओ, अरे मैं बेअपराध मारा जाता हूँ गुरु जी! गुरु जी-

(गोवरधनदास चिल्लाता है, प्यादे लोग उसको पकड़ कर ले जाते हैं) (पटाक्षेप)

छठा दृश्य

(स्थान- श्मशान)

(गोवर्धनदास को पकड़े हुए चार सिपाहियों का प्रवेश)

गो0दा0-हाय बाप रे! मुझे बेकसूर ही फाँसी देते हैं। अरे भाइयों, कुछ तो धरम विचारी! अरे मुझ गरीब को फाँसी देकर तुम लोगों को क्या लाभ होगा। अरे मुझे छोड़ दो। हाय! हाय!

(रोता है और छुड़ाने का यतन करता है)

1सिपाही - अबे चुप रह- राजा का हुकुम कहीं टल सकता है। यह तेरा आखिरी दम है, राम का नाम ले- बेकाइदा क्यों शोर करता है। चुप रह-

गो0दा0-हाय! मैंने गुरु जी का कहना न माना, उसी का यह फल है। गुरु जी ने कहा था कि ऐसे नगर में न रहना चाहिये, हय मैंने न सुना! अरे! इस नगर का नाम ही अंधेरी नगरी और राजा का नाम चौपट्ट है, तब बचने की कौन आशा है। अरे! इस नगर में ऐसा कोई धर्मात्मा नहीं है। जो इस फकीर को बचावै। गुरु जी! कहाँ हैं। बचाओ- गुरु जी-

गुरु जी- (रोता है, सिपाही लोग उसे घसीटते हुए ले चलते हैं)

(गुरु जी और नारायण दास आते हैं)

गुरु- अरे बच्चा गोवर्धनदास! तेरी यह क्या दशा है।

गो0दो0-(गुरु को हाथ जोड़कर) गुरु जी! दीवार ने नीचे बकरी दब गई, सो इसके लिए मुझे फाँसी देते हैं, गुरु जी बचाओ।

गुरु0 - अरे बच्चा! मैंने तो पहिले ही कहा था कि ऐसे नगर में रहना ठीक नहीं, तैने मेरा कहना नहीं सुना।

गो0दा0-मैंने आपका कहा नहीं माना उसी का यह फल मिला। आपके सिवा अब ऐसा कोई नहीं है जो रक्षा करे। मैं आप ही का हूँ आप के सिवा और कोई नहीं। (पैर पकड़कर रोता है)।

महन्त- कोई चिन्ता नहीं, नारायण 'सब' समर्थ है। (भौंह चढ़ाकर सिपाहियों से) सुनो, मुझको अपने शिष्य को अन्तिम उपदेश देने दो, तुम लोग तनिक किनारे हो जाओ, देखा मेरा कहना न मानोगे तो तुम्हार भला न होगा।

सिपाही- नहीं महाराज हम लोग हट जाते हैं। आप बेशक उपदेश कीजिये।

(सिपाही हट जाते हैं। गुरु जी चले के कान में समझाते हैं)

गो0दा0-(प्रकट) तब तो गुरु जी हम अभी फाँसी चढेगे।

महन्त- नहीं बच्चा मुझको चढ़ने दें।

गो0दा0-नहीं गुरु जी, हम फाँजी चढेगे।

महन्त- नहीं बच्चा हम इतना समझाया नहीं मानता, हम बूढ़े भए, हमको जाने दो।

गो0दा0-स्वर्ग जाने में बूढ़ा जवान क्या। आप तो सिद्ध हो, आपको गति-अगति से क्या। मैं फाँसी चढूँगा।

(इसी प्रकार दोनो हुज्जत करते हैं- सिपाही लोग परस्पर चकित होते हैं)

1 सिपाही- भाई! यह क्या माजरा है, कुछ समझ नहीं पड़ता।

2 सिपाही- हम भी नहीं समझ सकते कि यह कैसा गबड़ा है।
(राजा, मन्त्री, कोतवाल आते हैं)

राजा- यह क्या गोलमाल है।

1सिपाही- महाराज! चेला कहता है मैं फाँसी चढ़ूँगा, गुरु कहता है, मे चढ़ूँगा, कुछ मालूम नहीं पड़ता कि क्या बात है।

राजा- (गुरु से) बाबा जी! बोलो। काहे आप फाँसी चढ़ते हैं।

महन्त- राजा! इस समय ऐसा साइत है कि जो मरेगा सो बैकुंठ जायगा।

मन्त्री- तब तो हमी फाँसी चढ़ेंगे।

गोदा0-हम हमा हमको तो हुकुम है।

कोलवाल- हम लटकेंगे। हमारे सबब तो दिवार गिरी।

राजा- चुप रहो, सब लोग। राजा के होते और कौन बैकुण्ठ जा सकता है। हमको फाँसी चढ़ाओ, जल्दी, जल्दी।

महन्त- जहाँ न धर्म न बुद्धि नहिं, नीति न सुजान समाज।

ते ऐसहिं आपुहि नसे, जैसे चोपट राजा।।

(राजा को लोग टिकटी पर खड़ा करते हैं)

(पटाक्षेप)

2.4 अन्धेरनगरी - आलोचना

(अ)जीवन परिचय

भारतेन्दु हरिचन्द्र का जन्म काशी के एक समृद्ध परिवार में हुआ था। आपके जीवन काल 1850-1800 को देखते हुए आपकी साहित्यिक उपलब्धियाँ बहुत बड़ी थीं। साहित्यिक पत्रकारिता (कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिचन्द्र चन्द्रिका) के प्रारम्भ की बात हो या गद्य की अन्य विधाओं के प्रारम्भ (आत्मकथा, जीवनी, निबंध, नाटक, यात्रावर्तात जैसी विधाओं) की बात भारतेन्दु हिन्दी साहित्य के प्रवर्तक बनते हैं। पद्य को खड़ी बोलने की ओर मोड़ने का प्रयास हो या साहित्य संबंधी 'रीतिविरोधी मानसिक' चेतना पैदा करने का प्रश्न हो, भारतेन्दु हरिचन्द्र हिन्दी साहित्य में अग्रणी माने जाते हैं। हिन्दी साहित्य को राष्ट्रीयता, समाजसुधार की ओर मोड़ने का प्रश्न हो या 'निज भाषा' की उन्नति का सूत्र प्रदान करने का प्रश्न, भारतेन्दु अपने युग के निर्माता बनते हैं। भाषागत रवानी एवं व्यंग्य के प्रयोग के कारण भारतेन्दु की भाषा जिंदादिल हो गई है। भारतेन्दु का लेखकीय व्यक्तित्व इतना बड़ा था कि अपने युग में ही 'भारतेन्दु-मण्डल' के नाम से विख्यात हो गया है।

(ब) नाटक परिचय

'अंधेर नगरी' भारतेन्दु का सर्वाधिक चर्चित नाटक (प्रहसन) है। इसका रचनाकाल सन् 1881 है। इस तरह से यह भारतेन्दु का अंतिम नाटक है। अंधेर नगरी की रचना बंगाल के एक जमींदार को शिक्षित करने लिए भारतेन्दु ने की थी। यह नाटक एक रात में लिखा गया था। अपने

कलेवर में यह नाटक संक्षिप्त ही कहा जा सकता है। लेकिन अपने अर्थ- गांभीर्य में यह नाटक इतनी व्यंजना लिये हुए है। कि पूरा नाटक ही प्रतीकात्मक हो गया है। यह नाटक छः दृश्यों में विभक्त है। नाटक का विकास नाटकीय कार्य व्यापारों पर आधारित है। आरम्भ, प्रयन्त, फलागम जैसी शास्त्रीयता भी है और समसामयिकता भी। एक ओर नाटक लोकवृत्त का घेरा तैयार करता है। तो दूसरी ओर व्यवस्था पर चोट करता है। हास्य-व्यंग्य के साथ व्यवस्था की विसंगति को दिखाने ही इस नाटक का मूल उद्देश्य है।

2.4.1 कथावस्तु

‘अंधेर नगरी’ नाटक (प्रहसन) की कथावस्तु का आधार सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था पर निर्मित था। छः दृश्यों में विभक्त इस नाटक की कथावस्तु का आधार वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक विसंगति है। प्रथम दृश्य नाटक की प्रस्तावना रूप में आया है। “लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान/लोभ कभी नहीं कीजिए, यामें नरक निदाना।” सूत्र रूप में आया है। लोभ और मूर्खता चूँकि पूरे नाटक के कथा तत्वों को आबद्ध किए हुए है, इस दृष्टि से भी महन्त द्वारा कहे गये ये वाक्य नाटक की प्रस्तावना व कथा के मूल बिन्दु का संकेत करते हैं। भारतेन्दु के नाटकों की एक प्रधान विशेषता उसका प्रतीकाव्यक स्वरूप है। चाहे व ‘भारत-दुर्दशा’ नाटक हो या ‘अंधेर नगरी’ अपनी व्यंजना में प्रतीकात्मकता ही है। इस नाटक में गुरु विवेक के प्रतिनिधि रूप में आया हैं गोबर्धनदास मूर्खता के प्रतीक रूप में आया है। दूसरा शिष्य नारायणदास बुद्धि के प्रतीक रूप में आया है, जो विवेक का अनुसरण करती है। चौपट राज-दिशाहीन व्यवस्था का प्रतीक है। नाटक का दूसरा दृश्य बाजार पर आधारित है। बाजार में कबाव, चनेवाला, नारंगीवाली, हलवाई, कुंजड़िन, मसाले वाला, पाचक वाला, मछली वाली, बनिया सभी अपनी दुकान लगाये दिखते हैं। सबका दाम प्रति टका सेर है। पूरे नाटक का बीज वक्तव्य भी इसी पंक्ति में निहित है। नाटक का तीसरा दृश्य गुरु (महन्त) व उकसे दोनों शिष्यों नारायणदास व गोबर्धनदास के वार्तालाप पर आधारित है। महन्त अपने शिष्यों को समझाता है कि जहाँ अच्छे और बुरे, मूर्ख व पंडित का भेद न हो, वह जगह रहने लायक नहीं है। इस प्रकार यह दृश्य नाटक में आने वाले घटना-क्रम का संकेत करता है। नाटक का चतुर्थ दृश्य राजसभा का है। इस दृश्य में चौपट राजा की मूर्खता का हमें दर्शन होता है। कथा सूत्र का विकास भी इसमें है- जब राजा की अदूरदर्शिता व अन्यायपूर्ण समझ का हमें पता चलता है। पाँचवें दृश्य में नाटकीय ढंग से गोबर्धनदास को फाँसी के लिए पकड़ लिया जाता है। इस तर्क के कारण कि ‘जो भी मोटा होगा और जिसकी गर्दन फाँसी के फंदे में आयेगी, उसे फाँसी दिया जायेगा’, गोबर्धनदास को फाँसी के लिए पकड़ लिया जाता है। यह दृश्य नाटकीय भाषा में कथा का चरम विकास है नाटक का छठा व अंतिम दृश्य श्मशान पर केन्द्रित है। गोबर्धनदास के बुलाने पर महन्त आकर उसे बचा लेता है और अपनी बृद्धि से राजा को फाँसी पर चढ़ा देता है। इस प्रकार सुखद अन्त के साथ नाटक सामप्त हो जाता है। कथावस्तु का विश्लेषण करें तो ऊपर से साधारण सी दिखनेवाली कथावस्तु अपने भीतर गहरे व्यंग्य को धारण किए हुए है। कथावस्तु का फैलाव इतना घनीभूत है कि चौपट राजा व अंधेर नगरी संपूर्ण राष्ट्र के पर्याय रूप में प्रसरित हो जाते हैं।

2.4.2 पात्र/ चरित्र चित्रण-

संपूर्ण नाटक का विश्लेषण करने पर 'अंधेर नगरी' की व्यंजना अपने आप में अप्रतिम है। चाहे वह कथावस्तु का संदर्भ हो या चरित्र-चित्रण का प्रश्न, सर्वत्र भारतेन्दु के व्यक्तित्व व लेखन-शैली के हमें दर्शन होते हैं। चरित्र व पात्र विश्लेषण के प्रसंग में हम देखते हैं कि अन्य नाटकों की तुलना इस नाटक में पात्रों की संख्या कम है। महन्त, उसके दोनों शिष्यों - नारायणदास व गोबर्धनदास व चौपट्ट राजा यही नाटक के प्रधान चरित्र हैं। अन्य पात्रों में मंत्री, चूने वाला, भिश्ती, कस्साई, गड़ेरिया, कोतवाल, सिपाही हैं। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु जी ने कुछ वर्गीय पात्रों का भी रचा है। नाटक के दूसरे दृश्य में कबाव वाला, घासीराम, नारंगी वाली, हलवाई, कुजड़िन, मुगल, पाचकवाला, मछलीवाली, जातवाला (ब्राह्मण), बनिया इत्यादि हैं। भारतेन्दु के चरित्र चित्रण में उनकी व्यंग्यात्मक दृष्टि देखते ही बनती है। चाहे व नगर का नामकरण (अंधेर नगरी) हो या राजा का नामकरण (चौपट्ट राजा)।

2.4.3 संवाद-

'अंधेर नगरी' अपने कलेवर में संक्षिप्त व छोटा नाटक है। संक्षिप्त आकार के बावजूद अपने संवादों की चुस्ती, प्रसंगानुइलता व व्यंग्यता के कारण नाटक की भाषा अपने उद्देश्य में सफल है। सामान्य बोलचाल की भाषा में इतना अर्थ-गौरव कम ही देखने को मिलता है। जयशंकर प्रसाद की संवाद योजना की तरह भारतेन्दु में दार्शनिक ऊँचाई भले न मिले, किन्तु व्यंग्य में भारतेन्दु के संवाद ज्यादा मारक हैं। गीतात्मक ढंग से प्रहसन का प्रारम्भ होता है, जो भारतीय नाट्य परम्परा के क्रम में ही है। दूसरे दृश्य में, बाजार का संपूर्ण चित्र गीतों के माध्यम से ही खींचा है। गीत भी सीधे-सादे नहीं व्यंग्यात्मक। घासीराम का कथन देखें- 'चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते ॥' इसी प्रकार पाचकवाला का संवाद देखिये- "चूरन जब से हिन्द में आया। इसका धन बल सभी घटाया..... चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते।..... चूरन खावै एडिटर जात, जिनके पेट पचै नहीं बाता।..... चूरन साहब लोग जो खाता। सारा हिन्द हजम कर जाता। चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते ॥" इसी प्रकार जातवाला (ब्राह्मण) का कथन देखिये- 'जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्त ब्राह्मण से धोबी हो जाएं और धोबी को ब्राह्मण कर दें..... उत्तर- आधुनिक संदर्भों में उपरोक्त पंक्तियाँ कितनी प्रासंगिक हैं। इसी प्रकार गोबर्धनदास का कथन देखें- 'अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा, टके सेर भाजी टका सेर खाजा'।

'अंधेर नगरी' नाटक की भाषा की एक प्रमुख विशेषता इसकी हास्य शैली है। नाअक् के चौथे दृश्य में इस प्रकार के काफी संवाद हैं।

2.4.4 देशकाल एवं वातावरण-

'अन्धेर नगी' नाटक का रचनाकाल 1881 ई. है। वह समय एक और भारतीय समाज राजनीतिक रूप से औपनिवेशिक परतंत्रता से जूझ रहा था, दूसरी ओर सामाजिक धरातल पर जातिगत, धार्मिक, वर्गगत संकीर्णताओं से भी जूझ रहा था। कहते हैं- 'अंधेर नगरी' नाटक की

तत्कालीन प्रेरणा यह कही जाती है कि इसे भारतेन्दु जी ने बंगाल के एक भ्रष्ट जमींदार को उसके कर्तव्य का भान कराने के लिए लिखा था। क्रमशः नाटक की व्यंजना संपूर्ण राष्ट्र में प्रसरित हो जाती है। अंधेर नगरी, अंग्रेजी कुशासन के प्रतीक के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। और चौपट्ट राजा तत्कालीन अंग्रेजी शासकों में रूपान्तरित हो जाता है। भारतेन्दु युग की अराजकता, दिशाहीनता एवं शोषण को यह नाटक बखूबी चित्रित करता है। पाचकवाले के बहाने से भारतेन्दु ने भारतवासियों की दुर्बलता, रिश्वतखोरी, महाजनों का शोषण, अंग्रेजों का शोषण, पुलिस की अराजकता इत्यादि पर प्रकाश डाला है इसी प्रकार जातवाले के बहाने से भारतेन्दु जी ने पूँजी की वर्चस्ववादी प्रकृति व भारतीय समाज के अनैतिक आचरण व ह्यसशील स्थिति का चित्र खींचा है। तत्कालीन समाज की विसंगति को व्यक्त करने के लिए भारतेन्दु जी ने गीतों का सार्थक प्रयोग किया है। अंधेर-नगरी का प्रसिद्ध कथन देखिये-

“ अन्धा धुन्ध मच्या सब देसा।

मानहु राजा रहत विदेशा।”

अभ्यास प्रश्न-

(क) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. अंधेर नगरी..... है। (भाण/गीतिका/प्रहसन)
2. अंधरे नगरी कर रचनाकाल..... है।(1850/188/1900)
3. अंधेर नगरी के राजा का नाम.... है। (चौपट्ट/गोवर्धनदा/नारायणदास)
4. गुरु को नाटक में कहा गया है (गोवर्धनदास/महन्त/नारायणदास)
5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म..... में हुआ था। (1850/1885/1900)

(ख) सही / गलत का चुनाव कीजिए।

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मृत्यु 1885 ई० में हुई थी। (सही/गलत)
2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कई गद्य विधाओं की शुरूआज की थी। (सही/गलत)
3. कविवचन सुधा भारतेन्दु द्वारा संपादित पत्रिका थी। (सही/गलत)
4. अंधरे नगरी 4 दृश्यों में विभक्त नाटक है। (सही/गलत)
5. भारत दुर्दशा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित नाटक है। (सही/गलत)

2.5 अंधेर नगरी: मूल्यांकन

जब राष्ट्र सांस्कृतिक व राजनीतिक पराधीनता के चक्र के तले दबता-पिसता, कराहता है तब-तब समर्थ रचनाकार अपने ढंग से उसका प्रतिकार करते रहते हैं। प्रतिकार में अक्सर 'लोक' उनका आधार व माध्यम बनते हैं। अंग्रेजी दासता का प्रतिकार लोक जीवन व लोक शैली से बेहतर और क्या हो सकता था? अंधेर नगरी में भारतेन्दु जी ने लोक को आधार बनाकर के औपनिवेशिक सत्ता से प्रतिरोध की नई रणनीति खोजी है। 'अंधेर नगरी- सम्पूर्ण लूट-खसोट व दिशाही राष्ट्र का प्रतीक बन गया। अंधेर नगरी आज मुहाविरा बन गया है, यह किसी रचनाकार की सामर्थ्य का ही संकेत समझना चाहिए। ऊपरले स्तर पर देखने पर इसकी कथावस्तु

की कमियों की ओर लोगों ने ईशारा भी किया है। डॉ० प्रहसन की कथावस्तु साधारण हैं कहीं-कहीं उसमें ऐसे अंश आ गए हैं, जो देश की तत्कालीन अवस्था पर प्रकाश डालते हैं। साथ ही उसमें अति नाटकीयता है और हास्य भी उच्च कोटि का नहीं है।” दरअसल अंधेर-नगरी की व्यंजकता को न समझ पाने के कारण ही आलोचकों ने इसे साधारण नाटक समझ लिया। जबकि अपनी साधारणता में हय महान व्यंजकता को अपने में समेटे हुए है। हमने पहले भी संकेत किया था कि भारतेन्दु के नाटक अपनी बनावट में प्रीतिकात्मक स्वरूप ग्रहण किए हुए हैं, अतः उनकी मूल संरचना को समझने में इस तथ्य को भी हमें ध्यान रखना होगा। ‘अंधेर-नगरी’ का बाज़ार दृश्य क्या सामान्य अर्थ रखता है? प्रेमचन्द्र ने भी बाज़ार को चित्रित किया है (देखें, ‘ईदगाह’ कहानी), भवानी प्रसाद मिश्र ने ‘गीतफ़रोश’ में बाज़ार को चित्रित किया है तथा हबीब तनवीर ने ‘आगरा बाज़ार’ नामक नाटक में बाज़ार को केंद्र में खड़ा किया है। प्रेमचन्द्र, भवानीप्रसाद मिश्र तथा हबीब तनवीर का बाज़ार चित्रण भारतेन्दु से प्रभावित है।

2.6 सारांश

‘अंधेर नगरी’ नाटक का अध्ययन आपने कर लिया है। नाटक के मूल पाठ व उसकी आलोचना का भी आपने अध्ययन किया.... इस नाटक का अध्ययन करने के पश्चात् आपने जाना कि-

- लोभ और मूर्खता के विनाश के आधार बनते हैं।
- व्वस्था की विसंगति के कारण व्यक्ति का जीवन कितना त्रासीपूर्ण और संकट में पड़ जाती है, हय तथ्य नाटक के माध्यम से हमने जाना।
- बाजार जीवन की विभिन्नता की संरचना का प्रतीक है, इस ढंग से वर्गीय चरित्र प्रकार के होते हैं, नाटक के माध्यम से हमने जाना।
- व्यवस्था में एडीटर, पुलिस, न्याय कैसे मिलकर अराजकता पैदा करते हैं, इस बात को भी अंधेर नगरी में स्पष्ट किया गया है।

2.7 शब्दावली

- चौपट्ट राजा - भ्रष्ट शासक
- अंधेर नगरी - नाटक में आये नगर का नाम, व्यंजना में सारे गलत कार्यों का केन्द्र।
- नसाई - नष्ट होना।
- कबिकुल राई - कवि समूह के सिरमौर, शीर्ष
- टिकस - टैक्स, कर
- विलायत - विदेश, ब्रिटिश राज का संकेत।

- सेर - माप का पुराना रूप, किलों के समतुल्या

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क)

1. प्रहसन
2. 1881
3. चौपट्ट
4. महन्त
5. 1850

(ख)

1. सही
2. सही
3. सही
4. गलत
5. सही

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अंधेर नगरी - (सं) शर्मा, रामकिशोर, विद्या प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. हिन्दी नाटक नई परख- (सं) गौतम, रमेश, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली।

2.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

संस्कृति की उत्तर कथा – शम्भुनाथ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. अंधरे नगरी की नाट्य विशेषताओं पर निबंध लिखिए।

इकाई 3 ध्रुवस्वामिनी : पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 पाठ का उद्देश्य
- 3.3 ध्रुवस्वामिनी: परिचय
 - 3.3.1 लेखक परिचय
 - 3.3.2 नाटक परिचय
- 3.4 ध्रुवस्वामिनी: मूल पाठ
- 3.5 ध्रुवस्वामिनी: आलोचना
 - 3.5.1 कथावस्तु
 - 3.5.2 चरित्र-चित्रण
 - 3.5.3 देश-काल एवं परिवेश
 - 3.5.4 भाषा- शैली
- 3.6 सारांश
- 3.7 शब्दावली
- 3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 3.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भारतीय नाट्य परम्परा का संबंध नवजागरणकालीन चेतना से है। प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने यह प्रश्न उठाया है कि क्या कारण है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ नाटकों से हुआ? फिर इसका उत्तर तलाशते हुए उन्होंने स्थापना दी है कि चूँकि नाटक का मूल स्वरूप, अपनी प्रकृति में, सामाजिक है, इसलिए नवजागरण के प्रवक्ताओं ने इसका चुनाव सायास किया था। नाटक के रच जाने के जो भी कारण रहे हों, किन्तु एक बात निर्विवाद रूप से सत्य है और वो यह है कि नाटक का प्रभाव साहित्य की अन्य सारी विधाओं से ज्यादा तीव्र गति से प्रसरित होता है। एक तो अपनी दृश्यता के कारण और दूसरे अपनी संकेतधर्मिता के कारण। नाटक के माध्यम से ही हिन्दी साहित्य प्रारम्भ हुआ तो दूसरे हिन्दी समालोचना का प्रारम्भ भी नाटकों के माध्यम से हुआ। इसलिए नाटक प्रारम्भ से ही हिन्दी साहित्य के केन्द्र में रहा। बावजूद इसके रंगमंचशालाओं का अभाव बना रहा। भारतेन्दु जी ने स्वयं इस दिशा में प्रयास किया। उनके प्रयास से काशी में नाट्यशालाओं का निर्माण हुआ और मंचन भी। भारतेन्दु जी की नाट्य विरासत को जयशंकर प्रसाद जी ने सांस्कृतिक रूप प्रदान किया। जयशंकर प्रसाद के नाटक उच्च सांस्कृतिक पाठिका के आधार पर रचित हुए हैं। एक ओर राष्ट्रीय पराधीनता की पीड़ा तो दूसरी ओर उसका रचनात्मक उत्तर खोजने की प्रक्रिया में ही जयशंकर प्रसाद जी के नाटक सृजित हुए हैं। अपने प्रारंभिक पूर्वग्रह कि- नाटक के लिए रंगमंच होने चाहिए- का निराकरण करते हुए जयशंकर प्रसाद क्रमशः नाट्य निर्देशों व मंचीय आवश्यकताओं को समझने लगे थे। इस दृष्टि से 'ध्रुवस्वामिनी' जयशंकर प्रसाद की सवश्रेष्ठ नाट्य कृति है।

जयशंकर प्रसाद के नाट्य लेखन तक समस्या नाटकों का चलन हो गया था। उसके दबाव में किसी एक समस्या को लेकर संपूर्ण नाटक की रचना की जाने लगी थी। दूषण के समस्या नाटकों का प्रभाव 'ध्रुवस्वामिनी' पर आलोंकों ने स्वीकार किया है। पूर्व के नाटकों से अलग 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में जयशंकर प्रसाद ने स्त्री को इसका प्रधान पात्र बनाया है। इस दृष्टि से आलोच्य नाटक "नायिका प्रधान नाटक है। इस नाटक की एक ओर विशेषता यह है कि इसमें स्त्री अपने अधिकारों के प्रतिनागरूक होती है और वह निर्णय लेने की स्थिति में आती है। इस दृष्टि से भारतीय नाटकों में 'ध्रुवस्वामिनी' अपना अलग महत्व रखती है।

3.2 पाठ का उद्देश्य

एम0ए0एच0एल0202 की यह तीसरी इकाई है। यह इकाई ध्रुवस्वामिनी नाटक पर केन्द्रित है। इस इकाई अध्ययन के पश्चात् आप-

- नाटक विधा की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ध्रुवस्वामिनी नाटक से परिचित हो सकेंगे।
- भारतीय इतिहास व संस्कृति के विशेष काल खण्ड को सकझ सकेंगे।
- ध्रुवस्वामिनी नाटक की नाट्य कला को समझ सकेंगे।

3.3 ध्रुवस्वामिनी : परिचय

3.3.1 लेखक परिचय -

जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण साहित्यकार है। उनका जन्म काशी के प्रतिष्ठित सुंधनी साहू परिवार में हुआ था। सन् 1889 में आपका जन्म हुआ था। स्कूली शिक्षा पूरी न होने कारण आपने स्वाध्याय से ही कई विषयों व भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लिया। आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी। आपने कविता, कहानी, संपादन, उपन्यास व नाटकों के क्षेत्र में महनीय कृतियाँ हिन्दी साहित्य को दी है। नाटकों को गंभीर स्वरूप तो आपके ही कारण मिला है। इसी प्रकार कविता के क्षेत्र में छायावादी काव्य आन्दोलन के आप आधार स्तम्भ रहे हैं। जयशंकर प्रसाद जी के साहित्य का संक्षिप्त परिचय जानना, उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को समझने की दृष्टि से प्रासंगिक है।

प्रमुख कृतियाँ -

काव्य: कानन कुसुम, करुणालय, महाराणा का महत्व, झरना, प्रेम पथिक, लहर, आँसू, कामायनी (महाकाव्य)।

कहानी: छाया आकाशदीप, इन्द्रजाल, आंधी, स्वप्न पथिक, प्रतिध्वनि, गुंडा, पुरस्कार जैसी 70 कहानियाँ।

संपादन: इन्दु पत्रिका में विशेष योगदान।

उपन्यास: कंकाल, तितली, इरावती (अपूर्ण)।

निबन्ध: काव्यकला तथा अन्य निबंध।

नाटक: सज्जन, कल्याणी परिणय, करुणालय, प्रायश्चित्त, राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, कामना, स्कन्दगुप्त, एक घूँट, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी (1933ई)

3.3.2 नाटक परिचय

‘ध्रुवस्वामिनी’ जयशंकर प्रसाद का रंगमंचीय विद्यान की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ नाटक माना गया है। रंगमंचीय विद्यान की शर्तों का पालन करने के कारण ही इसका कई बार मंचन संभव हो सका है। इसमें नाटक में कुल मिलाकर तीन ही अंक हैं और दृश्य संख्या भी हर नाटक में सीमित

है। दृश्य और अंक कम होने के कारण नाटकीय कसाव की दृष्टि से नाटक सफल रहा है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक अपने विद्यान में ऐतिहासिक है। इसमें कथानक का केन्द्र बिन्दु गुप्तकाल का साम्राज्य है। चन्द्रगुप्त, रामगुप्त व ध्रुवस्वामिनी जैसे ऐतिहासिक पत्रों के साथ ही जय शंकर प्रसाद ने कुछ काल्पनिक पत्रों की भी सृष्टि की है। देशकाल, परिवेश की शर्तों पर नाटक सफल रहा है क्योंकि इसने सम्पूर्ण इतिहास के एक प्रमुख अंश को अपने क्रूरता व वैभव के साथ हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

अभ्यास प्रश्न-

(क) सही/गलत में उत्तर दीजिए।

1. कानन कुसुम जयशंकर प्रसाद का नाटक है। (सही/गलत)
2. कंकाल जयशंकर प्रसाद की प्रसिद्ध कहानी है। (सही/गलत)
3. ध्रुवस्वामिनी नाटक पर समस्या नाटकों का प्रभाव है। (सही/गलत)
4. कामायनी की रचना विधा महाकाव्य है। (सही/गलत)
5. आकाशदीप की रचना विधा कहानी है। (सही/गलत)

(ख) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. ध्रुवस्वामिनी का रचनाकाल..... है। (1933/1935/1940)
2. जयशंकर प्रसाद का जन्म वर्ष है..... (1930/1889/1850)
3. जयशंकर प्रसाद का मृत्यु वर्ष है (1937/1940/1950)
4. '.....' पत्रिका संपादन में जयशंकर प्रसाद का महत्वपूर्ण योगदान है। (इंदु, जागरण, हंस)
5. कामायनी का प्रकाशन वर्ष..... है। (1936/1933/1932)।

3.4 मूल पाठ

प्रथम अंक

(शिविर का पिछला भाग, जिसके पीछे पर्वतमाला की प्राचीर है, शिविर का एक कोना दिखलाई दे रहा है। जिससे सटा हुआ चंद्रांतप टँगा है। मोटी-मोटी रेशमी डोरियों से सुनहले काम के परदे खम्भों में बँधे हैं। दो-तीन सुन्दर मन्च रक्खे हुए हैं। चन्द्रांतप और पहाड़ी के बीच छोटा-सा कुञ्ज: पहाड़ी पर से एक पतली जलधारा उस हरियाली में बहती है। झरने के पास शिलाओं से चिपकी हुई लता की डालियाँ पवन में हिल रही हैं। दो-चार छोटे-बड़े वृक्ष, जिन पर फलों से लदी हुई सेवती की लता छोटा-सा झुरमुट बना रही है। शिविर के कोने से ध्रुवस्वामिनी का प्रवेश। पीछे-पीछे एक लम्बी और कुरूप स्त्री चुपचाप नंगी तलवार लिये आती)

ध्रुवस्वामिनी - (सामने पर्वत की ओर देख कर) सीधा तना हुआ, अपने प्रभुत्वसाकार कठोरता, अभ्रभेदी उन्मुक्त शिखर! और इन क्षुद्र कोमल निरीह लताओं और पौधों को इसके चरण में लोटना ही चाहिए न! (साथवाली खड्गधारिणी की ओर देखकर) क्यों, मन्दाकिनी नहीं आई? (वह उत्तर नहीं देती है) बोलती क्यों नहीं? यह तो मैं जानती हूँ, कि इस राजकुल के अन्तःपुर में मेरे लिए न जाने कब से नीरव अपमान सञ्चित रहा, जो मुझे आते ही मिला; किन्तु क्या तुम-जैसी दासियों से भी वही मिलेगा? इसी शैलमाला की तरह मौन रहने का अभिनय तुम न करो, बोलो! (वह दाँत निकालकर विनय प्रकट करती हुई कुछ और आगे बढ़ने का संकेत करती है) अरे, यह क्या: मेरे भाग्य-विधाता! यह कैसा इन्द्रजाल उस दिन राजमहापुरोहित ने कुछ आहुतियों के बाद मुझे जो आशिर्वाद दिया था, क्या यह अभिशाप था? इस राजकीय अन्तःपुरमें सब जैसे एक रहस्य छिपाये हुये चलते बोलते हैं और मौन हो जाते हैं;

(खड्गधारिणी विवशता और भय का अभिनय करती हुई आगे बढ़ने का संकेत करती है) तो क्या तुम मूक हो? तुम कुछ बोल न सको, मेरी बातों का उत्तर भी न दो, इसलिए तुम मेरी सेवा में नियुक्त की गयी हो? वह असह्य है। इस राजकुल में एक भी सम्पूर्ण मनुष्यता का निदर्शन मिलेगा क्या? जिधर देखा कुबड़े, बौने, हिजड़े, गूँगे और बहरे।

(चिढ़ती हुई ध्रुवस्वामिनी आगे बढ़कर झरने के किनारे बैठ जाती है, खड्गधारी भी इधर-उधर देखकर ध्रुवस्वामिनी के पैरों के समीप बैठती है)

खड्गधारिणी- (सशंक चारों ओर देखती हुई) देवि, प्रत्येक स्थान और समय बोलने के योग्य नहीं होता, कभी-कभी मौन रह जाना बुरी बात नहीं है। मुझे अपनी दासी समझिए। अवरोध के भीतर मैं गूँगी हूँ। यहाँ संदिग्ध न रहने के लिये मुझे ऐसा ही करना पड़ता है।

ध्रुवस्वामिनी - अरे, तो क्या तुम बोलती भी हो? पर यह तो कहो, यह कपट-आचरण किस लिये?

खड्गधारिणी - एक पीड़ित की प्रार्थना सुनाने के लिए। कुमार चन्द्रगुप्त को आप भूल न गयी होंगी।

ध्रुवस्वामिनी - (उत्कण्ठा से) वही न, जो मुझे बन्दिनी बनाने के लिये गये थे।

खड्गधारिणी - (दाँतों से जीभ दबाकर) यह आप क्या कह रही है? उनको तो स्वयम् अपने भिषण भविष्य का पता नहीं। प्रत्येक क्षण उनके प्राणों पर सन्देह करता है। उन्होंने पूछा है कि मेरा क्या अपराध है।

ध्रुवस्वामिनी - (उदासी की मुस्कुराहट के साथ) अपराध! मैं क्या बताऊँ! तो क्या कुमार भी बन्दी है?

खड्गधारिणी - कुछ-कुछ वैसा ही है देवि! राजाधिराज से कहकर क्या आप उनका कुछ उपकार कर सकेंगी।

ध्रुवस्वामिनी - भला मैं क्या कर सकूँगी? मैं तो अपने ही प्राणों का मूल्य नहीं समझ पाती। मुझ पर राजा का कितना अनुग्रह है, यह भी मैं आज तक न जान सकीं, मैंने तो कभी उनका मधुर सम्भाषण सुना ही नहीं। विलासिनियों के साथ मदिरा में उन्मत्त, उन्हें अपने आनन्द से अवकाश कहाँ!

खड्गधारिणी - तब तो अदृष्ट ही कुमार के जीवन का सहायक होगा। उन्होंने पिता का दिया हुआ स्वत्व और राज्य का अधिकार तो छोड़ ही दिया; इसके साथ अपनी एक अमूल्य निधि भी। (कहते-कहते सहसा रूक जाती है)

ध्रुवस्वामिनी - अपनी अमूल्य निधि! वह क्या?

खड्गधारिणी - वह अत्यन्त गुप्त है देवि, किन्तु मैं प्राणों की भीख माँगती हुई कह सकूँगी।

ध्रुवास्वामिनी - (कुछ सोचकर) तो जाने दो, छिपी हुई बातों में घबरा उठी हूँ, हाँ, मैंने उन्हें देखा था, वह निरभ्र प्राची का बाल-अरूण आह! राज-चक्र सबको पीसता है, पिसने दो, हम निस्हायों को और दुर्बलों को पिसने दो।

खड्गधारिणी - देवि, वह वल्लरी जो झरने के समीप पहाड़ी पर चढ़ गयी है, उसकी नन्हीं-नन्हीं पत्तियों को ध्यान से देखने पर आप समझ जायेंगी कि वह काई की जाति की है। प्राणों की क्षमता बढ़ा लेने पर वही काई जो बिछलन बन कर गिरा सकती थी, अब दूसरों के ऊपर चढ़ने का अवलम्ब बन गयी है।

ध्रुवास्वामिनी - (आकाश की ओर देखकर) वह, बहुत दूर की बात है। आह, कितनी कठोरता है! मनुष्य के हृदय में देवता को हटाकर राक्षस कहाँ से घुस आता है? कुमार स्निग्ध, सरल, और सुन्दर मूर्ति को देखकर कोई भी प्रेम से पुलकित हो सकता है। किन्तु, उन्हीं का भाई? आश्चर्य?

खड्गधारिणी - कुमार को इतने में ही सन्तोष होगा कि उन्हें कोई विश्वासपूर्वक स्मरण कर लेता है। रही अभ्युदय की बात, सो तो उनको अपने बाहु-बल और भाग्य पर विश्वास है।

ध्रुवस्वामिनी - किन्तु उन्हें कोई ऐसा साहस का काम न करना चाहिये जिसमें उनकी परिस्थिति और भी भयानक हो जाय।

(खड्गधारिणी खड़ी हो जाती है)

- अच्छा, तो अब तू जा और अपने मौन संकेत से किसी दासी को यहाँ भेज दे। मैं अभी यहीं बैठना चाहती हूँ।

(खड्गधारिणी नमस्कार करके जाती है। और एक दासी का प्रवेश)

दासी - (हाथ जोड़कर) देवि, सायंकाल हो चला है। वनस्पतियाँ शिथिल होने लगी हैं। देखिये न व्योम-विहारी पक्षियों का झुण्ड भी अपनी नीड़ों में प्रसन्न कोलाहल से लौट रहा है। क्या भितर चलने की अभी इच्छा नहीं है?

ध्रुवास्वामिनी - चलूँगी क्यों नहीं? किन्तु मेरा नीड़ कहाँ? यह तो स्वर्ण-पिंजर है।

(करुण भाव से उठकर दासी के कन्धे पर हाथ रखकर चलने की उद्यत होती है। नेपथ्य में कोलाहल- 'महादेवी' कहाँ है, उन्हें कौन बुलाने गयी है?)

ध्रुवास्वामिनी - हैं-हैं, यह उतावली कैसी?

प्रतिहारी - (प्रवेश करके घबराहट से) भट्टारक इधर आएँ हैं क्या?

ध्रुवास्वामिनी - (व्यंग से मुस्कराती हुई) मेरे अंचल में तो छिपे नहीं है। देखो किसी कुंज में ढूँढो।

प्रतिहारी - (सम्भ्रम से) अरे महादेवि, क्षमा कीजिए। युद्ध-सम्बन्धी एक आवश्यक संवाद देने के लिए महाराज को खोजती हुई मैं इधर आ गयी हूँ।

ध्रुवास्वामिनी - होंगे कहीं, यहां तो नहीं हैं।

(उदास भाव से दासी के साथ ध्रुवस्वामिनी का प्रस्थान। दूसरी ओर से खड्गधारिणी का पुनः प्रवेश और कुंज में से अपना उत्तरीय सँभालता हुआ रामगुप्त निकल कर एक बार प्रतिहारी की ओर फिर खड्गधारिणी की ओर देखता है)

प्रतिहारी - जय हो देव! एक चिन्ताजनक समाचार निवेदन करने के लिए अमात्य ने मुझे भेजा है।

रामगुप्त - (झुंझला कर) चिन्ता करते-करते देखता हूँ कि मुझे मर जाना पड़ेगा! ठहरो (खड्गधारिणी से) हाँ जी, तुमने अपना काम तो अच्छा किया, किन्तु मैं समझ न सका कि चन्द्रगुप्त को वह अब भी प्यार करती है या नहीं?

(खड्गधारिणी प्रतिहारी की ओर देखकर चुप रह जाती है)

रामगुप्त - (प्रतिहारी की ओर क्रोध देखता हुआ) तुमने मैंने कह न दिया कि अभी मुझे अवकाश नहीं, ठहर कर आना।

प्रतिहारी - राजाधिराज! शकों ने किसी पहाड़ी राह से उतर कर नीचे का गिरि-पथ रोक लिया है। हम लोगों के शिविर का सम्बन्ध राज-पथ से छूट गया है। शकों ने दोनों ही ओर से घेर लिया है।

रामगुप्त - दोनों ओर से घिरा रहने में शिविर और भी सुरक्षित है। मूर्ख! चुप रह (खड्गधारिणी से) ध्रुवदेवी, क्या मन-ही-मन चन्द्रगुप्त को है न मेरा सन्देह ठीक?

प्रतिहारी - (हाथ जोड़कर) अपराध क्षमा हो देव! अमात्य, युद्ध-परिषद् आपकी प्रतिक्षा कर रहे है।

रामगुप्त - (हृदय पर हाथ रखकर) युद्ध तो यहाँ भी चल रहा है, देखता नहीं जगत् की अनुपम सुन्दरी मुझसे सन्देह नहीं करती और मैं हूँ इस देश का राजाधिराज!

प्रतिहारी- महाराज, शकराज का सन्देश लेकर एक दूत भी आया है।

रामगुप्त - आह! किन्तु ध्रुवदेवी! उसके मन में टीस है (कुछ सोचकर) जो दूसरों के शासन में रहकर और प्रेम किसी अन्य पुरुष से करती है; उसमें एक गम्भीर और व्यापक रस उद्वेलित रहता होगा। वही तो नहीं, जो चन्द्रगुप्त से प्रेम करेगी वह न जाने कब चोट कर बैठे? भीतर-भीतर न जाने कितने कुचक्र घूमने लगेंगे। (खड्गधारिणी से) सुना न, ध्रुव देवी से कह देना चाहिये कि वह मुझे और मुझसे ही प्यार करे। केवल महादेवी बन जाना ठीक नहीं।

(खड्गधारिणी का प्रतिहारी के साथ प्रस्थान और शिखरस्वामी का प्रवेश)

शिखरस्वामी - कुछ आवश्यक बातें करनी हैं देव!

रामगुप्त - (चिन्ता से उँगली दिखाते हुए, जैसे अपने-आप बातें कर रहा हो) ध्रुवदेवी को लेकर क्या साम्राज्य से भी हाथ धोना पड़ेगा! नहीं तो फिर? (कुछ सोचने लगता है) ठीक तो, सहसा मेरे राजदण्ड ग्रहण कर लेने से पुरोहित, अमात्य और सेनापति लोग छिपा हुआ विद्रोह-भाव रखते हैं। (शिखर से) है न? केवल एक तुम्हीं मेरे विश्वासपात्र हो। समझा न? यही गिरि-पथ सब झगड़ों का अन्तिम निर्णय करेगा। क्यों अमात्य, जिसकी भुजाओं में बल न हो, उसके मस्तिष्क में तो कुछ होना चाहिये?

शिखरस्वामी - (एक पत्र देकर) पहले इसे पढ़ लीजिये। (रामगुप्त पत्र पढ़ते जैसे आश्चर्य से चौंक उठता है) चौंकिए मत, यह घटना इतनी आकस्मिक है कि कुछ सोचने का अवसर नहीं मिलता।

रामगुप्त - (ठहर कर) है तो ऐसा ही; किन्तु एक बार ही मेरे प्रतिकूल भी नहीं मुझे उसकी सम्भावना पहले से ही थी।

शिखरस्वामी - (आश्चर्य से) ऐं? तब तो महाराज ने अवश्य ही कुछ सोच लिया होगा। मेघसंकुल आकाश की तरह जिसका भविष्य घिरा हो, उसकी बुद्धि को तो बिजली के समान चमकना ही चाहिये।

रामगुप्त - (सशंक) कह दूँ! सोचा तो है मैंने; परन्तु क्या तुम उसका समर्थन करोगे?

शिखरस्वामी - यदि नीति-युक्त हुआ तो अवश्य समर्थन करूँगा। सबके विरुद्ध रहने पर भी स्वर्गीय आर्य समुन्द्रगुप्त की आज्ञा के प्रतिकूल मैंने ही आपका समर्थन किया था। नीति-सिद्धान्त के आधार पर ज्येष्ठ राजपुत्र को।

रामगुप्त - (बात काट कर) वह तो-वह तो मैं जानता हूँ, किन्तु इस समय जो प्रश्न सामने आ गया है, उस पर विचार करना चाहियें यह तुम जानते हो कि मेरी इस विजय-यात्रा का कोई गुप्त उद्देश्य है। उसकी सफलता भी सामने दिखाई पड़ रही है। हाँ, थोड़ा-सा साहस चाहिये।

शिखरस्वामी - वह क्या?

रामगुप्त - शक-दूत के लिए जो प्रमाण चाहता हो, उसे अस्वीकार न करना चाहिये। ऐसा करने में इस संकट के बहाने जितना विरोधी प्रकृति है उस सब को हम लोग सहज में ही हटा सकेंगे।

शिखरस्वामी - भविष्य के लिये यह चाहे अच्छा हो; किन्तु इस समय तो हम लोगों को बहुत-से विघ्नों का सामना करना पड़ेगा।

रामगुप्त - (हँसकर) तब तुम्हारी बुद्धि कब काम में आयेगी? और हाँ, चन्द्रगुप्त के मनोभाव का कुछ पता लगा?

शिखरस्वामी - कोई नयी बात तो नहीं।

रामगुप्त - मैं देखता हूँ कि मुझे पहले अपने अन्तःपुर के ही विद्रोह का दमन करना होगा। (निःश्वास लेकर) ध्रुवदेवी के हृदय में चन्द्रगुप्त की आंकाक्षा धीरे-धीरे जाग रही है।

शिखरस्वामी - यह असम्भव नहीं; किन्तु महाराज! इस समय आपको दूत से साक्षात् करके उपस्थित राजनीति पर ध्यान देना चाहिये। यह एक विचित्र बात है कि प्रबल पक्ष संधि के लिए प्रस्ताव भेजे।

रामगुप्त - विचित्र हो चाहे सचित्र, अमात्य, तुम्हारी राजनीतिज्ञता इसी में है कि भीतर और बाहर के सब शत्रु एक ही चाल में परास्त हों। तो चलो।

(दोनों का प्रस्थान! मन्दाकिनी का सशंक भाव से प्रवेश)

मन्दाकिनी - (चारों ओर देखकर) भयानक समस्या है। मूर्खों ने स्वार्थ के लिये साम्राज्य के गौरव का सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया है! सच है, वीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनीतिक छल-छन्द की धूल उड़ती है। (कुछ सोचकर) कुमार चन्द्रगुप्त को यह सब समाचार शीघ्र ही मिलता चाहिये। गुँगी के अभिनय में महादेवी के हृदय का आवरण तनिक-सा हटा है, किन्तु वह थोड़ा-सा स्निग्ध भाव भी कुमार के लिये कम महत्व नहीं रखता। कुमार चन्द्रगुप्त! कितना समर्पण का भाव है उसमें? और उसका बड़ा भाई रामगुप्त! कपटचारी रामगुप्त! जी करता है इस कलुषित वातावरण से कहीं दूर, विस्मृत में अपने को छिपा लूँ। पर मन्दा! तुझे विधाता ने क्यों बनाया? (सोचने लगती है) नहीं; मुझे हृदय कठोर करके अपना कर्तव्य करने के लिये यहाँ रूकना होगा। न्याय का दुर्बल पक्ष ग्रहण करना होगा।

(गाती है)

यह कसक अरे आँसू सह जा!

बनकर विनम्र अभिमान मुझे

मेरा अस्तित्व बता, रह जा।

बन प्रेम छलक कोने-कोने

अपनी नीरव गाथा कह जा।

करूणा बन दुखिया वसुधा पर

शीतलता फैलाता बह जाती है। ध्रुवस्वामिनी का उदास भाव से धीरे-धीरे प्रवेश) पीछे एक परिचारिका पान का डिब्बा और दूसरी चमर लिये जाती है। ध्रुवस्वामिनी एक मंच पर बैठकर अधरों पर उंगली रखकर कुछ सोचने लगती है और चमरधारिणी चमर चलाने लगती है)

ध्रुवस्वामिनी - (दूसरी परिचारिका से) हाँ, क्या कहा! शिखरस्वामी कुछ कहना चाहते हैं? कह दो कल सुनूँगी, आज नहीं।

प्रिचारिका - जैसी आज्ञा! ते मैं कह आऊँ कि अमात्य से कल महादेवी बातें करेंगी?

ध्रुवस्वामिनी - (कुछ सोचकर) ठहरो तो, वह गुप्त-साम्राज्य का अमात्य है, उससे आज भी भेंट करना होगा। हाँ, यह तो बताओ, तुम्हारे राजकूल में नियम क्या है? पहले अमात्य की मन्त्रणा सुननी पड़ती है, तब राजा से भेंट होती है?

प्रिचारिका - (दाँतों से जीभ दबाकर) ऐसा नियम तो मैंने नहीं सुना। यह युद्ध-शिविर है न? परमभट्टारक को अवसर न मिला होगा! म्हादेवी! आपको सन्देह न करना चाहिये।

ध्रुवस्वामिनी - मैं महादेवी ही हूँ न? यदि यह सत्य है तो क्या तुम मेरी आज्ञा से कुमार चन्द्रगुप्त को यहाँ बुल सकती हो? मैं चाहती हूँ कि अमात्य के साथ ही कुमार से भी कुछ बातें कर लूँ।

प्रिचारिका - क्षमा कीजिये, इसके लिए तो पहले अमात्य से पूछना होगा।

(ध्रुवस्वामिनी क्रोध से उसकी ओर देखने लगती है और वह पान का डिब्बा रख कर चली जाती है। एक बौने का कुबड़े और हिजड़े के साथ प्रवेश)

कुबड़ा - युद्ध! भयानक युद्ध!

बौना - हो रहा है कि कहीं होगा मित्र!

हिजड़ा - बहनों, यहीं युद्ध करके दिखाओ न, महादेवी भी देख लें।

बौना - (कुबड़े से) सुनता है रे! तू अपना हिमाचल इधर कर दे- मैं दिग्विजय करने के लिए कुबेर पर चढ़ाई करूँगा।

(उसके कूबड़ को दबाता है और कुबड़ा अपने घुटनों और हाथों के बल बैठ जाता है। हिजड़ा कुबड़े की पीठ पर बैठता है। बौना एक मोर्छल लेकर तलवार की तरह उसे घुमाने लगता है)

हिजड़ा - अरे! यह तो मैं हूँ नल-कूबर की वधू! दिग्विजयी वीर, क्या तुम से युद्ध करोगे? लौट आओ, कल आना। मेरे श्वसुर और आर्यपुत्र दोनों ही उर्वशी और रम्भा के अभिसार से अभी नहीं आये। कुछ आज ही तो युद्ध करने का शुभ मूहूर्त नहीं हैं।

बौना - (मोर्छल से पटा घुमाता हुआ) नहीं; आज ही युद्ध होगा। तुम नहीं हो, तुम्हारी उँगलियाँ तो मेरी तलवार से भी अधिक चल रही हैं। कूबड़ तुम्हारे नीचे है। तब मैं कैसे मान लूँ कि तुम न तो नल-कुम्बर हो और न कुबेर! तुम्हारे वस्त्रों से मैं धोखा न खा जाऊँगा। तुम पुरुष हो युद्ध करो!

हिजड़ा - (उसी तरह मटकते हुये) अरे मैं स्त्री हूँ बहनों, कोई मुझसे व्याह भले ही कर सकता है, लड़ाई मैं क्या जानूँ।

(दासी के साथ शिखर स्वामी का प्रवेश)

शिखरस्वामी - महादेवी की जय हो!

(दूसरी ओर से एक युवती दासी के कन्धे का सहारा लिये कुछ-कुछ मदिरा के नशे में रामगुप्त का प्रवेश। मुस्कराता हुआ बौने का खेल देखने लगता है। ध्रुवस्वामिनी उठकर खड़ी हो जाती है और शिखरस्वामी रामगुप्त को संकेत करता है)

रामगुप्त - (कुछ भरिये हुये कण्ठ से) महादेवी की जय हो!

ध्रुवस्वामिनी - स्वागत महाराज!

(रामगुप्त एक मंच पर बैठ जाता है और शिखरस्वामी ध्रुवस्वामिनी के इस शिष्टाचार से चकित होकर सिर खुजलाने लगता है)

कुबड़ा - दोहाई राजाधिराज की! मुझे हिमालय का कूबड़ दुखने लगा। न तो यह नल-कूबर की बधू मेरे कूबर से उठती है और न तो यह बौना मुझे विजय ही कर लेता है।

रामगुप्त - (हँसते हुए) वाह रे वामन वीर! यहाँ दिग्विजय का नाटक खेला जा रहा है क्या?

बौना - (अकड़कर) वामन के बलि-विजय की गाथा और तीन पगों की महिमा सब लोग जानते हैं। मैं भी तीन लात में इसका कबूतर सीधा कर सकता हूँ।

कुबड़ा - लगा दे भाई बौना! फिर यह अचल हेमकूट बनना तो छूट जाय!

हिजड़ा - देखो जी, मैं नल-कूबर की वधू इस पर बैठी है।

बौना - झूठ! युद्ध के डर से पुरुष होकर भी यह स्त्री बन गया है।

हिजड़ा - मैं तो पहले ही कह चुकी कि मैं युद्ध करना नहीं जानती।

बौना - तुम नल-कूबर की स्त्री हो न, तो अपनी विजय का उपहार समझ कर मैं तुम्हारा हरण कर लूँगा। (और लोगों की ओर देखकर उसका हाथ पकड़ कर खींचता हुआ) ठीक होगा न? कदाचित् यह धर्म के विरुद्ध न होगा।

(रामगुप्त ठठाकर हँसने लगता है)

ध्रुवस्वामिनी - (क्रोध से भड़क कर) निकलो! अभी निकलो, यहाँ ऐसी निर्लज्जता का नाटक मैं नहीं देखना चाहती।

(शिखरस्वामी की ओर सक्रोध देखती है। शिखर के संकेत करने पर वे सब भाग जाते हैं)

रामगुप्त - अरे, ओ दिग्विजयी! सुन तो (उठ कर ताली पीटता हुआ हँसने लगता है) ध्रुवस्वामिनी क्षोभ और घृणा से मुँह फिरा लेती है। शिखरस्वामी के संकेत से दासी मदिरा का पात्र ले आती है, उसे देखकर प्रसन्नता से आँखे फाड़कर शिखर की ओर अपने हाथ बढ़ा देता है) अमात्य, आज

ही महादेवी के पास मैं आया और आप भी पहुँच गये, यह एक विलक्षण घटना है। है न? (पात्र लेकर पीता है)

शिखरस्वामी - देव, मैं इस समय एक आवश्यक कार्य से आया हूँ।

रामगुप्त - ओह, मैं तो भूल ही गया था! वह बर्बर शकराज क्या चाहता है? आक्रमण न करूँ, इतना ही तो? जाने दो, युद्ध कोई अच्छी बात तो नहीं!

शिखरस्वामी - वह और भी कुछ चाहता है।

रामगुप्त - क्या कुछ सहायता भी माँग रहा है?

शिखरस्वामी - (सिर झुका कर गम्भीरता से) नहीं देव, वह बहुत ही असंगत और अशिष्ट याचना कर रहा है।

रामगुप्त - क्या? कुछ कहो भी।

शिखरस्वामी - क्षमा हो महाराज! दूत तो अवध्य होता है; इसलिये उसका सनदेश सुनना ही पड़ा। वह कहता था कि शकराज से महादेवी ध्रुवस्वामिनी का (रुक कर ध्रुवस्वामिनी की ओर देखने लगता है। ध्रुवस्वामिनी सिर हिला कर कहने की आज्ञा देती है) विवाह-सम्बन्ध स्थिर हो चुका था, बीच में ही आर्य समुद्रगुप्त की विजय यात्रा में महादेवी के पिता जी ने उपहार में गुप्तकुल में भेज दिया, इसलिए महादेवी को वह।

रामगुप्त - ऐं, क्या कहते हो अमात्य? क्या वह महादेवी को मांगता है।

शिखरस्वामी - हाँ देव! साथ ही वह अपने सामन्तों के लिए मगध के सामन्तों की स्त्रियों को माँगता है।

रामगुप्त - (श्वास लेकर) ठीक ही है, जब उसके यहाँ सामन्त हैं, तब उन लोगों के लिए भी स्त्रियों चाहिए। हां, क्या यह सच है कि महादेवी के पिता ने शकराज से इनका सम्बन्ध स्थिर कर लिया था?

शिखरस्वामी - यह तो मुझे नहीं मालूम?

(ध्रुवस्वामिनी रोष से फूलती हुई टहलने लगती है)

रामगुप्त - महादेवी, अमात्य क्या पूछ रहे हैं?

ध्रुवस्वामिनी - इस प्रथम सम्भाषण के लिए मैं कृतज्ञ हुई महाराज! किन्तु मैं यह भी जानना चाहती हूँ कि गुप्त-साम्राज्य का स्त्री-सम्प्रदान से ही बढ़ा है?

रामगुप्त - (झेंपकर हंसता हुआ) हैं-हैं-हैं, बताइये अमात्य जी!

शिखरस्वामी - मैं क्या कहूँ? शत्रु-पक्ष का यही सन्धि-सन्देश है। यदि स्वीकार न हो तो युद्ध कीजिये। शिविर दोनों ओर से घिर गया है। उसकी बातें मानिये, या मर कर भी अपनी कुल-मर्यादा की रक्षा कीजिये। दूसरा कोई उपाय नहीं।

रामगुप्त - (चौककर) क्या प्राण देने के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं? ऊँहूँ, अब तो महादेवी से पूछिये।

ध्रुवस्वामिनी - (तीव्र स्वर से) और आप लोग, कुबड़ों, बौनों और नपुंसकों का नृत्य देखेंगे। मैं जानना चाहती हूँ किसने सुख-दुख में मेरा साथ न छोड़ने की प्रतिज्ञा अग्नि-वेदी के सामने की है?

रामगुप्त - (चारों ओर देखकर) किसने की है, कोई बोलता क्यों नहीं?

ध्रुवस्वामिनी - तो क्या मैं राजाधिरराज रामगुप्त की महादेवी नहीं हूँ ?

रामगुप्त - क्यों नहीं ?परन्तु रामगुप्त ने ऐया कोई प्रतिज्ञा न की होगी। मैं तो उस दिन द्राक्षासव1 में डुबकी लगा रहा था।

पुरोहितो ने न जाने क्या -क्या पढ़ा दिया होगा। उन सब बातों का बोझ मेरे सिर पर। (सिर हिलाकर) कदापि नहीं।

ध्रुवस्वामिनी - (निस्सहाय होकर हीनता से शिखरस्वामी के प्रति) यह तो हुई राजा की व्यवस्था, अब सुनूँ मंत्री महोदय क्या कहते हैं।

शिखरस्वामी - मैं कहूँगा देवी, अवसर देख कर राज्य की रक्षा करने वाली उचित सम्मति दे देना ही तो मेरा कर्तव्य है। राजनीति के सिद्धान्त से राष्ट्र की रक्षा सब उपायों से करने का आदेश है। उसके लिए राजा, रानी, कुमार और अमात्य सब का विसर्जन किया जा सकता है। किन्तु राज-विसर्जन अन्तिम उपाय है।

रामगुप्त - (प्रसन्नता से) वाह! क्या कहा तुमने ! तभी तो लोग तुम्हें नीति-शास्त्र का बृहस्पति समझते हैं!

ध्रुवस्वामिनी - अमात्य, तुम बृहस्पति हो चाहे शुक्र

किन्तु धूर्त होने से ही क्या मनुष्य भूल नहीं बिठा दिया!

रामगुप्त - (आश्चर्य से) क्या? क्या?? क्या???

ध्रुवस्वामिनी - कुछ नहीं मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषो ने स्त्रियों को अपनी पशु-सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया हैवह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव, नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी सकते हो। हाँ तुम लोगो को आपत्ति से बचाने के लिए मैं स्वये यहाँ से चली जाऊँगी।

शिखरस्वामी - (मुँह बना कर) ऊँह, राजनीति में ऐसी बातों को स्थान नहीं। जब तक नियमों के अनुकूल सन्धि का पूर्ण रूप से पालन न किया जाय, तब तक सन्धि का कोई अर्थ ही नहीं।

ध्रुवस्वामिनी - देखती हूँ कि इस राष्ट्र-रक्षा-यज्ञ में रानी की बलि होगी ही।

शिखरस्वामी - दूसरा कोई उपाय नहीं।

ध्रुवस्वामिनी - (क्रोध से पैर पटक कर) उपाय नहीं, तो न हो निर्लज्ज अमात्य फिर ऐसा प्रस्ताव मैं सुनना नहीं चाहती।

रामगुप्त - (चौक कर) इस छोटी सी बात के लिए इतना उपद्रव! (दासी की ओर देख कर) मेरा तो कण्ठ सूखने लगा।

(वह मदिरा देती है)

ध्रुवस्वामिनी - (दृढता से) अच्छा, तो अब मैं चाहती हूँ कि आमत्य अपने मन्त्रणा-गृह में जाये मैं केवल रानी ही नहीं, किन्तु स्त्री भी हूँ; मुझे अपने को पति कहने वाले पुरुष से कुछ कहना है, राजा से नहीं।

(शिखरस्वामी का दासियों के साथ प्रस्थान)

रामगुप्त - ठहरो जी, मैं भी चलता हूँ (उठना चाहता है। ध्रुवस्वामिनी उसका हाथ पकड़ कर रोक लेती है) तुम मुझसे क्या कहना चाहती हो?

ध्रुवस्वामिनी - (ठहर कर) अकेले यहाँ भय लगता है क्या? बैठिये, सुनिये। मेरे पिता ने उपहार-स्वरूप कन्या-दान किया था। किन्तु गुप्त-सम्राट क्या अपनी पत्नी शत्रु को उपहार में देगे? (घुटने के बल बैठकर) देखिये, मेरी ओर देखिये।

मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझने वाला पुरुष उसके लिए प्राणों का पण लगा सके।

रामगुप्त - (उसे देखता हुआ) तुम सुन्दर; किन्तु सोने की कटार पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय में डुबा नहीं सकता। तुम्हारी सुन्दरता- तुम्हारा नारीत्व- अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिये मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ कदाचित्त तुम यह नहीं जानती हो।

ध्रुवस्वामिनी - (उसके पैरों को पकड़कर) मैं गुप्त- कुल की वधू होकर इस राज-परिवार में आयी हूँ। इसी विश्वास पर।

रामगुप्त - (उसे रोक कर) वह सब मैं नहीं सुनना चाहता।

ध्रुवस्वामिनी - मेरी रक्षा करो। मेरे और अपने गौरव की रक्षा करो। राजा, आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूँ। मैं स्वीकार करती हूँ, कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचारी नहीं हुई; किन्तु वह मेरा अहंकार¹⁰ चूर्ण हो गया है। मैं तुम्हारी होकर रहूँगी। राज्य और सम्पत्ति रहने पर राजा को- पुरुष को बहुत- सी रानियाँ और स्त्रियाँ मिलती है; किन्तु व्यक्ति का मान¹¹ नष्ट होने पर फिर नहीं मिलता।

रामगुप्त - (घबराकर उसका हाथ हटाता हुआ) ओह, तुम्हारा यह घातक¹² स्पर्श बहुत ही उत्तेजनापूर्ण है। मैं, - नहीं तुम मेरी रानी? नहीं नहीं। तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्या आपत्ति हो?

ध्रुवस्वामिनी - (खडी होकर रोष से) निर्लज्ज, मद्यप, क्लीव ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? (ठहर कर) नहीं, मै अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। मै उपहार मे देने की वस्तु, शीतल-मणि नहीं हूँ। मुझे में रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्म- सम्मान की ज्योति लै उसकी रक्षा मै ही करूँगी। (रशना से कृपाणी निकाल लेती है)।

रामगुप्त - (भयभीत होकर पीछे हटता हुआ) तो क्या तुम मेरी हत्या करोगी?

ध्रुवस्वामिनी- तुम्हारी हत्या? नहीं, तुम जिओ। भेड़ की तरह तुम्हारा क्षुद्र जीवन! इसे न लूँगी! मै अपना ही जीवन समाप्त करूँगी।

रामगुप्त - किन्तु तुम्हारे मर जाने पर उस बर्बर शकराज के पास किसको भेजा जायगा? नहीं, नहीं, ऐसा न करो। हत्या! हत्या! दौड़ा! दौड़ो!! (भागता हुआ निकल जाता है: दूसरी ओर से वेग सहित चन्द्रगुप्त का प्रवेश)

चन्द्रगुप्त - हत्या! कैसी हत्या! (ध्रुवस्वामिनी को देखकर) यह क्या? महादेवी ठहरिये!

ध्रुवस्वामिनी - कुमार, इसी समय तुम्हे भी आना था। (सकरुण देखती हुई) मै प्रार्थना करती हूँ कि तुम यहाँ से चले जाओ! मुझे अपने अपमान में निर्वसन- नग्न देवाने का किसी पुरुष को अधिकार नहीं! मुझे मृत्यु की चादर से अपने को ढँक लेने दो।

चन्द्रगुप्त - किन्तु क्या कारण सुनने का मै अधिकारी नहीं हूँ?

ध्रुवस्वामिनी - सुनाने? (ठहर कर सोचती हुई) नहीं, अभी आत्महत्या नहीं करूँगी। यह तीखी छुरी इस अतृप्त हृदय मे विकासोन्मुख कुसुम मे बिषैले कीट के डंक की तरह चुभा दूँया नहीं, इस पर विचार करूँगी। यदि नहीं तो मेरी दुर्दशा का पुरस्कार क्या कुछ और है? हाँ जीवन के लिए कृतज्ञ, उपकृत और आभारी होकर किसी के अभिमानपूर्ण आत्म- विज्ञापन का भार ढोती रहूँ- सही क्या विधाता का निष्ठुर विधान है? छुटकारा नहीं? जीवन नियति के कठोर आदेश पर चलेगी ही? तो क्या यह मेरा जीवन भी अपना नहीं है?

चन्द्रगुप्त - देवि, जीवन विश्व की सम्पत्ति है। प्रसाद से, क्षणिक आवेश से, या दुःख की कठिनाइयो से उसे नष्ट करना ठीक तो नहीं। गुप्त-कुल-लक्ष्मी आज यह छिन्नमस्ता का अवतार किसलिये धारण करना चाहती है? सुनूँ भी?

ध्रुवस्वामिनी - नहीं, मै न मरूँगी। क्योकि तुम आ गये होकर मेरी शिविका के साथ चातर-सज्जित अश्व पर चढ़कर तुम्हीं उस दिन आये थे? तुम्हारा विश्वासपूर्ण मुखमण्डल मेरे साथ आने में क्यो इतना प्रसन्न था?

चन्द्रगुप्त - मै गुप्त- कुल- वधू कों आदरसहित ले आने के लिए गया था फिर प्रसन्न कसो न होता?

ध्रुवस्वामिनी - तो फिर आज मुझे शक- शिविर में पहुँचाने के लिए उसी प्रकार तुमको मेरे साथ चलना होगा। (आँखों से आँसू पोंछती है)

चन्द्रगुप्त - (आश्चर्य से) यह कैसा परिहास!

ध्रुवस्वामिनी - कुमार! यह परिहास नहीं, राजा की आज्ञा है। शकराज को मेरी अत्यन्त आवश्यकता है। यह अवरोध बिना मेरे उपहार दिये नहीं हट सकता।

चन्द्रगुप्त - (आवेश से) यह नहीं हो सता। महादेवी! जिस मर्यादा के लि- जिस महत्व को स्थिर रखने के लिए, मैंने राजदण्ड ग्रहण न करके अपना मिला हुआ अधिकार छोड़ दिया; उसका यह अपमान! मेरे जीवित रहते आर्य समुद्रगुप्त के स्वर्गीय गर्व को इस तरह पद-दलित न होना पड़ेगा। (ठहर कर) और भी एक बात है! मेरे हृदय के अन्धकार में प्रथम किरण - सी आकर जिसने अज्ञात भाव से अपना मधुर आलोक ढाल दिया था, उसको भी मैंने केवल इसीलिए भूलने का प्रयत्न किया कि- (सहसा चुप हो जाता है।)

ध्रुवस्वामिनी - (आँख बन्द किए हुए कुतूहल-भरी प्रसन्नता से) हाँ - हाँ कहो - कहो (शिखरस्वामी के साथ रामगुप्त का प्रवेश)

रामगुप्त - देखो तो कुमार! यह भी कोई बात है? आत्महत्या केतना बड़ा अपराध है।

चन्द्रगुप्त - और आप से तो वह भी नहीं करते बनता!

रामगुप्त - (शिखरस्वामी से) देखो, कुमार के मन में छिपा हुआ कलुष कितना- कितना भयानक है?

शिखरस्वामी - कुमार, विनय गुप्त- कुल का सर्वोत्तम गृह-विधान है, उसे न भूलना चाहिये!

चन्द्रगुप्त - (व्यंग्य से हँसकर) अमात्य, तभी तो तुमने व्यवस्था दी है कि महादेवी को देकर सन्धि की जाय! क्यों, यही तो विनय की पराकाष्ठा है? ऐसा विनय प्रवचको का आवरण है, जिसमें शील न हो। और शील परस्पर सम्मान की घोषणा करता है। कानुरूप! आर्य समुद्रगुप्त का सम्मान।

शिखरस्वामी - (बीच में बात काट कर) उसके लिए मुझे प्राणदण्ड दिया जाय! मैं उसे अविचल भाव से ग्रहण करूँगा; परन्तु राजा और राष्ट्र की रक्षा करने में असमर्थ है, तब भी उस राज की रक्षा होनी चाहिये। अमात्य यह कैसी विवशता है! तुम मृत्यु दण्ड के लिये उत्सुक! महादेवी आत्महत्या करने के लिये प्रस्तुत! फिर यह हिचक क्यों? एक बार अन्तिम बल से परीक्षा कर देखो। बचोगे तो राष्ट्र और सम्मान भी बचेगा, नहीं तो सर्वनाश!

चन्द्रगुप्त - आहा; मन्दा! भला तू कहाँसे यह उत्साह भरी बात कहने के लिये आ गयी? ठीक तो है अमात्य! सुनी, यह स्त्री क्या कह रही है?

रामगुप्त - (अपने हाथों को मसलते हुये) दुरभिमन्धि, छल, मेरे प्राण लेने का कौशल!

चन्द्रगुप्त - तब आओ, हम स्त्री बन जायें और बैठ कर रोये।

हिजड़ा - (प्रवेश करके) कुमार, स्त्री बनना सहज नहीं है। कुछ दिनों तक मुससे सीखना होगा। (सबका मुँह देखता है और शिखरस्वामी के मुँह पर हाथ फेरता है) ऊहूँ, तुम नहीं बन सकते। तुम्हारे ऊपर बड़ा कठोर आवरण है। (कुमार के समीप जा कर) कुमार! मैं शपथ खाकर कह सकती हूँ कि यदि मैं अपने हाथों से सजा दूँ तो आपको देख कर महादेवी का भ्रम हो जाय। (चन्द्रगुप्त उसका कान पकड़ कर बाहर कर देता है।)

ध्रुवस्वामिनी - उसे छोड़ दो कुमार। यहाँ पर एक वही नपुंसक तो नहीं है। बहुत-से किसको - किसको निकालोगे?

(चन्द्रगुप्त उसे छोड़ कर चिन्तित-सा अहलने लगता है और शिखरस्वामी रामगुप्त के कानों में कुछ कहता है।)

चन्द्रगुप्त - (सहसा खड़े होकर) अमात्य, तो तुम्हारी ही बात रही। हाँ, उसमें तुम्हारे सहयोगी हिजड़े की भी सम्मति मुझे अच्छी लगी। मैं ध्रुवस्वामिनी बन कर अन्य सामन्त कुमारों के साथ शकराज के पास जाऊँगा। यदि मैं सफल हुआ तब तो कोई बात ही नहीं, अन्यथा, मेरी मृत्यु के बाद तुम लोग जैसा उचित समझना, वैसा करना।

ध्रुवस्वामिनी - (चन्द्रगुप्त को अपनी भुजाओं में पकड़ कर) नहीं, मैं तुमको न जाने दूँगी। मेरे श्रद्ध, दुर्बल नारी-जीवन का सम्मान बचाने के लिए इतने बड़े बलिदान की आवश्यकता नहीं।

रामगुप्त - (आश्चर्य और क्रोध से) छोड़ो यह कैसा अनर्थ! सबके सामने यह कैसी निर्जज्जता!

ध्रुवस्वामिनी - (चन्द्रगुप्त को छोड़ती हुई जैसे चैतन्य हो कर) यह पाप है? जो मेरे लिए अपनी बलि दे सकता हो, जो मेरे स्नेह (ठहर कर) अथवा इससे क्या? शकराज क्या मुझे देवी बना कर भक्ति-भाव से मेरी पूजा करेगा! वह रे लज्जाशील पुरुष!

(शिखरस्वामी फिर रामगुप्त के कान में कुछ कहता है। रामगुप्त स्वीकारसूचक सिर हिलाता है।)

शिखरस्वामी - राजाधिराज, आज्ञा दीजिये, यही एक उपाय है, जिसे कुमार बता रहे हैं। किन्तु राजनीति की दृष्टि से महादेवी का भी वहाँ जाना आवश्यक है।

चन्द्रगुप्त - (क्रोध से) क्यों आवश्यक है! यदि उन्हें जाना ही पड़ा तो फिर मेरे जाने से क्या लाभ! तब मैं न जाऊँगा।

रामगुप्त - नहीं यह मेरी आज्ञा है। सामन्त कुमारों के साथ जाने के लिये प्रस्तुत हो जाओ।

ध्रुवस्वामिनी - तो कुमार! हम लोका का पलना निश्चित ही है अब इसमें विलम्ब की आवश्यकता नहीं।

(चन्द्रगुप्त का प्रस्थान। ध्रुवस्वामिनी मंच पर बैठ कर रोने लगती है।)

रामगुप्त - अब यह कैसा अभिनय! मुझे तो पहले से ही शंका थी, और आज तो तुमने मेरी आँखें भी खोल दीं।

अनार्य! निष्ठुर मुझे कलंक- कालिमा के कारागार में बन्द कर, मर्म वाक्य के धुँयें से दम घोटकर मार डालने की आशा न करो। आज मेरी असहायता मुझे अमृत पिलाकर मेरा निर्लज्ज जीवन बढ़ाने के लिए तत्पर है। (उठाकर, हाथ से निकल जाने का संकेत करती हुई) जाओ मैं एकान्त चाहती हूँ।

(शिखरस्वामी के साथ रामगुप्त का प्रस्थान)

ध्रुवस्वामिनी - कितना अनुभूतिपूर्ण था वह एक क्षण का आलिंग! कितने सन्तोष से भरा था! नियति ने अज्ञात भाव से मानो लू से तपी हुई वसुधा को क्षितिज के निर्जन से सांयकालीन शीतल आकाश से मिला दिया हो। (ठहर कर) जिय वायुविहीन प्रदेश में उखड़ी हुई साँसो पर बन्धन हो- अर्गला हो वहाँ रहते- रहत यह जीवन असह्य हो गया था। तो भी मरूंगी नहीं। संसार के कुछ दिन विधाता के विधान में अपने लिये सुरक्षित करा लूँगी। कुमार! तुमने वही किया, जिसे मैं बचाती रही। तुम्हारे उपकार और स्नेह की वर्षा से मैं भीगी जा रही हूँ ओह, (हृदय पर उँगली रख कर) इस वक्षस्थल में दो हृदय है क्या? जब अन्तरंग 'हां' करना चाहता है, तब ऊपरी मन 'ना' क्यो कहला देता है?

चन्द्रगुप्त - (प्रवेश कर के) महादेवि, हम लोग प्रस्तुत है किन्तु ध्रुवस्वामिनी के साथ शक- शिविर में जाने के लिये हम लोग सहमत नहीं।

ध्रुवस्वामिनी - (हँस कर) राजा की आज्ञा मान लेना ही पर्याप्त नहीं। रानी की भी एक बात न मानोगे? मैंने तो पहले ही कुमार से प्रार्थना की थी कि मुझे जैसे ले आये हो; उसी तरह पहुँचा भी दो।

चन्द्रगुप्त - नहीं- मैं अकेला ही आऊँगा।

ध्रुवस्वामिनी - कुमार! यह मृत्यु और निर्वासन का सुख, तुम अकेले ही लोगे, ऐसा नहीं हो सकता। राजा की इच्छा क्या है, यह जानते हो? मुझसे और तुमसे एक साथ ही छुटकारा। तो फिर वहीं क्यो न हो? हम दोनो ही चलेंगे। मृत्यु के गहर में प्रवकश करने के समय मैं भी तुम्हारी ज्योति बन कर बुझ जाने की कामना रखती हूँ। और भी एक विनोद, प्रलय का परिहास, देख सकूँगी। मेरी सहचासरी, तुम्हारी वह ध्रुवस्वामिनी का वेश, ध्रुवस्वामिनी ही न देखे तो किय कात का?

(दोनो हाथो से चन्द्रगुप्त का चिबुक पकड़ कर सकरूण देखती है)

चन्द्रगुप्त - (अधखुली आँखो से देखती हुआ) तो फिर चलो।

(सामन्त कुमारो के आगे- आगे मन्दाकिनी का गम्भीर स्वर से गाते हुये प्रवेश)

पैरो के नीचे जलधर हों, बिजली से उनका खेल चले

संकीर्ण कगारो के नीचे, शत- शत झरने बेमेल चले

सन्नाटे में हो विकल पवन, पादप निज पद हों चूम रहे
 तब भी गिरि- पथ का अथक पथिक, ऊपर ऊँचे सब झेल चले
 पृथ्वी की आँखो मे बन कर छाया का पुतला बढ़ता हो
 सूने तुम में हो ज्योति बना, अपनी प्रतिभा को गढ़ता हो
 पीड़ा की ल उड़ाता- सा, बाधाओ को ठुकराता-सा
 कष्टो पर कुछ मुसक्याता- सा, ऊपर ऊँचे सब झेल चले
 खिलते हों क्षत के फूल वहाँ बन व्यथा तमिस्रा के तारे
 पद- पद पर ताण्डव नर्तन हो, स्वर सप्तक होंवे लय सारे
 भैरव रव से ही व्याप्त दिशा हो काँप रही भय-चकित निशा
 खिलते हो क्षत के फूल वहाँ बन व्यथा तमिस्रा के तारे,
 पद-पद पर ताण्डव नर्तन हो, स्वर सप्तक होंवे लय सारे
 भैरव रव से ही व्याप्त दिशा हो काँप रही भय-चकित निशा
 हो स्वेद धार बहती कपिशा, ऊपर ऊँचे सब झेल चले
 विचलित हो अचल न मौन रहे निष्ठुर श्रृंगार उतरता हो
 क्रन्दन कम्पन न पुकार बने, निज साहस पर निर्भता हो
 अपनी ज्वाला को आप पिये नव-नीलकण्ठ की छाप लिये
 विश्राम शान्ति को शाप दिये, ऊपर ऊँचे सब झेल चले।
 (चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी सबका धीरे-धीरे प्रस्थान अकेली मन्दाकिनी खड़ी रह जाती है)

{पटाक्षेप}

द्वितीय अंक

(शक दुर्ग के भीतर सुनहले काम वाले खम्भो पर एक दालान, बीच में छोटी-छोटी दो सीढियों, उसी के सामने काश्मीरी खुदाई का सुन्दर लकड़ी का सिंहासन बीच के दो खम्बे खुले हुये है, उनके दोनो ओर मोटें- मोटे चित्र बने हुए तिब्बती ढंग के रेशमी पर्दे पढ़े है। सामने बीच में छोटा-सा आंगन की तरह, जिसके दोनो ओर क्यारियाँ उनमं दो-चार पौधे और लताएँ फूलो से लदी दिखाई पड़ती है)

कोमा - (धीरे- धीरे पौधो को देखती हुई प्रवेश करके) इन्हें सीचना पड़ता है, नहीं तो इनकी रूखाई और मलिनता सौन्दर्य पर आवरण डाल देती है। (देखकर) आज तो इनके पत्ते धुले हुए भी नहीं है। इनमें फूल, जैसे मुकुलित होकर ही रह गये है। खिलखिलाकर हँसने का मानो इन्हे बल नहीं। (सोचकर) ठीक, इधर कई दिनों से महाराज अपने युद्ध-विग्रह में लगे हुये है और मै भी यहाँ नहीं आयी, तो फिर इनकी बिना कौन करता है? उस दिन मैने यहाँ दो मंच और भी रख देने

के लिए कहा था, पर सुनता कौन है। सब जैसे रक्त के प्यास! प्राण लेने और देने में पागल! बसन्त का उदास और अलस पवन आता है, चला जाता है। कोई उस स्पर्श से परिचित नहीं। ऐसा तो वास्तविक जीवन नहीं है?

(सीढी पर बैठकर सोचने लगती है) प्रणय ! प्रेम! जब सामने से आते हुये तीव्र आलोक की तरह आँखों में प्रकाश पुंज उँडेल देता है, तब सामने की सब वस्तुये और भी अस्पष्ट हो जाती है। अपनी ओर से कोई भी प्रकाश की किरण नहीं। तब वही केवल वही! हो पागलपन, भूल हो, दुःख मिले, प्रेम करने की एक ऋतु होती है। उसमें चूकना, उसमें सोच- समझ कर चलना, दोनो बराबर है। सुना है, दोनो ही संसार के चतुरो की दृष्टि में मूर्ख बनते है, तब कोमा, तू किसे अच्छा समझती है?

(गाती है)

यौवन! तेरी चंचल छाया

इसमें बैठ घूँट भर पी लूँ जो रस मू है लाया

मेरे प्याले में मद बनकर कब तू छली समाया

जीवन- वंशी के छिद्रों में स्वर बनकर लहराया

पत्न भर रूकने वाले! कह तू पथिक! कहाँ से आया।

(चुप होकर आँखे बन्द कियये तन्मय होकर बैठी रह जाती है। शकराज का प्रवेश। हाथ में एक लम्बी तलवार लिये हुये चिन्तित भाव से आकर इस तरह खड़ा होता है, जिसमें कोमा को नहीं देखता)

शकराज - खिंंगल अभी नहीं आया, क्या वह बन्दी तो नहीं कर लिया गया? नहीं, दि से अन्धे नहीं है तो उन्हे अपने सिर पर खड़ी विपत्ति दिखाई देनी चाहिये (सोचकर) विपत्ति! केवल उन्ही पर तो नहीं है, हम लोगो को भी रक्त की पदी बहानी पड़ेगी। चित्त बड़ा चंचल हो रहा है। तो बैठ जाऊँ? इस एकान्त में अपने बिखरे हुये मन को सँभाल लूँ? (इधर- उधर देखता है, कोमा आहट पा कर उठ खड़ी होती है। उसे देख कर) अरे, कोमा! केमा!

कोमा - हाँ, महाराज! क्या आज्ञा है?

शकराज - (उसे संदिग्ध भाव से देखकर) आज्ञा नहीं, कोमा! तुम्हें आज्ञा न दूँगा! तुम रूठी हुई- सी क्यों बोल रही हो।

कोमा - रूठने का सुहाग मुझे मिला कब?

शकराज - आजकल मैं जैसी भीषण स्थिति में हूँ, उसमें अन्यमनस्क होना स्वाभाविक है, तुम्हें यह न भूल जाना चाहिये।

कोमा - तो क्या आपकी दुश्चिन्ताओं में मेरा भाग नहीं? मुझे उससे अलग रखने में क्या वह परिस्थिति कुछ सरल हो रही है?

शकराज - तुम्हारे हृदय को उन दुर्भावनाओं में डाल कर व्यथित नहीं करना चाहता। मेरे सामने जीवन-मरण का प्रश्न है।

कोमा - प्रश्न स्वयं किसी के सामने नहीं आते। मैं तो समझती हूँ, मनुष्य उन्हें जीवन के लिए उपयोगी समझता है। मकड़ी की तरह लटकने के लिए अपने-आप ही जाला बुनता है। जीवन का प्राथमिक प्रसन्न उल्लास मनुष्य के भविष्य में मंगल और सौभाग्य को आमन्त्रित करता है। उससे उदासीन न होना चाहिये महाराज!

शकराज - सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के नाम है। मैं तो पुरुषार्थ को ही सबका नियामक समझता हूँ! पुरुषार्थ ही सौभाग्य को खींच लाता है। हाँ, मैं इस युद्ध के लिए उत्सुक नहीं था कोमा, मैं ही दिग्विजय के लिये नहीं निकला था।

कोमा - संसार के नियम के अनुसार आप अपने से महान के सम्मुख थोड़ा-सा विनीत बनकर इस उपद्रव से अलग रह सकते थे।

शकराज - यही तो मुझ से नहीं हो सकता।

कोमा - अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या अच्छा नहीं है?

शकराज - (चिढ़कर) यह शिक्षा अभी रहने दो कोमा, किसी से बड़ा नहीं हूँ तो छोटा भी नहीं बनना चाहता। तुम अभी तक पाषाणी प्रतिमा की तरह वहीं खड़ी हो, मेरे पास आओ।

कोमा - पाषाणी ! हाँ, राजा! पाषाणी के भीतर भी कितने मधुर होत बहते रहते हैं। उनमें मदिरा नहीं, शीतल जल की धारा बहती है। प्यासों की तृप्ति-

शकराज - किन्तु मुझे तो इस समय स्फूर्ति के लिए एक प्याला मदिरा ही चाहिये।

(कोमा एक छोटा-सा मंच रख देखती है और चली जाती है। शकराज मंच पर बैठ जाता है। खिगल का प्रवेश)

कोमा - (स्थिर दृष्टि से देखती हुई) मैं आती हूँ। आप बैठिये।

शकराज - को जी, क्या समाचार है।

खिगल - महाराज! मैंने उन्हें अच्छी तरह समझा दिया कि हम लोगों का अवरोध दृढ़ है। उन्हें दो में से एक करना ही होगा। या तो अपने प्राण दें अन्यथा मेरे सन्धि के नियमों को स्वीकार करें।

शकराज - (उत्सुकता से) तो वे समझ गये? खिगल - दूसरा उपाय ही क्या था! यह छोकड़ा रामगुप्त, समुद्रगुप्त ही तरह दिग्विजय करने निकला था। उसे इन बीहड़ घाटियों का परिचय नहीं मिला था। किन्तु सब बातों को समझ कर वह आपके नियमों को मानने के लिए बाध्य हुआ।

शकराज - (प्रसन्नता से उठकर उसके दोनों हाथ पकड़ लेता है) ऐ, तुम सच कहते हो! मुझे आशा नहीं। क्या मेरा दूसरा प्रस्ताव भी रामगुप्त ने मान लिया?

(स्वर्ण के कलश में मदिरा लेकर कोमा चुपके से आकारा पीछे खड़ी हो जाती है)

खिंगल - हाँ महाराज! उसने माँगे हुए उपहारों को देना स्वीकार किया और ध्रुवस्वामिनी भी आपकही सेवा में शीघ्र ही उपस्थित होती है।

(कोमा चौंक उठती है और शकराज प्रसन्नता से खिंगल के हाथों को झकझोरने लगता है)

शकराज - खिंगल। तुमने कितना सुन्दर समाचार सुनाया। आज देवपुत्रों की स्वर्गीय आत्म एँ प्रसन्न होंगी। उनकी पराजयों का यह प्रतिशोध है। हम लोग गुप्तों की दृष्टि में जंगली, बर्बर और असभ्य है तो फिर मेरी प्रतिहिंसा भी बर्बरता के ही अनुकूल होगी। हाँ, मैंने शूर-सामन्तों के लिए पत्नियाँ भी मांगी थीं।

खिंगल - वे भी साथ आयेंगी।

शकराज - तो फिर सोने की झाँझ वाली नाच का प्रबन्ध करो, इस विजय का उत्सव मनाया जाय और मेरे सामन्तों को भी शीघ्र बुला लाओ।

(खिंगल का प्रस्थान: शकराज अपनी प्रसन्नता में उद्विग्न सा इधर-उधर टहलने लगता है और कोमा अपना कलश लिये हुए धीरे-धीरे सिंहासन के पास आकर खड़ी हो जाती है। चार सामन्तों का प्रवेश। दूसरी ओर से नर्तकियों का दल आता है। शकराज उनकी ओर ही देखता हुआ सिंहासन पर बैठ जाता है। सामन्त लोग उसके पैरों के नीचे सीढ़ियों पर बैठते हैं। नर्तकियों नाचती हुई गाती हैं)

अस्ताचल पर युवती सन्ध्या की खुली अलक घुँघराली है

लो; मानिक मदिरा की धारा अब बहने लगी निराली है

भर ली पहाड़ियों ने अपनी झीलों की रत्नमयी प्याली

झुक चली चुमने बल्लिरियों से लिपटी तरु की डाली है

यह लगा पिघलने मानिनियों का हृदय मृदु प्रणय-रोष भरा

वे हँसती हुई दुलार-भरी मधु लहर उठाने वाली हैं

भरने निकले है प्यार-भरे जोड़े कुञ्जों की झुरमुट से

इस मधुर अँधेरे में अब तक क्या इनकी प्याली खाली है।

भर उठीं प्यालियाँ, सुमनों ने सौरभ मकरन्द मिलाया है

कामिनियों ने अनुराग-भरे अधरों से उन्हें लगा ली है

बसुधा मदमाती हुई उधर आकाश लगा देखो झुकने

सब झुम रहे अपने सुख में तूने क्यों बाधा डाली है

(नर्तकियाँ जाने लगती है)

एक सामन्त - श्रीमान्! ठतनी बड़ी विजय के अवसर पर इस सूखे उत्सव से सन्तोष नहीं होता, जब कि कलश सामने भरा हुआ रखा है।

शकराज - ठीक है, इन लोगों को केवल कहकर ही नहीं, प्यालियाँ भर कर भी देनी चाहिये।
(सब पीते है और नर्तकियाँ एक-एक को सानुरोध पान कराती है)

दूसरा सामन्त - श्रीमान् की आज्ञा मानने से अतिरिक्त दूसरी गति नहीं। उन्होंने समझ से काम लिया, नहीं तो हम लोगों को इस रात की कालिमा में रक्त की लाली मिलानी पड़ती है।

तीसरा सामन्त - क्यों बक-बक करते हो? चुप-चाप इस बिना परिश्रम की विजय का आनन्द लो। लड़ना पड़ता तो सारी हेंकड़ी भूल जाती।

दूसरा सामन्त - (क्रोध से लड़खड़ाता हुआ उठता है।) हमसे!

तीसरा सामन्त - हाँ जी तुमसे!

दूसरा सामन्त - तो फिर आओ तुम्हीं से निपट लें (सब परस्पर लड़ने की चेष्टा कर रहे हैं।)
शकराज खिगल को संकेत करता है। वह उन लोगों को बाहर लिवा जाता है। तूर्यनाद)

शकराज - रात्रि के आगमन की सूचना हो गयी। दुर्ग का द्वार अब शीघ्र ही बन्द होगा। अब तो हृदय अधीर हो रहा है। खिगल!

(खिगल का पुनः प्रवेश)

खिगल - दुर्ग तोरण में शिविकार्ये आ गयी है।

शकराज - (गर्व से) तब विलम्ब क्यों? उन्हें अभी ले आओ।

खिगल - (सविनय) किन्तु रानी की एक प्रार्थना है।

शकराज - क्या!

खिगल - वह पहले केवल श्रीमान् से ही सीधे भेंट करना चाहती है। उसकी मर्यादा''''''''''

शकराज - (ठठाकर हँसते हुए) क्या कहा? मर्यादा? भाग्य ने झुकने के लिए परवश कर दिया है, उन लोगों के मन में मर्यादा का ध्यान और भी अधिक रहता है यह उनकी दयनीय दशा है।

खिगल - वह श्रीमान् की रानी होने के लिये आ रही है।

शकराज - (हँसकर) अच्छा, तुम मध्यस्थ हो न! तुम्हारी बात मान कर मैं उससे एकान्त में ही भेंट करूँगा जाओ।

(खिगल का प्रस्थान)

कोमा - महाराज! मुझे क्या आज्ञा है।

शकराज - (चौंक कर) अरे, तुम अभी खड़ी हो? मै तो जैसे भूल गया था। हृदय चंचल हो रहा है। मेरे समीप आओ कोमा!

कोमा - नयी रानी के आगमन की प्रसन्नता से?

शकराज - (संभल कर) नयी रानी का अपना क्या तुम्हें अच्छा नहीं होगा कोमा?

कोमा - (निर्विकार भाव से) संसार से बहुत-सी बातें बिना अच्छी हुये भी अच्छी लगती हैं, और बहुत-सी अच्छी बातें बुरी मालूम पड़ती हैं।

शकराज - (झुंझला कर) तुम तो आचार्य मिहिरदेव की तरह दार्शनिक की सी बातें कर रही हो!

कोमा - वे मेरे पिता-तुल्य हैं, उन्हीं कही शिक्षा में मैं पली हूँ। हाँ ठीक है, जो बातें राजा को अच्छी लगें, वे ही मुझे भी रुचनी ही चाहिये।

शकराज - (अव्यवस्थित होकर) अच्छा अच्छा, तुम इतनी अनुभूतिमयी हो, यह मैं आज जान सका।

कोमा - राजा, तुम्हारी स्नेह-सूचनाओं की सहज प्रसन्नता और मधुर आलापों ने जिस दिन मन में नीरस और नीरव शून्य के संगीत की, वसन्त की और मकरन्द कही सृष्टि की थी, उसी दिन से मैं अनुभूतिमयी बन गयी हूँ। क्या वह मेरा भ्रम था? कह दो - कह दो कि वह तेरी भूल थी।

(उतेजित कोमा सिर उठा कर राजा से आँख मिलाती है)

शकराज - (शंकोच से) नहीं कोमा, वह भ्रम नहीं था। मैं सचमुच तुम्हें प्यार करता हूँ।

कोमा - (उसी तरह) तब भी यह बात?

शकराज - (सशंक) कौन-सी बात?

कोमा - वही जो आज होने जा रहा है! मेरे राजा! आज तुम एक स्त्री को अपने पति से विच्छिन्न कराकर अपने गर्व को तृप्ति के लिये कैसा अनर्थ कर रहे हो?

शकराज - (हँस कर बात उड़ाते हुए) पगली कोमा! वह मेरी राजनीति का प्रतिशोध है।

कोमा - (दृढ़ता से) किन्तु, राजनीति का प्रतिशोध, क्या एक नारी को कुचले बिना पूरा नहीं हो सकता?

शकराज - जो विषय न समझ में आवे, उस पर विवाद न करो।

कोमा - (खिन्न होकर) मैं क्यों न करूँ। (ठहर कर) किन्तु नहीं, मुझे विवाद करने का अधिकार नहीं यह मैं समझ गयी।

(वह दुःखी होकर जाना चाहती है कि दूसरी ओर से मिहिरदेव का प्रवेश)

शकराज - (संभम से खड़ा होकर) धर्मपूज्य! मैं वन्दना करता हूँ।

मिहिरदेव - कल्याण हो! (कोमा सिर पर हाथ रखकर) बेटा! मैं तो तूझको ही देखने चला आया।

तू उदास क्यों है?

(शकराज को ओर गूढ़ दृष्टि से देखने लगता है)

शकराज - आचार्य! रामगुप्त का दर्प करने के लिये, मैंने ध्रुवस्वामिनी को उपहार में भेजने की आज्ञा दी थी। आज रामगुप्त की रानी मेरे दुर्ग में आयी है। कोमा को इसमें आपत्ति है।

मिहिरदेव - (गम्भीरता से) ऐसे काम में तो आपत्ति होनी ही चाहिये राजा! स्त्री का सम्मान नष्ट करके तुम जो भयानक अपराध करेंगे, उसका फल क्या होगा? और भी यह अपनी भावी पत्नी के प्रति तुम्हारा अत्याचार होगा।

शकराज - (क्षोभ से) भावी पत्नी?

मिहिरदेव - अरे, क्या तुम इस क्षणिक सफलता से प्रमत्त हो जाओगे। क्या तुमने अपने आचार्य की प्रतिपालिता कुमारी के साथ स्नेह का सम्बन्ध नहीं स्थापित किया है? क्या इसमें भी सन्देह है। राजा! स्त्रियों का स्नेह - विश्वास भंग कर देना, कोमल तंतु को तोड़ने से भी सहज है, परन्तु सावधान होकर उसके परिणाम को भी सोच लो।

शकराज - मैं समझता हूँ कि आप मेरे राजनीतिक कामों में हस्तक्षेप न करें तो अच्छा हो।

मिहिरदेव - राजनीति? राजनीति ही मनुष्यों के लिये सब कुछ नहीं है। राजनीति के पीछे नीति से भी हाथ न धो बैठो जिसका विश्वमानव के साथ व्यापक सम्बन्ध है। राजनीति की साधारण छलनाओं⁸ से सफलता प्राप्त करके क्षण भर के लिये तुम अपने को चतुर समझ लेने की भूल कर स्त्रियों सकते हो। परन्तु इस भीषण⁹ संसार से एक प्रेम करने वाले हृदय को खो देना, सबसे बड़ी हानि है। शकराज! दो प्यार करने वाले के हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास है।

शकराज - बस, बहुत हो चुका! टापके महत्व की भी एक सीमा होगी। अब आप यहाँ से नहीं जाते हैं, तो मैं ही चला जाता हूँ (प्रस्थान)।

मिहिरदेव - चल कोमा! हम लोगों को लताओं, वृक्षों और चट्टानों से छाया और सहानभूति मिलेगी। इस दुर्ग से बाहर चला।

कोमा - (गद्गद् कण्ठ से) पिता जी (खड़ी रहती है)

मिहिरदेव - बेटा! हृदय का सँभाला कष्ट सहन करने के लिये प्रस्तुत हो जा। प्रतारणा में बड़ा मोह होता है। उसे छोड़ने को मन नहीं करता। कोमा! छल का बहिरंग सुन्दर होता है- विनीत और आकर्षक भी; पर दुःखदायी और हृदय को बेधने के लिये। इस बन्धन को तोड़ डाल।

कोमा - (सकरूण) तोड़ डालूँ पिताजी! मैंने जिसे अपने आँसूओं से सींचा, वही दुलार भरी बल्लरी, मेरे आँख बन्द कर चलने में मेरे पैरों से उलझ गयी है। दे दूँ एक झटका- उसकी हरी-हरी पत्तियाँ कुचल जायें और वह छिन्न होकर धूल लोटने लगे? ना, ऐसी कठोर आज्ञा न दो!

मिहिरदेव - (निश्वास लेकर आकाश को देखते हुए) यहाँ तेरी भलाई होती, तो मैं चलने के लिए न कहता। हम लोग अखरोट की छाया में बैठेंगे- झरनों के किनारे, दाख के कुञ्जों में विश्राम

करेंगे। जब नीले आकाश में मेंघों के टुकड़े, मानसरोवर जाने वाले हंसों का अभिनय करेंगे, तब तू अपनी तकली पर ऊन कातती हुई, कहानी कहेगी और मैं सुनूँगा।

कोमा - तो चलूँ! (एक बार चारों ओर देखकर) एक घड़ी के लिए मुझे.....

मिहिरदेव - (ऊब कर आकाश की ओर देखता हुआ) तू नहीं मानती। वह देख, नील लोहित रंग का धूमकेतु अविचल भाव से इस दुर्ग की ओर कैसा भयानक संकेत कर रहा है।

कोमा - (उधर देखते हुए) तब भी एक क्षण मुझे.....

मिहिरदेव - पागल लड़की! अच्छा, मैं फिर आऊँगा। तू सोच ले, विचार कर ले (जाता है)।

कोमा - जाना ही होगा! तब यह मन की उलझन क्यों अमंगल का अभिशाप अपनी क्रूर हँसी से इस दुर्ग को कँपा देगा, और सुख के स्वप्न विलीन मेर यहां रहने से उन्हें अपने भावों को छिपाने के लिए बनावटी व्यवहार करना होगा; पग-पग पर अपमानित होकर मेरा हृदय उसे सह नहीं सकेगा। तो चलूँ। यही ठीक है! पिताजी! ठहरिये, मैं आती हूँ।

शकराज - (प्रवेश करके) कोमा?

कोमा - जाती हूँ, राजा!

शकराज - कहाँ? आचार्य के पास? मालूम होता है कि वे बहुत ही दुखी हो कर चले गये हैं।

कोमा - धूमकेतु को दिखाकर उन्होंने मुझसे कहा है कि तुम्हारे दुर्ग में रहने से अमंगल होगा।

शकराज - (भयभीत होकर उसे देखता हुआ) आह! भयावनी पूँछवाला धूमकेतु! आकाश का उच्चश्रृंखल पर्यटक! नक्षत्रलोक का अभिशाप! कोमा! आचार्य को बुलाओ। वे जो आदेश देंगे, वही मैं करूँगा। इस अमंगल की शान्ति होनी चाहिए।

कोमा - वे बहुत चिढ़ गये हैं। अब उनको प्रसन्न करना सहज नहीं है। वे मुझे अपने साथ लिवा जाने के लिए मेरी प्रतिक्षा करते होंगे।

शकराज - कोमा! तुम कहाँ जाओगी?

कोमा - पिताजी के साथ।

शकराज - और मेरा प्यार, मेरा स्नेह, सब भुला दोगी? इस अमंगल की शान्ति के लिये आचार्य को न समझाओगी?

कोमा - (खिन्न होकर) प्रेम का नाम न लो! वह एक पीड़ा थी जो छूट गयी। उसकी कसक भी धीरे-धीरे दूर हो जायेगी। राजा, मैं तुम्हें प्यार नहीं करती। मैं तो दर्प से दीप्त तुम्हारी महत्वमयी पुरुष-मूर्ति की पूजार्थिन थी, जिसमें पृथ्वी पर अपने पैरों से खड़े रहने की दृढ़ता थी! इस स्वार्थ-मलिन कलुष से भरी मूर्ति से मेरा परिचय नहीं। अपने तेज की अग्नि में जो सब कुछ भस्म कर सकता हो, उस दृढ़ता का, आकाश के नक्षत्र कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकते। तुम आशंका-मात्र से दुर्बल - - कम्पित और भयभीत हो।

शकराज - (धूमकेतु को बार-बार देखता हुआ) भयानक! कोमा, मुझे बचाओ!

कोमा - जाती हूँ महाराज! पिताजी मेरी प्रतिक्षा करते होंगे।

(जाती है। शकराज अपने सिंहासन पर हताश होकर बैठ जाता है)

प्रहरी - (प्रवेश करके) महाराज! ध्रुवस्वामिनी ने पूछा है कि एकान्त हो तो आऊँ।

शकराज - हाँ कह दो कि यहाँ एकान्त है। और देखो, यहाँ दूसरा कोई न आने पावे।

(प्रहरी जाता है: शकराज चंचल होकर टहलने लगता है। धूमकेतु की ओर दृष्टि जाती है तो भयभीत होकर बैठ जाता है)

शकराज - तो इसका कोई उपाय नहीं? न जाने क्यों मेरा हृदय घबरा रहा। कोमा को समझा-बुझा कर ले आना चाहिये (सोचकर) किन्तु इधर ध्रुवस्वामिनी जो आ रही है! तो भी देखूँ, यदि कोमा प्रसन्न हो जाय(जाता है)

(स्त्री -वेश में चन्द्रगुप्त आगे और पीछे ध्रुवस्वामिनी स्वर्ण-खचित उत्तरीय में सब अंग छिपाये हुये जाती है। केवल खुले हुये मूँह पर प्रसन्न दिखाई देती है)

चन्द्रगुप्त - तुम आज कितनी प्रसन्न हो।

ध्रुवस्वामिनी - और तुम क्या नहीं?

चन्द्रगुप्त - मेरे जीवन-निशीथ का ध्रुव-नक्षत्र इसे घोर अन्धकार में अपनी स्थिर उज्ज्वलता से चमका रहा है। आज महोत्सव है न?

ध्रुवस्वामिनी - लौट जाओ, इस तुच्छ नारी-जीवन के लिये इतने महान् उत्सर्ग की आवश्यकता नहीं।

चन्द्रगुप्त - देवी! यह तुम्हारा क्षणिक मोह है। मेरी परीक्षा न लो! मेरे शरीर ने चाहे जो रूप धारण किया हो, किन्तु हृदय निश्चल है।

ध्रुवस्वामिनी - अपनी कामना की वस्तु न पाकर यह आत्महत्या जैसा प्रसंग तो नहीं है।

चन्द्रगुप्त - तीखे वचनों मर्माहत कर के भी आज कोई मुझे इस मृत्यु-पथ से विमुख नहीं कर सकता! मैं केवल अपना कर्तव्य करूँ, इसी में मुझे सुख है। (ध्रुवस्वामिनी संकेत करती है। शकराज का प्रवेश। दोनो चुप हो जाते हैं। वह दोनों को चकित होकर देखता है)

शकराज - मैं किसको रानी समझूँ रूप का ऐसा तीव्र आलोक! नहीं मैंने कभी नहीं देखा था। इसमें कौन ध्रुवस्वामिनी है?

ध्रुवस्वामिनी - यह मैं आ गयी हूँ।

चन्द्रगुप्त - (हँसकर) शकराज को तुम धोखा नहीं दे सकती हो। ध्रुवस्वामिनी कौन है? यह अन्धा भी बता सकता है।

ध्रुवस्वामिनी - (आश्चर्य से) चन्द्रे! तुमको क्या हो गया है? यहां आने पर तुम्हारी इच्छा रानी बनने की हो गई है? या मुझे शकराज से बचा लेने के लिये यह तुम्हारी स्वामिभक्ति है?

(शकराज चकित होकर दोनों की ओर देखता है)

चन्द्रगुप्त - कौन जाने तुम्हीं ऐसा कर रही हो?

ध्रुवस्वामिनी - चन्द्रे! तुम मुझे दोनों ओर नष्ट न करो। यहाँ से लौट जाने पर भी क्या मैं गुप्तकुल के अन्तःपुर में रह पाऊँगी?

चन्द्रगुप्त - चन्द्रे कह कर मुझको पुकारने से तुम्हारा क्या तात्पर्य है? यह अच्छा झगड़ा तुमने फैलाया। इसीलिये मैंने एकान्त में मिलने की प्रार्थना की थी।

ध्रुवस्वामिनी - तो क्या मैं यहाँ भी छली जाऊँगी?

शकराज - ठहरो, (दोनों को ध्यान से देखता हुआ) क्या चिन्ता यदि मैं दोनों को ही रानी समझ लूँ?

ध्रुवस्वामिनी - ऐं

चन्द्रगुप्त - ऐं

शकराज - क्यों? इसमें क्या बुरी बात है?

चन्द्रगुप्त - जी नहीं, यह नहीं हो सकता। ध्रुवस्वामिनी कोन है, पहले इसका निर्णय होना चाहिये।

ध्रुवस्वामिनी - (क्रोध से) चन्द्रे! मेरे भाग्य के आकाश में धूमकेतू-सी अपनी गति बन्द करो।

शकराज - (धूमकेतु की ओर देखकर भयभीत-सा) ओह भयानक! (व्यग्र भाव से टहलने लगता है)

चन्द्रगुप्त - (शकराज की पीठ पर हाथ रखकर) सुनिये

ध्रुवस्वामिनी - चन्द्रे!

चन्द्रगुप्त - इस धमकी से तो लाभ नहीं।

ध्रुवस्वामिनी - तो फिर मेरा और तुम्हारा जीवन-मरण साथ ही होगा।

चन्द्रगुप्त - तो डरता कौर है (दोनों ही शीघ्र कटार निकाल लेते हैं)

शकराज - (घबराकर) हैं, यह क्या? तुम लोग यह क्या कर रही हो? ठहरो! आचार्य ने ठीक कहा है, आज शुभ् मूर्त नहीं। मैं कल विश्वसनीय व्यक्ति को बुला कर इसका निश्चय कर लूँगा। आज तुम लोग विश्राम करो।

ध्रुवस्वामिनी - नहीं इसका निश्चय तो आज ही होना चाहिये।

शकराज - (बीच में खड़ा होकर) मैं कहता हूँ ना

चन्द्रगुप्त - वाह रे कहने वाले!

(ध्रुवस्वामिनी मानो चन्द्रगुप्त के आक्रमण से भयभीत होकर पीछे हटती है और तूर्यनाद करती है। शकराज आश्चर्य से उसे सुनता हुआ सहसा घूम कर चन्द्रगुप्त का हाथ पकड़ लेता है ध्रुवस्वामिनी झटके से चन्द्रगुप्त का उत्तरीय खींच लेती है और चन्द्रगुप्त हाथ छुड़ाकर शकराज को घेर लेता है।
चन्द्रगुप्त - (चकित-सा) ऐं, यह तुम कौन प्रवंचक?

शकराज - मैं हूँ, चन्द्रगुप्त, तुम्हारा काला मैं अकेला आया हूँ, तुम्हारी वीरता की परीक्षा लेने। सावधान!

(शकराज भी कटार निकाल कर युद्ध के लिए अग्रसर होता है। युद्ध, और शकराज की मृत्यु। बाहर दुर्ग में कोलाहल। 'ध्रुवस्वामिनी की जय' का हल्ला मचाते हुए रक्ताक्त कलेवर सामन्त कुमारों का प्रवेश, ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त को घेर कर समवेत स्वर से 'ध्रुवस्वामिनी की जय हो!')

(पटाक्षेप)

तृतीय अंक

(शका दुर्ग के भीतर एक प्रकोष्ठ। तीन मंच में दो खाली और एक पर ध्रुवस्वामिनी पादपीठ। के ऊपर बायें पैर पर दाहिना पैर रखकर अधरों से ऊंगली लगाये चिन्ता में निमग्न बैठी है। बाहर कुछ कोलाहल होता है।)

सैनिक - (प्रवेश करके) महादेवी की जय हो!

ध्रुवस्वामिनी - (चौंककर) क्या?

सैनिक - विजय का समाचार सुनकर राजाधिराज भी दुर्ग में आ गये हैं। अभी वे सैनिकों से बातें कर रहे हैं। उन्होंने पूछा है महादेवी कहाँ हैं। आपकी जैसी आज्ञा हो; क्योंकि कुमार ने कहा है।

ध्रुवस्वामिनी - क्या कहा? यही न कि मुझसे पूछ कर राजा यहाँ आने पावें? ठीक है, अभी मैं बहुत थकी हूँ। (सैनिक जाने लगता है, उसे रोक कर) और सुनो तो; तुमने यह नहीं बताया कि कुमार के घाव अब कैसे हैं?

सैनिक - घाव चिन्ताजनक नहीं हैं, उन पर पट्टियाँ बँध चुकी हैं। कुमार प्रधान-मण्डप में विश्राम कर रहे हैं।

ध्रुवस्वामिनी - अच्छा जाओ; (सैनिक का प्रस्थान)।

मन्दाकिनी - (सहसा प्रवेश करके) भाभी, बधाई हो! (जैसे भूल कर गई हो) नहीं; नहीं! महादेवी, क्षमा कीजिए।

ध्रुवस्वामिनी - मन्दा! भूल से ही तुमने आज एक प्यारी बात कह दी। उसे क्या लौटा देना चाहती हो? आह! यदि वह सत्य होती?

(पुरोहित का प्रवेश)

मन्दाकिनी - क्या इसमें भी सन्देह है?

ध्रुवस्वामिनी - मुझे तो सन्देह का इन्द्रजाल ही दिखलायी पड़ रही है। मैं न तो महादेवी हूँ और न तुम्हारी भाभी (पुरोहित को देखकर चुप रह जाती है)।

पुरोहित - (आश्चर्य से इधर-उधर देखता हुआ) तब मैं क्या करूँ?

मन्दाकिनी - क्यों, आपको कुछ कहना है क्या?

पुरोहित - ऐसे उपद्रवों के बाद शान्तिकर्म होना आवश्यक है। इसीलिए मैं स्वस्त्ययन करके आया था; किन्तु आप तो कहती है कि महादेवी ही नहीं हूँ।

ध्रुवस्वामिनी - (तीखे स्वर से) पुरोहित जी! मैं राजनीति नहीं जानती; किन्तु इतना समझती हूँ कि जो रानी शत्रु के लिए उपहार में भेज दी जाती है, वह महादेवी की उच्च पदवी से पहले ही वंचित हो गयी होगी।

मन्दाकिनी - किन्तु आप तो भाभी होना भी अस्वीकार करती हैं।

ध्रुवस्वामिनी - भाभी कहने का तुम्हें रोग हो तो कह लो। क्योंकि इन्हीं पुरोहित जी ने उस दिन कुछ मंत्रों को पढ़ा था। उस दिन के बाद मुझे कभी राजा से सरल सम्भाषण करने का अवसर ही न मिला। हाँ, न जाने मेरे किस अपराध पर

सन्दिग्ध- चित्त होकर उन्होंने जब मुझे विर्वासित किया, तभी मैंने उनसे अपने स्त्री होने के अधिकार की रक्ष की भीख माँगी थी। वह भी न मिली और मैं बलि-पशु की तरह, अकरूप आज्ञा की बाँधी हुई शक- दुर्ग में भेज दी गयी।

तब भी मुझे तुम भाभी कहना चाहती हो?

मन्दाकिनी - (सिर झुका कर) यह गर्हित और ग्लानि- जनक प्रसंग है।

पुरोहित - यह मैं क्या सुन रहा हूँ? मुझे तो यह जान कर प्रसन्नता हुई थी की तरह, अपने साहस के बल पर महादेवी ने इस दुर्ग पर अधिकार किया है।

ध्रुवस्वामिनी - आप झूठ बोलते है!

पुरोहित - (आश्चर्य से) मैं और झूठ!

ध्रुवस्वामिनी-हाँ, आप और झूठ, नहीं स्वयं आप ही मिथ्या हैं।

पुरोहित - (हँस कर) क्या आप वेदान्त की बात कहती है? तब तो मिथ्या है ही।

ध्रुवस्वामिनी - (क्रोध में) संसार मिथ्या है या नहीं, यह तो मैं नहीं जानती, परन्तु आप, आपका कर्मकाण्ड और आपके शास्त्र क्या सत्य है, जो सदैव रक्षणीय स्त्री की दुर्दशा हो रही है?

पुरोहित - (मन्दाकिनी से) बेटा! तुम्ही बताओ, यह मेरा भ्रम है या महादेवी का रोष?

ध्रुवस्वामिनी - रोष है, हाँमै रोष से जली जी रही हूँ। इतना बड़ा उपहास- धर्म के नाम पर स्त्री की आज्ञाकारितर की सह पैशाचिक परीक्षा मुझसे बलपूर्वक ली गयी है। पुरोहित! तुमने जो मेरा राक्षस- विवाह कराया है, उसका उत्सव भी कितना सुन्दर है। यह जन-संहार देखो, अभी उस प्रकोष्ठ मे रक्त से सनी हुई शकराज की लोथ पड़ी होगी। कितने ही सैनिक दम तोड़ते होंगे, और इस रक्तधारा में तिरती हुई मै राक्षसी- सी साँस ले रही हूँ। तुम्हारा स्वस्त्ययन मुझे शान्ति देगा?

मन्दाकिनी - आर्य! आप बोलते क्यो नहीं? आप धर्म के नियामक है। जिन स्त्रियो को धर्म-बन्धन में बाँधकर उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते है, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार- कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते, जिससे वे स्त्रियाँ अपनी आपत्ति में अवलम्ब माँग सकें? क्या भविष्य के सहयोग की कोरी कल्पना से उन्हें आप सनतुष्ट रहने की आज्ञा देकर विश्राम ले लेते है।

पुरोहित - नहीं, स्त्री और पुरुष का विश्वापूर्ण अधिकार, रक्षा और सहयोग ही तो विवाह कहा जाता है। यदि ऐसा न हो तो धर्म और विवाह खेल है।

ध्रुवस्वामिनी - खेल हो या न हो, किन्तु एक क्लीव पति के द्वारा परित्यक्ता नारी का मृत्यु- मुख में जाना ही मंगल है।

उसे स्वस्त्ययन और शान्ति की आवश्यकता नहीं।

पुरोहित - (आश्चर्य से) यह मै क्या सुन रहा हूँ? विश्वास नहीं होता। यदि ये बाते सत्य है, तब मुझे फिर एक बार धर्मशास्त्र को देखना पडेगा। (प्रस्थान)

(मिहिरदेव के साथ कोमा का प्रवेश)

ध्रुवस्वामिनी - तुम लोग कौन हो?

कोमा - मै पराजित शक- जाति की एक बालिका हूँ।

ध्रुवस्वामिनी - इस घोर अपराध का तुम्हे क्या दण्ड मिला?

कोमा - वहीं, जो स्त्रियो को प्रायःमिला करता है- निराशा निष्पीडन और उपहास! श्रानी मै तुमसे भीख माँगने आयी हूँ।

ध्रुवस्वामिनी - शत्रुओ के लिए मेरे पास कुछ नही है। अधिक हठ करने पर दण्ड मिलना भी असम्भव नहीं।

मिहिरदेव - (दीर्घ निःश्वास लेकर) पागल लड़की, हो चुका न? अब भी तू न चलेगी?

(कोमा सिर झुका लेती है)

मन्दाकिनी - तुम चाहता क्या हो?

कोमा - रानी तुम भी स्त्री हो। क्या स्त्री की व्यथा न समझोगी? आज तुम्हारी विजय का अन्धकार तुम्हारे शाश्वत स्त्रीत्व का ढँक ले, किन्तु सबके जीवन में एक बार प्रेम की दीपावली जलती है।

जली होगी अवस्था। तुम्हारी भी जीवन में वह आलोक का महोत्सव आया होगा, जिसमें हृदय-हृदय को पहचानने का प्रयत्न करता है, उदार बनता है और सर्वस्व दान करने का उत्साह रखता है। मुझे शकराज का शव चाहिये।

ध्रुवस्वामिनी - (सोच कर) जलो, प्रेम के नातम पर जलना चाहती हो तो तुम उस शव को ले जा कर जलो। जीवित रहने पर मालूम होता है कि तुम्हें अधिक शीतलता मिलज चुकी है। अवश्य तुम्हारा जीवन धन्य है। (सैनिक से) इसे ले जाने दो।

(कोमा का प्रस्थान)

मन्दाकिनी - स्त्रियों के इस बलिदान का भी कोई मूल्य नहीं। कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और अवलम्ब। खोलने वाले हाथों से यह पुरुषों के चरणों को पकड़ती है और वह सदैव ही इनको तिरस्कार घृणा, और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करता है। तब भी यह बावली मानता है?

ध्रुवस्वामिनी - भूल है-भ्रम है। (ठहर कर) किन्तु उसका कारण भी है। पराधीनता की एक परम्परा - सी उनकी नस-नस में- उनकी चेतना में न जाने किस युग से घुस गयी है। उन्हें समझ कर भी भूल करनी पड़ती है। क्या वह मेरी भूल न थी- जब मुझे निर्वासित किया गया, तब मैं अपनी आत्म-मर्यादा से कितना तड़प् रही थी और राजाधिराज रामगुप्त के चरणों में रक्षा के लिये गिरी; पर कोई उपाय चला? नहीं। पुरुषों की प्रभुता का जाल मुझे अपने निर्दिष्ट पर ले आया। मन्दा! दुर्ग की विलय मेरी सफलता है या मेरा दुर्भाग्य इसे मैं नहीं समझ सकी हूँ। राजा से मैं समान नहीं चाहती। पृथ्वी- तल से जैसे एक साकार घृणा निकल कर मुझे अपने पीछे लौट चलने का संकेत कर रही है। क्या यह मेरे मन का कलुष है? क्या मैं मानसिक पाप कर रही हूँ?

(उन्मुक्त भाव से प्रस्थान)

मन्दाकिनी - नारी हृदय, जिसके मध्य बिन्दु से सट कर, शास्त्र का एक मन्त्र कील तरह गढ़ गया है और उसे अपने सरल प्रवर्तन- चक्र में घुमने से रोक रहा निश्चय ही वह कुमार चन्द्रगुप्त की अनुरागिनी है।

चन्द्रगुप्त - (सहसा प्रवेश करके) कौन?- मन्दा!

मन्दाकिनी - अरे कुमार! अभी थोड़ा विश्राम करते।

चन्द्रगुप्त - (बैठते हुए) विश्राम! मुझे कहाँ विश्राम? मैं अभी यहाँ से प्रार्थना करने वाला हूँ। मेरा कर्तव्य पूर्ण हो चुका। यहाँ मेरा ठहरना अच्छा नहीं।

मन्दाकिनी - किन्तु, भाभी की जो बुरी दशा है।

चन्द्रगुप्त - क्यों उन्हें क्या हुआ? (मन्दाकिनी चुप रहती है) बोलो, मुझे अवकाश नहीं।

राजाधिराज का सामना होते ही क्या हो जायेगा- मैं नहीं कह सकता। क्योंकि अब यह राजनीतिक छल - प्रपंच में सह सकता।

मन्दाकिनी - किन्तु, उन्हें इस असहाय अवस्था में छोड़कर आपका जाना क्या उचित होगा? और.... (चुप रह जाती है)

चन्द्रगुप्त - और क्या? वहीं क्यों नहीं कहती हो?

मन्दाकिनी - तो क्या उसे भी कहना होगा? महादेवी बनने के पहले ध्रुवस्वागिनी का जो मनोभाव था, वह क्या आप से छिपा है?

चन्द्रगुप्त - किन्तु मन्दाकिनी! इसकी चर्चा करने से क्या लाभ?

मन्दाकिनी - हृदय में नैतिक साहस- वास्तविक प्रेरणा और पौरुष की पुकार एकत्र करके सोचिये तो कुमार, कि अब आपको क्या करना चाहिये?

(चन्द्रगुप्त चिन्तित भाव से टहलने लगता है। नेपथ्य में कुछ लोगों के आने- जाने का शब्द और कोलाहल) देखें तो यह क्या है? और महादेवी कहाँ गयी? (प्रस्थान)

चन्द्रगुप्त - विधान की स्याही का एक बिन्दु गिर कर भाग्य- लिपि पर कालिमा बढा देता है। मैं आज यह स्वीकार करने में भी सेकुचित हो रहा हूँ कि ध्रुवदेवी मेरी है। (ठहर कर) हाँ, वह मेरी है। उसे मैंने आरम्भ से ही अपनी सम्पूर्ण भावना से प्यार किया है। मेरे हृदय के गहन अन्तस्तल से निकली हुई सह मूक स्वीकृति आज बोल रही है। मैं पुरुष हूँ? मैं अपनी आँखोंसे अपना वैभव और अधिकार दूसरो को अन्याय से छीनते देख रहा हूँ। और मेरी वाग्दत्ता पत्नी मेरे ही अनुत्साह से आज मेरी नहीं रही। नहीं, यह शील का कपट, मोह और प्रवंचना है। मैं जो हूँ, वही तो नहीं स्पष्ट रूप से प्रकट कर सका। यह कैसी विडम्बना है। विनय के आवरण में मेरी कायरता अपने को कब तक छिपा सकेगी?

(एक ओर से मन्दाकिनी का प्रवेश)

मन्दाकिनी - शकरराज का शव लेकर जाते हुये आचार्य और उसकी कन्या का राजाधिराज के साथी सैनिकों ने वध कर डाला

ध्रुवस्वामिनी - (दूसरी ओर से प्रवेश करके) ऐ!

(सामन्त कुमारों का प्रवेश)

सामन्त कुमार - (सब एक साथ ही) स्वामिनी! आपकी आज्ञा के विरुद्ध राजाधिराज ने निरीह शको का संहार करके दिया है।

ध्रुवस्वामिनी - फिर आप लोग इतने चंचल क्यों हैं? राजा को आज्ञा देनी चाहिये और प्रजा को नत-मस्तक होकर उसे मानना होगा।

सामन्त कुमार - किन्तु अब वह असह्य है। राजसत्ता के अस्तित्व की घोषणा के लिए इतना भयंकर प्रदर्शन। मैं तो कहूँगा, इस दुर्ग में आपको आज्ञा के बिना राजा का आना अन्याय है।

ध्रुवस्वामिनी - मेरे वीर सहायको! मैं तो स्वयं एक परित्यक्ता और हतभागिनी स्त्री हूँ। मुझे तो अपनी स्थिति की कल्पना से भी क्षोभ हो रहा है। मैं क्या कहूँ?

सामन्त कुमार - मैं सच कहता हूँ, रातगुप्त- जैसे राजपद को कलुषित करने पाले के लिये मेरे हृदय में तनिक भी श्रद्धा नहीं। विजय का उत्साह दिखाने यहाँ वे किस मुँह से आये, जो हिंसक, पाखण्डी क्षीव और क्रीव है।

रामगुप्त - (सहसा शिखरस्वामी के साथ प्रवेश करके) क्या कहा? फिर से तो कहना!

सामन्त कुमार- गुप्त काल के गौरव को कलंक- कालिमा के सागर में निमज्जित करने वाले!

शिखरस्वामी - (उसे बीच ही में रोककर) चुप रहो! क्या तुम लोग किसी के बहकाने से आवेश में आ गये हो?

(चन्द्रगुप्त की ओर देखकर) कुमार! यह क्या हो रहा है?

(चन्द्रगुप्त उत्तर देने की चेष्टा करके चुप रह जाता है)

रामगुप्त - दुर्विनीत पाखण्डी, पामरो तम्हें इस धृष्टता का क्रूर दण्ड भोगना पड़ेगा। (नुपथ्य की ओर देखकर) इन विद्रोहियों को बन्दह करो।

(रामगुप्त के सैनिक आकर सामन्त कुमारो को बन्दी बनाते हैं। रामगुप्त का संकेत पा कर सैनिक लोग चन्द्रगुप्त की ओर भी बढ़ते हैं और चन्द्रगुप्त श्रंखला में बँध जाता है)

ध्रुवस्वामिनी - कुमार! मैं कहती हूँ कि तुम प्रतिवाद किस अपराध के लिए यह दण्ड ग्रहण कर रहे हो?

(चन्द्रगुप्त एक दीर्घ निःश्वास लेकर चुप रह जाता है)

रामगुप्त - (हँसकर) कुचक्र करने वाले क्या बोलेंगे?

ध्रुवस्वामिनी - और जो लोग बोल सकते हैं, जो अपनी पवित्रता की दुन्दुभी बजाते हैं, वे सबके-सब साधु होते हैं न? (चन्द्रगुप्त से) कुमार! तुम्हारी जिहा पर कोई बन्धन नहीं कि मेरा यही अपराध है कि मैंने कोई अपराध नहीं किया?

रामगुप्त - महादेवी!

ध्रुवस्वामिनी - (उसे न सुनते हुए चन्द्रगुप्त से) झटक दो इन लौह-श्रंखलाओं को! यह मिथ्या ढोंग कोई नहीं सहेगा। तुम्हारा क्रुद्ध दुर्दैव भी नहीं।

रामगुप्त - (डॉंकर) महादेवी! चुप रहो!

ध्रुवस्वामिनी - (तेजस्विता से) कौन महादेवी! राजा, क्या अब भी मैं महादेवी ही हूँ? जो, शकराज की शय्या के लिये क्रीतदासी की तरह भेजी गया हो वह भी महादेवी! आश्चर्य!

शिखरस्वामी - देवि, इस राजनीतिक चातुरी में जो सफलता...।

ध्रुवस्वामिनी - (पैर पटक कर) चुप रहो। प्रवंचना के पुतले! स्वार्थ घृणित प्रपंच चुप रहो।

रामगुप्त - तो तूम महादेवी नहीं हो न?

ध्रुवस्वामिनी - नहीं! मनुष्य की दी हुई उपाधि मैं लौटा देती हूँ।

रामगुप्त - और मेरी सहधर्मिणी ?

ध्रुवस्वामिनी - धर्मही इसका निर्णय करेगा।

रामगुप्त - ऐं क्या इसमें भी सन्देह!

ध्रुवस्वामिनी - उसे अपने हृदय से पूछिये कि क्या मैं वास्तव में सहधर्मिणी हूँ?

(पुरोहित का प्रवेश सामने सबको देखकर चौंक उठना है। शिखरस्वामी उसे चले जाने का संकेत करता है)

पुरोहित - नहीं, मैं नहीं जाऊँगा। प्राणि- मात्र के अन्तराल में जाग्रत रहने वाले महान्रहने वाले महान विचारक धर्म की आज्ञा, मैं न टाल सकूँगा। अभी जो प्रश्न अपनी गम्भीरता में भीषण होकर आप लोगो को विचलित कर रहा है, मैं ही उसका उत्तर देने का अधिकारी हूँ। विवाह का धर्मशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

ध्रुवस्वामिनी - आप सत्यवादी ब्राह्मण है। कृपा करके बतलाइये.....।

शिखरस्वामी - (विनय से उसे रोककर) मैं समझता हूँ कि यह विवाद अधिक बढ़ाने से कोई लाभ नहीं।

ध्रुवस्वामिनी - नहीं, मेरी इच्छा इस विवाद का अन्त करने की है। आज यह निर्णय हो जाना चाहिये कि मैं कौन हूँ।

रामगुप्त - ध्रुवस्वामिनी, निर्लज्जता की भी एक सीमा होती है।

ध्रुवस्वामिनी - मेरी निर्लज्जता का दायित्व क्लीव का पुरुष पर है। स्त्रीकी लज्जा लूटने वाले दस्यु के लिये मैं.....।

रामगुप्त - (रोककर) चुप रहो! तुम्हारा पर- पुरुष में अनुरक्त हृदय अत्यन्त कलुषित हो गया है। तुम काल- सर्पिणी-सी स्त्री! ओह, तुम्हें धर्म का तनिक भी भय नहीं। शिखर ! इसे भी बन्दी करो।

पुरोहित - ठहरिये! महाराज, ठहरिए! धर्म की ही बात मैं सोच रहा था।

शिखरस्वामी - (क्रोध से) मैं कहता हूँ कि तुम चूप न रहोगे, तो तुम्हारी भी यही दशा होगी।

(सैनिक आगे बढ़ता है)

मन्दाकिनी - (उसे रोक कर) महाराज, पुरुषार्थ का इतना बड़ा प्रहासन! टबला पर एंसा अत्याचार!!! यह गुप्त- सग्राट के लिए शोभा नहीं देता।

रामगुप्त - (सैनिक से) क्या देखते हो जो!

(सैनिक आगे बढ़ता है और चन्द्रगुप्त आवेश में आकर लौह-शृखला तोड़ डालता है। सब आश्चर्य और भय से देखते हैं।)

चन्द्रगुप्त - मैं भी आर्य समुद्रगुप्त का पुत्र हूँ और शिखरस्वामी, तुम यह अच्छी तरह जानते हो कि मैं ही उसके द्वारा निर्वाचित युवराज भी हूँ। तुम्हारी नीचता अब असह्य है। तुम अपने राजा को लेकर अस दुर्ग से सकुशल बाहर चले जाओ। यहाँ अब मैं ही शकराज के समस्त अधिकारी का स्वामी हूँ।

रामगुप्त - (भयभीत होकर चारों ओर देखती हुआ) क्यों?

ध्रुवस्वामिनी - (चन्द्रगुप्त से) यही तो कुमार!

चन्द्रगुप्त - (सैनिकों को डपट कर) इन सामन्त कुमारों को मुक्त करो!

(सैनिकों वैसे ही करते हैं और शिखरस्वामी के संकेत से रामगुप्त धीरे- धीरे भव से पीछे हटता हुआ बाहर चला जाता है।)

शिखरस्वामी - कुमार! इस कलाह को मिटाने के लिये हम लोगों को परिषद का निर्णय माननीय होना चाहिये। मुझे आपके अधिपत्य से कोई विरोध नहीं है, किन्तु सब काम विधान के अनुकूल होना चाहिये। मैं कुल-वृद्धों को और सामन्तों को, जो यहाँ उपस्थित हैं, लिवा लाने जाता हूँ।

(प्रस्थान)

(सैनिक लोग और भी मंच ले आते हैं और सामन्त कुमार अपने खड्गों को खींचकर चन्द्रगुप्त के पीछे खड़े हो जाते हैं। ध्रुवस्वामिनी अब और चन्द्रगुप्त परस्पर एक दूसरे को देखते हुये खड़े रहते हैं। परिषद के साथ रामगुप्त का प्रवेश। सब लोग मंच पर बैठते हैं।)

पुरोहित - कुमार! आसन ग्रहण कीजिये।

चन्द्रगुप्त - मैं अभियुक्त हूँ।

शिखरस्वामी - बीती हुई बातों को भूल जाने में ही भलाई है। भाई- भाई की तरह बले से लग कर गुप्त-कुल का गौरव बढ़ाइये।

चन्द्रगुप्त - अमात्य, तुम गौरव किसको कहते हो? वह है कहीं? रोग-जर्जर शरीर पर अलंकारों की सजावट? मलिनता और क्लृप्त की ढेरी पर बाहरी कुंकुम- केसर का लेप गौरव नहीं बढ़ता। कुटिलता की प्रतिमूर्ति बोलो! मेरी वाग्दत्त पत्नी और पिता- द्वारा दिये हुये मेरे सिंहासन का अपहरण किसके संकेत से हुआ? और छल से.....।

रामगुप्त - यह उन्मुक्त प्रलाप बन्द करो। चन्द्रगुप्त तुम मेरे भाई ही हो न! मैं तुम को क्षमा करता हूँ।

चन्द्रगुप्त - मैं उसे मांगता नहीं और क्षमा देने का अधिकार भी तुम्हारा नहीं रहा। आज तुम राजा नहीं हो। तुम्हारे पाप प्रायश्चित्त की पुकार कर रहे हैं। न्यायपूर्ण निर्णय के लिये प्रतीक्षा करो और अभियुक्त बनकर अपने अपराधों को सुनो।

मन्दाकिनी - (ध्रुवस्वामिनी को आगे खींच कर) यह है गुप्तकाल की वधू।

रामगुप्त - मन्दा!

मन्दाकिनी - राजा का भयष् मन्दा का बला नहीं घोंट सकता। तुम लोगो को यदि कुछ भी बुद्धि होती, तो इस अपना कुल- मर्यादा, नारी को, शत्रु के दुर्ग में यो न भेजते। भगवान ने स्त्रियो को उन्नत करते ही अधिकारी से वंचित¹⁰ नहीं किया है। किन्तु तुम लोगो की दस्यु-वृत्ति¹¹ने उन्हें लूटा है। इस परिषद में मेरी प्रार्थना है कि आर्य समुद्रगुप्त का विधान तोड़ कर जिन लोगो ने राज-किल्बिष¹² किया हो उन्हें दण्ड मिलना चाहिये।

शिखरस्वामी - तुम क्या कह रही हो?

मन्दाकिनी - मैं तुम लोगो की नीचता की गाथा सुना रही हूँ अनार्य! सुन नहीं सकते? तम्हारी प्रवचनाओ पे जिस नरक की सृष्टि की है उसका अन्त समीप है। यह साम्राज्य किसका है? आर्य समुद्रगुप्त ने किसे युवराज बनाया था? चन्द्रगुप्त को या इस क्लीव रामगुप्त को जिसने छल और बल से विवाह करके भी इस नारी को अन्य पुरुष की अनुरागिनी बताकर दण्ड देने के लिए आज्ञा दी है। वहीं रामगुप्त, जिसने छल और बल से विवाह करके भी इस स्त्री को शत्रु के दुर्ग में बिना विरोध के भेज दिया था, तुम्हारे गुप्त साम्राज्य का सम्राट है! और वह ध्रुवस्वामी! न जिसे कुछ द दिनों तक तुम लोगो ने महादेवी कह कर सम्बोधित किया है, वह क्या है? कौन है? और उसका कैसा अस्तित्व है? कहीं धर्मशास्त्र¹³ हो तो उसका मुँह खुलना चाहिये।

पुरोहित - शिखर, मुझे अब भी बोलने दोगे या नहीं। मैं राज्य के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहता। वह तुम्हारी रानीति जाने। किन्तु इस विवाह के सम्बन्ध में तो मुझे कुछ कहना ही चाहिये।

गुप्तकाल का एक वृद्ध- कहिए देव, आप ही तो धर्मशास्त्र के मुख है।

पुरोहित - विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रान्तिपूर्ण बन्धन में बाँध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस तरह पददलित¹⁴ नहीं किय जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म- विवाह केवल परस्पर द्वेष से टुट नहीं सकते; परन्तु यह सम्बन्ध उन प्रमाणो से भी विहीन है। और भी (रामगुप्त को देखकर) यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित¹⁵ तो नहीं; पर गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मो से राजाकिल्बिषी क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ट पर कोई अधिकार नहीं।

रामगुप्त - (खड़ा होकर क्रोध से) मूर्ख! तुमको मृत्यु का भय नहीं!

पुरोहित- तनिक भी नहीं! ब्राह्मण केवल- धर्म- से भयभीत है। अन्य किसी भी शक्ति को वह तुच्छ समझता है। तुम्हारे अधिक मुझे धार्मिक सत्य कहने से रोक नहीं सकते। उन्हें बुलाओ, मैं प्रस्तुत हूँ।

मन्दाकिनी- धन्य हो ब्रह्मदेव!

शिखरस्वामी- किन्तु निर्भीक पुरोहित, तुम क्लीव शब्द का प्रयोग कर रहं हो!

पुरोहित - (हँसकर) राजनीतिक दस्यु! तुम शास्त्रार्थ न करो। क्लीव! श्रीकृष्ण ने अर्जुन को क्लीव किसलिये कहा था? जिसे अपनी स्त्री को दूसरे की अंकगामिनी बनने के लिये भेजने में कुछ संकोच नहीं, वह क्लीव नहीं ंतो और क्या है? मैं स्पष्ट कहता हूँ कि धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है।

परिषद् के सब लोग - आनार्य, पतित¹ और क्लीव रामगुप्त, गुप्त साम्राज्य के पवित्र राज्य-सिंहासन पर बैठने का अधिकारी नहीं।

रामगुप्त - (सशंक और भयभीत-सा इधर-उधर देखकर) तुम सब पाखण्डी हो, विद्रोही हो। मैं अपने न्यायपूर्ण अधिकार को तुम्हारे-जैसे-कुत्तों के भौंकने पर न छोड़ दूँगा।

शिखरस्वामी - किन्तु परिषद् का विचार तो मानना ही होगा।

रामगुप्त - (रोने के स्वर से) शिखर! तुम भी ऐसा कहते हो? नहीं, मैं यह न मानूँगा।

ध्रुवस्वामिनी - रामगुप्त तुम अभी इस दुर्ग के बाहर जाओ।

रामगुप्त - ऐं! यह परिवर्तन? तो मैं सचमुच क्लीव हूँ क्या?

(धीरे-धीरे हटता हुआ चन्द्रगुप्त के पीछे पहुँचकर उसे कटार निकाल कर मारना चाहता है चन्द्रगुप्त को विपत्र देखकर कुछ लोग चिल्ला उठते हैं। जब तक चन्द्रगुप्त घूमता है तब तक एक सामन्त कुमार रामगुप्त पर प्रहार² करके चन्द्रगुप्त की रक्षा कर लेता है; रामगुप्त गिर पड़ता है)

सामन्त कुमार - राजाधिराज चन्द्रगुप्त की जय!

परिषद् - महादेवी ध्रुवस्वामिनी की जय!

3.5 ध्रुवस्वामिनी: आलोचना

3.5.1 कथावस्तु

ध्रुवस्वामिनी नाटक का कथासूत्र ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में निर्मित हुआ है। समुद्रगुप्त के बड़े पुत्र रामगुप्त, उसकी पत्नी ध्रुवस्वामिनी व छोटे पुत्र चन्द्रगुप्त को आधार बनाकर 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की कथावस्तु का विकास किया गया है। इतिहास में यह घटना विवादित रही है कि ध्रुवस्वामिनी ने अपने पति रामगुप्त को छोड़कर चन्द्रगुप्त से विवाह किया था या नहीं? इस संदर्भ में संस्कृत नाटककार विशाखदत्त³ ने नाटक 'देशी चन्द्रगुप्त' का आधार भी जयशंकर प्रसाद ने ग्रहण किया है। इस संदर्भ में कथास्रोत के सूत्र राजेशखर और बाणभट्ट की टिप्पणियाँ, नारद स्मृति, पराशर स्मृति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र इत्यादि, 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के आधार बने हैं।

जयशंकर प्रसाद के सभी नाटकों में 'ध्रुवस्वामिनी' रंगमंचीय विधा का अग्रणी दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाटक है। नाटक तीन अंकों में विभक्त है। प्रत्येक अंक एक-एक अंकों में विभक्त है। पहले अंक में नाटक की पृष्ठभूमि निर्मित करने का प्रयास किया गया है। द्वितीय अंक कथा का विस्तार है। तथा तृतीय अंक में संपूर्ण कथानक को समेट कर उसे पूर्णता तक पहुँचाया गया है। दृश्य और सूच्य घटनाओं के उचित तालमेल से कथानक को गति प्रदान की गई है। जयशंकर प्रसाद जी के नाटकों में सूच्य घटनाएँ जहाँ एक ओर कथानक को गति प्रदान करने के लिए लाई जाती हैं वहीं दूसरी ओर इससे कौतूहल व नाटकीयता का उचित संतुलन भी स्थापित हो जाता है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में इसी प्रकार विविध नाटकीय युक्तियों का प्रयोग किया गया है। शकराज का प्रस्ताव, चन्द्रगुप्त का शक-दुर्ग में जाने का निर्णय, चन्द्रगुप्त का लौह-शृंखला तोड़ कर ध्रुवस्वामिनी की रक्षा करना, पुरोहित का क्रान्तिकारी निर्णय, चन्द्रगुप्त का भेष बदलकर शकराज के शिविर में जाना इत्यादि घटनाओं के माध्यम से नाटकीय की सृष्टि की गई है।

3.5.2 चरित्र-चित्रण

नाटक में कथानक को प्राण कहा गया है किन्तु इस प्राण में रक्त-संचार का कार्य उसके चरित्र करते हैं। नाटक में चरित्र-चित्रण की उपयोगिता इस बात से भल-भाँति समझी जाती है कि चरित्र के बिना परिस्थितियाँ और घटनाओं का कोई औचित्य नहीं होता। कहने का अर्थ है कि चरित्र कथानक को गति प्रदान करने वाले अव्यव माँग करता है, क्योंकि इसमें प्रत्यक्ष प्रस्तुति में ही दर्शकों के साथ अपने चरित्र को किसित करना होता है। इस प्रकार पात्र कथावस्तु को अभिव्यक्त करने वाले पात्र होते हैं। कथावस्तु और चरित्र-चित्रण की संगति इसलिए नाटक में किसी अन्य दूसरी विधाओं की अपेक्षा ज्यादा अनिवार्य होती है। दूसरी विधाओं जैसे उपन्यास में ढेरों पात्र होते हैं, जो अपने-अपने ढंग से महत्वपूर्ण होते हैं, लेकिन कई पात्र ऐसे भी होते हैं जो उपन्यास की गति में उतनी महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाते। इस दृष्टि से नाटक में आये सभी पात्रों को अपनी सार्थकता सिद्ध करनी पड़ती है।

किसी भी नाटक में मुख्य पात्र के अतिरिक्त भी अनेकों पात्रों की सृष्टि नाटकार को करनी पड़ती है, जिनका नाटक की गति में अपना अलग महत्व होता है। यहाँ ध्रुवस्वामिनी नाटक में आये प्रमुख पात्रों की चर्चा करना अपेक्षित होगा- 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक जयशंकर प्रसाद का उनके अन्य नाटकों की अपेक्षा छोटा नाटक है, इसलिए इसमें पात्रों की संख्या भी अपेक्षाकृत कम है। रामगुप्त, चन्द्रगुप्त, शकराज, शिखरस्वामी, निहिरिदेव, खिंगिल व पुरोहित प्रमुख पुरुष पात्र हैं। इसके अतिरिक्त हिजड़ा, बौना, कुबड़ा, प्रतिहारी, खड्गधारिणी सामंत कुमार, शक-सामंत जैसे अन्य पात्र भी चित्रित किए गये हैं। स्त्री पात्रों में ध्रुवस्वामिनी, मंदाकिनी और कोमा प्रमुख पात्र हैं। यहाँ हम प्रमुख पात्रों के चरित्र का संक्षेप में अध्ययन करेंगे.....

ध्रुवस्वामिनी

ध्रुवस्वामिनी न केवल आलोच्य नाटक की नायिका है अपितु संपूर्ण नाटक का केन्द्र-बिन्दु भी है। आरम्भ से लेकर नाटक की सामाप्ति तक प्रमुख घटनाक्रमों के केन्द्र में वही है। उसका चरित्र-चित्रण करते हुए प्रसाद जी ने उसे द्रुवशील पात्र के रूप में चित्रित किया है। उसे नाटककार ने एक ओर सहृदय प्रेमी के रूप में चित्रित किया है, दूसरी ओर अन्याय की प्रतिरोध करने वाली स्त्री के रूप में भी.....

“मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु संपत्ति समझ कर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता”

×

×

×

“मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझने वाला पुरुष उसके लिए प्राणों का पण लगा सके”

×

×

×

“निर्लज्ज! मद्यप!! क्लीव!!! ओह, तो मेरा कोई रक्षक वहीं? (ठहर कर), मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी! मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतलमणि नहीं हूँ। मुझ में रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है उसमें आत्म-सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।”

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक में ध्रुवस्वामिनी को नाटककार ने परिस्थितियों से संघर्ष, प्ररिरोध करने वाले पात्र के रूप में चित्रित किया है। कुल मिलाकर ध्रुवस्वामिनी का चरित्र अन्याय के खिलाफ आवाज उठा रही आधुनिक स्त्री का है जो अपनी नियति मानकर सब कुछ को स्वीकार करने से इंकार करती है। ध्रुवस्वामिनी स्त्री-मन व आधुनिक चेतना के द्रुव का प्रतिफल है।

चन्द्रगुप्त-

चन्द्रगुप्त नाटक का नायक तथा प्रधान पुरुष पात्र है। नाटक के महत्वपूर्ण घटना क्रमों का वह आधार है। भारतीय नायकत्व परम्परा में उसका विशिष्ट स्थान है। पद के प्रति निस्प्रह होना व अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक होना उसके व्यक्तित्व की प्रधान विशेषता है। चन्द्रगुप्त पराक्रमी, त्यागी व प्रेमी व्यक्तित्व के रूप में नाटक में आया है। पराक्रम के साथ कर्तव्य व संयम उसके व्यक्तित्व को गंभीरता प्रदान करते हैं। ध्रुवस्वामिनी की तरह की अपने प्रेम व कर्तव्य-मर्यादा के बीच उसके मन में भी लगातार द्रुव चलता रहता है। नाटक में प्रारम्भ में यद्यपि प्रसाद ने उसे संयमी रूप में चित्रित किया है, जिसके कारण वह अपने प्रेम व राज्य पर अधिकार छोड़ देता है, लेकिन क्रमशः वह दोनों को प्राप्त करने में सफल होता है।

रामगुप्त-

रामगुप्त, ‘ध्रुवस्वामिनी’ नाटक का नायक तो नहीं है, किन्तु प्रधान पात्र अवश्य है। नाटक की समस्त घटनाएँ उसी के व्यक्तित्व के क्रिया-प्रतिक्रिया में जन्म लेती हैं। चन्द्रगुप्त के विपरीत उसके चरित्र में कई दुर्बलताएँ हमें देखने को मिलती हैं। अमानवीय, विलासी, कर्तव्यहीन, शंकालु, डरपोक, लिजलिजा, कायर, स्वार्थी रूप में उसका चरित्र गढ़ा गया है।

उसके स्वार्थ की चरम परिणति होती है ज बवह शकराज के प्रस्ताव के अनुसार अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी को शकराज के पास भेजने का निर्णय कर लेता है। ऐसा निर्णय वह अपने कायर व स्वार्थी चरित्र के कारण ही ले पाता है। वह ध्रुवस्वामिनी से कहता है- “तुम्हारा नारीत्व-अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिए मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ, कदाचित तुम वह नहीं जानती हो।” (यह वक्तव्य उसके स्वार्थी चरित्र का संकेत है) इसी प्रकार एक जगह वह निर्लज्जतापूर्वक कहता है: “ तुम, मेरी रानी? नहीं, नहीं जाओ, तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें आपत्ति हो?” (कलीवता व हकधर्मिक का संकेत)

3.5.3 देश-काल एवं परिवेश

देश-काल एवं परिवेश से तात्पर्य नाटक की कथावस्तु में चित्रित समय व स्थान से है। हर रचना किसी-न-किसी समय और स्थान पर लिखी जाती है। समय और स्थान कोई भी हो, उकस एक परिवेश अवश्य होता है। देश-काल एवं वातावरण का तात्पर्य ऐसे ही चित्रण से है। देश-काल भिन्न-भिन्न होते हैं, इसलिए उसका परिवेश भी भिन्न-भिन्न हो जाता है। अपनी सुबिधानुसार इसीलिए लेखक कभी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का चुनाव करता है तो कभी आधुनिक परिवेश को चुनता है। परिवेश का यह चुनाव कथ्य के अनुरूप भी होता है और रचनाकार की रूचि व व्यक्तित्व के अनुसार भी।

‘ध्रुवस्वामिनी’ नाटक इतिहास पर आधारित है। इतिहास के उज्ज्वल अंश को अपनी कल्पना एवं संस्कृति के रंग से रंगकर जयशंकर प्रसाद उसे एक नवीन रूप दे देते हैं। यह नवीन रूप ‘इतिहास की पूर्ति’ के रूप में हमारे सामने आता है। ‘विशाख’ की भूमिका में प्रसाद जी ने लिखा है-“ इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत लाभदायक होता है..... मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने कि हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है। “ प्रसाद जी की यह दृष्टि संपूर्ण ‘ध्रुवस्वामिनी’ नाटक में व्याप्त है। गुप्त युगीन परिस्थिति को प्रस्तुत करने के लिए प्रसाद जी ने उस युग के आचार-विचार, प्रयुक्त सामग्री, भाषा, युद्ध, राजमहल की आन्तरीक व्यवस्था व राजीति की घटना को ऐतिहासिक रूप से जोड़ा है।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क)-

1. गलत
2. गलत
3. सही
4. सही

-
5. सही
 - (ख)-
 1. 1933
 2. 1889
 3. 1937
 4. इंदु
 5. 1936

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी नाटक संचयन (सं)- अंकुर, देवेन्द्र राज, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
2. हिन्दी नाटक नई परख (सं)- गौतम, रमेश, स्वराज प्रकाशन।

3.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
 आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, बच्चन सिंह
 हिन्दी नाटक नई परख (सं)- गौतम, रमेश, स्वराज प्रकाशन।

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. ध्रुवस्वामिनी की नाट्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
2. ध्रुवस्वामिनी की पात्र संरचना पर प्रकाश डालिये।

इकाई 4 आधे अधूरे : पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 पाठ का उद्देश्य
- 4.3 आधे-अधूरे: मूल पाठ
- 4.4 मोहन राकेश एवं आधे-अधूरे परिचय
 - 4.4.1 मोहन राकेश: साहित्यिक परिचय
 - 4.4.2 आधे-अधूरे: परिचय
- 4.5 आधे-अधूरे: मूल्यांकन
 - 4.5.1 आधुनिक जीवन के पक्ष
 - 4.5.2 चरित्र और समाज
 - 4.5.3 संवाद और देशकाल
 - 4.5.4 नाटकीय- रंगमंचीय संदर्भ
- 4.6 सारांश
- 4.7 शब्दावली
- 4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारतीय नाटकों की समृद्ध परम्परा भारत में भी रही है और परिश्रम में भी संस्कृत नाटककारों में कालिदास, भवभूति, अश्वघोष, शूद्रक, माघ जैसे नाटककार रहे हैं। इसी प्रकार पश्चिमी नाटककारों की परम्परा में जॉर्ज बर्नाड शॉ, इलियट, शेक्सपियर, सैम्युअल बैकेट, इब्सन जैसे महत्वपूर्ण नाटककार रहे हैं। इस प्रकार संस्कृत एवं पश्चिमी नाटककारों की लम्बी परम्परा का धाय हिन्दी नाटककार ने स्वीकार किया। इस प्रकार हिन्दी नाटक में अपनी आत्मा संस्कृत नाटकों की परम्परा को बनाया तथा अपने शरीर को आकार पश्चिम की नाटक परम्परा से ग्रहण किया।

हिन्दी नाटकों की परम्परा गिरिधरदास, गोपालचन्द्र दास, लक्ष्मण सिंह से होते हुए भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व के साथ प्रकट हुई। भारतेन्दु जी के नाटकों पर एक ओर जहाँ लोक परम्परा का प्रभाव है, वहीं दूसरी ओर पश्चिमी नाटकों की परम्परा का भी। भारतेन्दु जी की परम्परा में ही जयशंकर प्रसाद का आगमन हुआ। जयशंकर प्रसाद के नाटकों पर संस्कृत के क्लासिकल नाट्यों एवं शेक्सपियर के नाटकों पर प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इसी प्रकार भुवनेश्वर, रामकुमार वर्मा की एकांकीयों पर इब्सन और बैकेट के प्रभाव को स्वीकार किया गया है। नाटकों की इसी समृद्ध परम्परा में मोहन राकेश का आगमन होता है।

मोहन राकेश के नाटकों में आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस व आधे-अधूरे प्रमुख हैं। प्रारंभिक दोनों नाटकों की तुलना में 'आधे-अधूरे' को मोहन राकेश जी ने आधुनिक जीवन समस्या पर केंद्रित किया है। प्रश्न यह है कि 'आधुनिक जीवन समस्या' क्या है? आधुनिक जीवन समस्या का अभिप्राय ऐसी समस्या से है, जो आधुनिकता की प्रक्रिया के दुष्परिणाम थे।

4.2 पाठ का उद्देश्य

एम0ए0एच0एल0-202 की यह चौथी इकाई है। यह इकाई आधे-अधूरे नाटक के माध्यम से आधुनिक जीवन प्रश्नों को खोजने का प्रयास है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- मोहन राकेश के जीवन परिचय को जान सकेंगे।
 - मोहन राकेश के साहित्यिक कृतियों से परिचित हो सकेंगे।
 - 'आधे-अधूरे' नाटक के मूल पाठ से परिचित हो सकेंगे।
 - आधे-अधूरे' नाटक के माध्यम से आधुनिक जीवन विसंगति को समझ सकेंगे।
 - नाटक की रंगमंचीय विशेषताओं को समझ सकेंगे।
 - कुछ नये-कठिन शब्दों के अर्थ व उनके प्रयोग की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आधे-अधूरे के माध्यम से हिन्दी नाटक परम्परा की विशेषताओं को भी समझ सकेंगे।

4.3 मोहन राकेश एवं आधे-अधूरे: परिचय

आधे-अधूरे मूल पाठ

मध्यमवर्गीय स्तर से ढहकर निम्न-मध्यमवर्गीय निम्न स्तर पर आया एक घर।

सब रूपों में इस्तेमाल होने वाला वह कमरा जिसमें घर के व्यतीत स्तर के कई टूटते अवशेष-सोफा-सेट, डाइनिंग टेबल, कबर्ड और डेसिंग देबल आदि-किसी-न-किसी तरह अपने लिए नगह बनाए हैं। जो कुछ भी है, वह अपने अपेक्षाओं के अनुसार न होकर कमरे की सीमाओं के अनुसार एक और ही अनुपात से है। एक चीज का दूसरी चीज से शिवा तात्कालिक सुविधा की मांग के कारण लगभग टूट चुका है। फिर भी लगता है कि वह सुविधा कई तरह की असुविधाओं से समझौता करके की गई है- बल्कि कुछ असुविधाओं में ही सुविधा खोजने की कोशिश की गई है। सामान मेंकही एक तिपाई, कहीं दो-एक मोटे, कहीं फटी-पुरानी किताबों का एक शेल्फ और कहीं पढ़ने की एक मेज-कुरसी भी है। गद्दे परदे, मेजपोश और पलंगोश अगर हैं, तो इस तरह धिसे, फटे या सिले हुए कि समझ में नहीं आता कि उनका न होना क्या होने से बेहतर नहीं था!

तीन दरवाजे तीन तरफ से कमरे में झांकते हैं एक दरवाजा कमरे को पिछल अहाते से जोड़ता है, एक अन्दर के कमरे से और एक बाहर की दुनिया से। बाहर का एक रास्ता अहाते से होकर भी है। रसोईघर में भी अहाते से हाकर जाना होता है। परदा उठने पर सबसे पहले चाय पीने के बाद डाइनिंग टेबल पर छोड़ा गया अधटूटा छी-सेट आलोकित होता है। फिर फटी किताबों और टूटी कुर्सियों आकद में से एक-एक। कुछ सेकंड बाद प्रकाश शोफे के उस भाग पर केंद्रित हो जाता है जहां बैठा काले सूट वाला आदमी सिगार केकश खींच रहा है। उसके सामने रहते प्रकाश उसी तक सीमित रहता है, पर बीच-बीच में कभी यह कोना और वह कोना साथ आलोकित हो उठता है।

का0सू0वा0: (कुछ अंतर्मुख भाव से सिगार की राख झाड़ता) फिर एक बार, फिर से वही शुरूआत.....।

जैसे कोशिश से अपने को एक दायित्व के लिए तैयार करके सोफे से उठ पड़ता है।

मैं नहीं जानता आप क्या समझ रहे हैं मैं कौन हूँ और क्या आशा कर रहे हैं मैं क्या कहने जा रहा हूँ। आप शायद सोचते हों कि मैं इस नाटक में कोई एक निश्चित इकाई हूँ- अभिनेता, प्रस्तुकर्ता, व्यवस्थापक या कुछ और। परन्तु मैं अपने संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकता-उसी तरह जैसे इस नाटक के संबंध में नहीं कह सकता, क्योंकि यह नाटक भी अपने में मेरी ही तरह अनिश्चित है। अतिश्चित होने का कारण यह है कि..... परन्तु कारण की बात करना बेकार है। कारण हर चीज का कुछ-नक-कुछ होता है, हालांकि यह आवश्यक नहीं कि जोकारण दिया जाए, वास्तविक कारण वही हो। और जब मैं अपने ही संबंध में निश्चित नहीं हूँ, तो और किसी चीज के कारण-अकारण के संबंध में निश्चित कैसे हो सकता हूँ?

सिगार के कश खींचता पल-भर सोचता-सा खड़ा रहाता है।

मैं वास्तव में कौन हूँ?— यह एक ऐसा सवाल है जिसका सामना करना इधर आकर मैंने छोड़ दिया है। जो मैं इस स्टेज पर हूँ, वह यहां से बाहर नहीं हूँ और जो बाहर हूँ.....खैर, इसमें आपकी क्या दिलचस्पी हो सकती है कि मैं यहां से बाहर क्या हूँ? शायद अपने बारे में इतना कह देना ही काफी है कि सड़क के फुटपाथ पर चढ़ते आप अचानक जिस आदमी से टकरा जाते हैं, वह आदमी मैं हूँ। आप सिर्फ घूमकर मुझे देख लेते हैं— इसके अलावा मुझसे कोई मतलब नहीं रखते कि मैं कहां रहता हूँ, क्या काम करता हूँ, किस-किस से मिलता हूँ और किन?—किन परिस्थितियों में जीता हूँ। आप मतलब नहीं रखते क्योंकि मैं भी आपसे मतलब नहीं रखता, और टकराने के क्षण में आप मेरे लिए वही होते हैं जो मैं आपके लिए होता हूँ। इसलिए जहां इस समय मैं खड़ा हूँ, वहां मेरी जगह आप भी हो कसते थे?—दो टकराने वाले व्यक्ति होने के नाते आपमें और मुझमें बहुत बड़ी समानता है। यही समानता आप में और उसमें, उसमें और उस दूसरे में, उस दूसरे में और मुझमें..... बहरहाल इस गणित की पहली में कुछ नहीं रखा है। बात इतनी ही है कि विभाजित होकर मैं किसी-न-किसी अंश में आप में से हर एक व्यक्ति हूँ और यही कारण है कि नाटक के बाहर हो या अन्दर, मेरी कोई भी एक निश्चित भूमिका नहीं है।

कमरे के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में टहलने लगता है।

मैंने कहा था, यह नाटक भी मेरी ही तरह अनिश्चित है। उसका कारण भी यही है कि मैं इसमें हूँ और मेरे होने से ही सब-कुछ उसमें निर्धारित या अनिर्धारित है। एक विशेष परिवार, उसकी विशेष परिस्थितियां! परिवार दूसरा होने से परिस्थितियां बदल जातीं, मैं वही रहता। इसी तरह सब-कुछ निर्धारित करता। इस परिवार की स्त्री के स्थान पर कोई दूसरी स्त्री किसी दूसरी तरह से मुझे झेलती-या वह स्त्री मेरी भूमिका ले लेती और मैं उसकी भूमिका लेकर उसे झेलता। नाटक अंत तक फिर भी इतना ही अनिश्चित बना रहता और यह निर्णय करना इतना ही कठिन होता कि इसमें मुख्य भूमिका किसकी थी— मेरी, उस स्त्री की, परिस्थितियों की, या तीनों के बीच से उठते कुछ सवाल की?

फिर दर्शकों के सामने आकर खड़ा हो जाता है। सिगार मुंह में लिए पल-भर ऊपर की तरफ देखता है। फिर 'हंह' के स्वर साथ सिगार मुंह से निकालकर उसकी राख झाड़ता है।

पर हो सकता है, मैं एक अनिश्चित नाटक में एक अनिश्चित पात्र होने की सफाई-भर पेश कर रहा हूँ। हो सकता है, यह नाटक एक निश्चित रूप ले सकता हो-किन्हीं पात्रों को निकाल देने से, दो-एक पात्र और जोड़ देने से, कुछ भूमिकाएं बदल देने से, कुछ पंक्तियां हटा देने से, कुछ पंक्तियां बढ़ा देने से, या परिस्थितियों में थोड़ा हेर-फेर कर देने से। हो सकात है, आप पूरा देखने के बाद, या उससे पहले ही, कुछ सुझाव दे सकें इस संबंध में। इस अनिश्चित पात्र से आपकी भेंट इस बीच कई बार होगी.....।

हलके अभिवादन के रूप में सिर हिलाता है जिसके साथ ही उसकी आकृति धीरे-धीरे धुंधलाकर अंधेरे में गुम हो जाती है। उसके बाद कमरे के अलग-अलग कोने एक-एक करके आलोकित होते हैं और एक आलोक-व्यवस्था में मिल जाते हैं। कमरा खाली है। तिपाई पर खुला हुआ हाईस्कूल का बैग पड़ा है जिसमें आधी कापियां और किताबें बाहर बिखरी हैं। सोफे पर दो-एक

पुराने मैगजीन, एक कैंची और कुछ कटी-अधकटी तसवीरें रखी हैं। एक कुरसी की पीठ पर उतरा हुआ पाजामा झूल रहा है। स्त्री कई-कुछ संभाले बाहर से आती है। कई-कुछ में कुछ घर का है, कुछ दफ्तर का, कुछ अपना। चेहरे पर दिन-भर के काम की थकान है और इतनी चीजों के साथ चलकर आने की उलझना आकर सामान कुरसी पर रखती हुई वह पूरे कमरे पर एक नजर डाल लेती है।

स्त्री: (थकान निकालने के स्वर में) ओह होह होह होह होह! (कुछ हताश भाव से) फिर घर में कोई नहीं। (अन्दर के दरवाजे की तरफ देखकर) किन्नी!..... होगी ही नहीं, जवाब कहां से दे? (तिहाई पर पड़े बैग को देखकर) यह हाल है इसका! (बैग की एक किताब उठाकर) फिर फाड़ लाई एक और किताब! जरा शर्म नहीं कि रोज-रोज कहां से पैसे आ सकते हैं नई किताबों के लिए! (सोफे के पास आकर) और अशोक बाबू यह कमाई करते रहे हैं दिन-भर! (तसवीरें उठाकर देखती) एलिजाबेथ टेलर.... आडे^३ हेबर्न..... शर्ले मैक्लेन! जिंदगी काट रहे हैं इन तसवीरों के साथ!

तसवीरें वापस रखकर बैठने ही लगती है कि नजर झूलते पाजामे पर जा पड़ती है।

(उस तरफ जाती) बड़े साहब वहां अपनी कारगुजारी कर गए हैं। पजामे को मरे जानवर की तरह उठाकर देखती है और कोने में फेंकने को होकर फिर एक झटके के साथ उसे तहाने लगती है। दिन-भर घर पर रहकर आदमी और कुछ नहीं, तो अपने कपड़े तो ठिकाने से रख ही सकता है।

पाजामा कबर्ड में रखने से पहले डाइनिंग टेबल पर पड़े चाय के सामान को देखकर और खीझ जाती है, पाजामे को कुरसी पर पटक देती और प्यालियां बगैरह ट्रे में रखने लगती है। इतना तक नहीं कि चाय पी है, तो बरतन रसोईघर में छोड़ आए। मैं ही आकर उठाऊं...।

ट्रे उठाकर अहाते के दरवाजे की तरफ बढ़ती ही है कि पुरुष एक उधर से आत जाता है। स्त्री ठिठककर सीधे उसकी आंखों में देखती है, पर वह उसमें आंखें बचाता वास से निकलकर थोड़ा आगे आ जाता है।

पुरुष एक: आ गई दफ्तर से? लगता है आज बस जल्दी मिल गई।

स्त्री (ट्रे वापस मेज पर रखती) यह अच्छा है कि दफ्तर से आओ, तो कोई घर पर दिखे ही नहीं। कहां चले गए थे तुम?

पुरुष एक: कहीं नहीं। यहीं बाहर था- मार्केट में।

स्त्री: (उसका पाजामा हाथ में लेकर) पता नहीं यह क्या तरीका है इस घर का? रोज आने पर पचास चीजें यहां-वहां बिखरी मिलती हैं।

पुरुष एक: (हाथ जोड़कर) लाओ, मुझे दे दो।

स्त्री: (पाजामे को झाड़कर फिर से तहाती हुई) अब क्यों दे दूँ! पहले खुद भी तो देख सकते थे।

गुस्से से कबर्ड खोलकर पाजामे कोजैसे उसमें कैद कर देती है। पुरुष एक फालतू-सा-इधर-उधर देखता है, फिर एक कुरसी की पीठ पर हाथ रख लेता है।

- : (कबर्ड के पास से आकर ट्रे उठाती) चाय किस-किस ने पी थी?
- पुरुष एक: (अपराधी स्वर में) अकेले मैंने।
- स्त्री: तो अकेले के लिए क्या जरूरी थी कि पूरी ट्रे की ट्रे ...किन्नी को देध दे दिया था?
- पुरुष एक: वह मुझे दिखी नहीं अब तक।
- स्त्री: (ट्रे लेकर चलती) दिखे तब न जो घर पर रहे कोई।
अहाते के दरवाजे से हाकर पीछे रसोईघर में चली जाती है। पुरुष एक एक लंबी 'हूं' के साथ कुरसी को झुलाने लगता है। स्त्री पल्ले से हाथ पोंछती रसोईघर से वापस आती है।
- पुरुष: मैं बस थोड़ी देर के लिए ही निकला था बाहर।
- स्त्री: (और चीजों को समेटने में व्यस्त) मुझे क्या पता कितनी देर के लिए निकले थे। वह आज फिर आएगा अभी थोड़ी देर में। तब तो घर पर रहोगे तुम?
- पुरुष: (हाथ रोककर) कौन आएगा? सिंघानिया?
- स्त्री: उसे किसी के यहां खाना आना है इधरा पांच मिनट के लिए यहां भी आएगा।
पुरुष तक फिर उसी तरह 'हूं' के साथ कुरसी को झुलाने लगता है।
- : मुझे यह आदत अच्छी नहीं लगती तुम्हारी। कितनी बार कह चुकी हूं।
पुरुष एक कुरसी से हाथ हटा लेता है।
- पुरुष एक: तुम्हीं ने कहा होगा उससे आने के लिए?
- स्त्री: कहना फर्ज नहीं बनता मेरा? आखिर मेरा बॉस है।
- पुरुष एक: बॉस का मतलब यह थोड़ी ही है न कि....?
- स्त्री: तु ज्यादा जानते हो? काम तो मैं ही करती हूं उसके मातहत।
पुरुष एक फिर से कुरसी को झुलाने को हाकर एकाएक हाथ हटा लेता है।
- पुरुष एक: किस वक्त आएगा?
- स्त्री: पता नहीं। जब भी गुजरेगा इधर से।
- पुरुष एक: (छिले हुए स्वर में) यह अच्छा है।
- स्त्री: लोगों को तो ईर्ष्या है मुझसे, कि दो बार मेरे यहां आ चुका है। आज तीसरी बार आएगा।
- कैंची, मैगजीन औश्र तसवीरों समेटकर पढ़ने की मेज की दराज में रख देती है। किताबें बैग में बंद करके उसे एक तरफ सीधा खड़ा कर देती है।
- पुरुष एक: तो लोगों को भी पता है, वह आता है यहां?
- स्त्री: (एक तीखी नजर उस पर डालकर) क्यों, बुरी बात है?
- पुरुष एक: मैंने कहा है, बुरी बात है! मैं तो बल्कि कहता हूं, अच्छी बात है।
- स्त्री: तुम जो कहते हो, उसका सब मतलब समझ में आता है मेरी।
- पुरुष एक: तो अच्छा यही है कि मैं कुछ न कहकर चुप राह करूं। अगर चुप रहता हूं, तो..
- स्त्री: तुम चुप रहते हो! और न कोई!

अपनी चीजे कुरसी से उठाकर उन्हें यथा-स्थान रखने लगती

है।

पुरुष एक: पहले जब-जब आया है वह, मैंने कुछ कहा है तुमसे?

स्त्री: अपनी शरम के मारे! कि दोनों बार तुम घर पर नहीं रहे।

पुरुष एक: उसमें क्या है? आदमी को काम नहीं हो सकता बाहर?

स्त्री: (व्यस्त) वह तो आज भी हो जाएगा तुम्हें।

पुरुष एक: (ओछा पड़कर) जाना तो है आज भी मुझे..... पर तुम जरूरी समझो मेरा यहां रहना, तो...।

स्त्री: मेरे लिए रूकने की जरूरत नहीं। (यह देखती कि कमरे में और कुछ तो करने को शेष नहीं) तुम्हें और प्याली चाहिए चाय की? मैं बना रही हूँ अपने लिए।

पुरुष एक: बना रही हो, तो बना लेना एक मेरे लिए भी।
(स्त्री अहाते के दरवाजे की तरफ जाने लगती है)
सुनो !

स्त्री रूककर उसकी तरफ देखती है।

उसका क्या हुआ.... वह जो हड़ताल होने वाली थी तुम्हारे दफ्तर में?

स्त्री: जब होगी, पता चल ही जाएगा तुम्हें।

पुरुष एक: पर होगी भी?

स्त्री: तुम उसी के इंतजार में हो क्या?

चली जाती है। पुरुष एक सिर हिलाकर इधर-इधर देखता है कि अब वह अपने को कैसे व्यस्त रख सकता है। फिर जैसे याद हो आने से शाम का अखबार जेब से निकालकर खोल लेता है। हर सुखी पढ़ने के साथ उसके चेहरे का भाव और तरह का हो जाता है- उत्साहपूर्ण, व्यंग्यपूर्ण, तनाव-भरा या पस्त साथ मुंह से 'बहुत अच्छे!' 'मार दिया' 'लो' और 'अब?' जैसे शब्द निकल पड़ते हैं। स्त्री रसोईघर से लौटकर आती है।

पुरुष एक: (अखबार हटाकर स्त्री को देखता) हड़तालें तो आजकल सभी जगह हो रही हैं। इसमें देखो...

स्त्री: (उस ओर से विरक्त) तुम्हें सचमुच कहीं जाना है क्या? कहां जाने की बात कर रहे थे तुम?

पुरुष एक: सोच रहा था, जुनेजा के यहां हो आता।

स्त्री: ओऽऽ? जुनेजा के यहां! ...हो जाओ।

पुरुष एक: फिलहाल उसे देने के लिए पैसा नहीं है, जो कम-से-कम मुंह तो उसे दिखाते रहना चाहिए।

स्त्री: हांऽऽ, दिखा आओ मुंह जाकर।

पुरुष एक: वह छह महीने बाहर रहकर आया है। हो सकता है, कोई नया कारबार चलाने की सोच रहा हो जिसमें मेरे लिए....।

स्त्री: तुम्हारे लिए तो पता नहीं क्या-क्या करेगा वह जिंदगी में! पहले ही कुछ कम नहीं किया है।

झाड़न लेकर कुर्सियों वगैरह का झाड़ना शुरू कर देती है।

इतनी गर्द भरी रहती है हर वक्त इस घर में! पता नहीं कहां से चली आती है!

पुरुष एक: तुम नाहक कोसती रहती हो उस आदमी को। उसने तो अपनी तरफ से हमेशा मेरी मदद ही की है।

स्त्री: न करता मदद, तो उतना नुकसान तो न होता जितना उसके मदद करने से हुआ है।

पुरुष एक: (कुढ़कर सोफे पर बैठता) तो नहीं जाता मैं! अपने अकेले के लिए जान है मुझे! अब तक तकदीर ने साथ नहीं दिया, तो इसका यह मतलब तो नहीं कि....।

स्त्री: यहां से उठ जाओ। मुझे झाड़ लेने दो जरा।

पुरुष एक उठकर फिर से बैठने की प्रतीक्षा में खड़ा रहाता है।

उस कुरसी पर चले जाओ, वह साफ हो गई है।

पुरुष एक गाली देती नजर से उसे देखकर उसी कुरसी पर जा बैठता है।

(बड़बड़ती) पहली बार प्रेस में जो हुआ सो हुआ। दूसरी बार फिर क्या हो गया? वही पैसा जुनेजा ने लगाया, वही तुमने लगाया। एक ही फैक्टरी लगी, एक ही जगह जमा-खर्च। फिर भी तकदीर ने उसका साथ दे दियाप, तम्हारा नहीं दिया।

पुरुष एक: (गुस्से से उठता) तुम तो ऐसी बात करती हो जैसे...।

स्त्री: खड़े क्यों हो गए?

पुरुष एक: क्यों, मैं खड़ा नहीं हो सकता?

स्त्री: (हलका वकफा लेकर तिरस्कारपूर्ण स्वर में) हो तो सकते हो, पर घर के अन्दर ही।

पुरुष एक: (किसी तरह गुसा निगलता) मेरी जगह तु हिस्सेदार होतीं न फैक्टरी की, तो तुम्हें पता नहीं चल जाता कि...।

स्त्री: पता तो मुझे अब भी चल रहा है। नहीं चल रहा?

पुरुष: (बड़बड़ता) उन दिनों पैसा लिया कितना था फैक्टरी से! जो कुछ लगाया था, वह सारा तो शुरू में ही निकाल-निकालकर खा लिया और....।

स्त्री: किसने खा लिया? मैंने?

पुरुष एक: नहीं, मैंने! पता है कितना खर्च था उन दिनों इस घर का? चार सौ रूपए महीने का मकान था। टैक्सियों में आना-जाना होता था। किस्तों पर फ्रिज खरीदा गया था। लड़के-लड़की की कान्वेंट की फीस जाती थीं....।

स्त्री: शराब आती थी। दावमें उड़ती थीं। उन सब पर पैसा तो खर्च होता ही था।

पुरुष एक: तुम लड़ना चाहती हो?

स्त्री: तुम लड़ सकेत हो एक वक्त, ताकि उसी बहाने चले जाओ घर से। वह आदमी आएगा, तो जाने क्या सोचेगा कि क्यों हर बार इसके आदमी को काई-न -कोई काम हो जाता है बाहर। शायद समझे कि मैं हो जान-बूझकर भेज देती हूँ।

- पुरुष एक: वह तुझसे तय करके तो आता नहीं कि मैं उसके लिए मौजूद रहा करूँ घर पर।
- स्त्री: कह दूंगी, आगे से तय करके आया करो तुम। तुम इतने बिजी आमदी जो हो। पता नहीं कब किस बोर्ड की मीटिंग में जाना पड़ जाए।
- पुरुष: (कुछ धीमा पड़कर पराजित भाव से) तुम तो बस..... आमादा की रहती हो हर वक्त।
- स्त्री: अब जुनेजा आ गया है न लौटकर, तो रहा करना फिर तीन-तीन दिन घर से गायब।
- पुरुष: (पूरी शक्ति समेटकर सामना करता) तुम फिर से वही बात उठाना चाहती हो? अगर रहा भी हूँ कभी मैं तीन दिन घर से बाहर, तो आखिर किस वजह से?
- स्त्री: वजह का पता तुम्हें होगया या तुम्हारे लड़के को। वही भी तीन-तीन दिन दिखाड़ नहीं देता घर पर।
- पुरुष: तुम मेरा मुकाबला उससे करती हो?
- स्त्री: नहीं, उसका मुकाबला तुमसे करती हूँ। जिस तरह तुमने ख्वार की अपनी जिंदगी, उसी तरह वह भी....।
- पुरुष: और लड़की तुम्हारी? उसने अपनी जिंदगी ख्वार करने की सीख किससे ली है? (अपने जाने भरी पड़ता) मैंने तो कभी किसी के साथ घर से भागने की बात नहीं सोची थी।
- स्त्री: (एकटक उसकी आंखों में देखती) तुक कहना क्या चाहते हो?
- पुरुष: कहना क्या है..... जाकर चाय बना लो, पानी हो गया होगा।
- सोफे पर बैठकर अखबार खोल लेता है, पर ध्यान पढ़ने में लगा नहीं पाता।
- स्त्री: मुझे भी पता है, पानी हो गया होगा। मैं जब किसी को बुलाती हूँ यहां, मुझे पता होता है तुम यही सब बाते कारोगे।
- पुरुष एक: (जैसे अखबार में कुछ पढ़ता हुआ) हूँ-हूँ-हूँ-हूँ।
- स्त्री: वैसे हार बार कहोगे कि लड़के की नौकरी के लिए किसी से बात क्यों नहीं करतीं। और जब मैं मौका निकालती हूँ उसके लिए, तो...।
- पुरुष एक: हांSS, सिंघानिया तो लगवा ही देगा जरूर। इसीलिए बेचारा आता है यहां चलकर।
- स्त्री: शुक्र नहीं मानते कि एक इतना बड़ा आदमी, सिर्फ एक बार कहने-भर से।
- पुरुष एक: मैं नहीं शुक्र मानता? जब-जब किसी जए आदमी का आना-जाना शुरू होता है यहं, मैं हमेशा शुक्र मनाता हूँ। पहले जगमोहन आया करता था। फिर मनोज आने लगा था...।
- स्त्री: (स्थिर दृष्टि से उसे देखती) और क्या-क्या बात रह गई है कहने को बाकी? वह भी कह डालो जल्दी से।
- पुरुष एक: क्यों... जगमोहन का नाम मेरी जबान पर आया नहीं कि तुम्हारे हवास गम होने शुरू हुए?
- स्त्री: (गहरी वितृष्णा के साथ) जितने नाशुके आदमी तुम हो, उससे तो मन करता है कि आज ही मैं...।

कहती हुई अहाते के दरवाजे की तरफ मुड़ती ही है कि बाहर से बड़ी लड़की की आवाज सुनाई देती है।

बड़ी लड़की: ममा!

स्त्री रूककर उस तरफ देखती है। चेहरा कुछ फीका पड़ जाता है।

स्त्री: बीना आई है बाहर।

पुरुष एक न चाहते मन से अखबार लपेटकर उठ खड़ा होता है।

पुरुष एक: फिर उसी तरह आई होगी।

स्त्री: जाकर देख लोगे, क्या चाहिए उसे?

बड़ी लड़की की आवाज फिर सुनाई देती है?

पुरुष एक: ममा, टूटे पचास पैसे देना जरा।

पुरुष एक किसी अनचाही स्थिति का सामना करने की तरह बाहर के दरवाजे की तरफ बढ़ता है।

स्त्री: पचास पैसे हैं न तुम्हारी जेब में? होंगे तो सही, दूध के पैसे में से बचे हुए।

पुरुष एक: मैंने सिर्फ पांच पैसे खर्च किए हैं अपने पर-इस अखबार के।

बाहर निकल जाता है। स्त्री पल-भर उधर देखती रहकर अहाते के दरवाजे से रसोई-घर में चली जाती है। बड़ी लड़की बाहर से आती है। पुरुष एक उसके पीछे-पीछे आकर इस तरह कमरे में नजर दौड़ता है जैसे स्त्री के उस समय कमरे में न होने से वह अपने गलत जगह पर अकेला पा रहा है।

पुरुष एक: (अपने अटपटेपन को ढंक पाने में असमर्थ, बड़ी लड़की से) बैठ तू।

स्त्री: ममा कहां है।

पुरुष एक: उधर होगी रसोईघर में।

बड़ी लड़की: (पुकारकर) ममा!

स्त्री दोनो हाथों में चाय की प्यालियां लिए अहाते के दरवाजे से आती है।

स्त्री: क्या हाल है तेरे?

बड़ी लड़की: ठीक है।

पुरुष एक स्त्री को हाथों के इशारे से बतलाने की कोशिश करता है कि वह अपने साथ सामान कुछ भी नहीं लाई।

स्त्री: चाय लेगी?

बड़ी लड़की: अभी नहीं। पहले हाथ-मुंह धो लूं गुसलखाने में जाकर। सारा जिस्म इस तरह चिपपिपा रहा है कि बस...।

स्त्री: तेरी आंखें ऐसी क्यों हो रही हैं?

बड़ी लड़की: कैसी हो रही हैं?

स्त्री: पता नहीं कैसी हो रही हैं।

बड़ी लड़की: तुम्हें ऐसे ही लग रहा है। मैं अभी आजी हूं हाथ-मुंह धोकर।

आहाते के दरवाजे से चली जाती है। पुरुष एक अर्थपूर्ण दृष्टि से स्त्री को देखता उसके पास जाता है।

पुरुष एक: मुझे तो यह उसी तरह आई लगती है।
स्त्री चाय की प्याली उसकी तरफ बढ़ा देती है।

स्त्री: चाय ले लो।

पुरुष एक: (चाय लेकर) इस बार कुछ सामान भी नहीं है साथ में।

स्त्री: हो सकता है, थोड़ी देर के लिए आई हो।

पुरुष एक: पर्स में सिर्फ एक ही रूपया था। स्कूटर-रिक्शा का पूरा किराया भी नहीं।

स्त्री: क्या पता कहीं और से आ रही हो?

पुरुष एक: तुम हमेशा बात को ढंकने की कोशिश क्यों करती हो? एक बार इससे पूछती क्यों नहीं खुलकर?

स्त्री: क्या पूछूं?

पुरुष एक: यह मैं बताऊंगा तुम्हें?

स्त्री चाय के घूँट भरती एक कुर्सी पर बैठ जाती है।

(पल-भर उस की प्रतीक्षा करने के बाद) मेरी उस आदमी के बारे में कभी अच्छी राय नहीं थी। तुम्हीं ने हवा बांध रखा थी कि मनोज यह है, वह है- जाने क्या है! तुम्हारी शह से उसका घर में आना-जाना न होता, तो क्या यह नौबत आती कि लड़की उसके साथ जाकर बाद में इस तरह?

स्त्री: (तंग पड़कर) तो तुम खुद ही क्यों नहीं पूछ लेते उससे जो पूछना चाहते हो?

पुरुष एक: मैं कैसे पूछ सकता हूँ?

स्त्री: क्यों नहीं पूछ सकते?

पुरुष एक: मेरा पूछना इसलिए गलत है कि...।

स्त्री: तुम्हारा कुछ भी करना किसी-न-किसी वजह से गलत होता है। मुझे पता नहीं है।
बड़े-बड़े घूँट भरकर चाय प्याली खाली कर देती है।

पुरुष एक: तुम्हें सब पता है! अगर सक कुछ मेरे करने से होता इस घर में'.....।

स्त्री: (उठती हुई) तो पता नहीं और क्या बरबादी हुई होती! जो दो रोटी आज मिल जाती हैं मेरी नौकरी से, वह भी न मिल पातीं। लड़की भी घर में रहकर ही बुढ़ा जाती, पर यह न सोचा होता किसी न कि....।

पुरुष एक: (अहाते के दरवाजे की तरफ संकेत करके) वह आ रही है।

जल्दी-जल्दी अपनी प्याली खाली करके स्त्री को दे देता है। बड़ी-लड़की पहले से काफी संभली हुई वास आती है।

बड़ी लड़की: (आती हुई) ठंडे पानी के छींटे मुंह पर मारे, तो कुछ होश आया। आजकल के दिनों में तो बस..... (उन दोनों को स्थिर दृष्टि से अपनी ओर देखते पाकर) क्या बात है, ममा? आप लोग इस तरह क्या देख रहे हैं मुझे?

स्त्री: मैं प्यालियां रखकर आ रही हूँ अंदर से।
अहाते के दरवाजे से चली जाती है। पुरुष एक भी आंखें हटाकर व्यस्त होने का बहाना खोजता है।

बड़ी लड़की: क्या बात है, डेडी?
पुरुष एक: बात?..... बात कुछ भी नहीं।
बड़ी लड़की: (कमजोर पड़ती) है तो सही कुछ-न-कुछ बात।
पुरुष एक: ऐसे ही तेरी ममा अभी कुछ कह रही थी...।
बड़ी लड़की: क्या कह रही थी?
पुरुष एक: मतलब वह नहीं, मैं कह रहा था उससे...।
बड़ी लड़की: क्या कह रहे थे?
पुरुष एक: तरे बारे में बात कर रहा था।
बड़ी लड़की: क्या बात कर रहे थे?

स्त्री लौटकर आ जाती है।

पुरुष एक: वह आ गई है, खुद ही बता देगी तुझे।
जैसे अपने को स्थिति से बाहर रखने के लिए थोड़ा परे चला जाता है।
बड़ी लड़की: (स्त्री से) डैडी मेरे बारे में क्या बात कर रहे थे, ममा?
स्त्री: उन्हीं से क्यों नहीं पूछती ?
बड़ी लड़की: वे कहते हैं तुम बतलाओगी और तुम कहती हो उन्हीं से क्यों नहीं पूछती!
स्त्री: तरे डैडी तुझसे यह जानना चाहते हैं कि...।
पुरुष एक: (बीच में ही) अगर तुम अपनी तरफ से नहीं जानना चाहतीं, तो रहने दो बात को।
बड़ी लड़की: पर बात ऐसी है क्या जानने की?
स्त्री: बात सिर्फ इतनी है कि जिस तरह से तू आजकल आती है वहां से, एससे इन्हे कहीं लगता है कि...।
पुरुष एक: तुम्हें जैसे नहीं लगता!
बड़ी लड़की: (जैसे कठघरे में खड़ी) क्या लगता है?
स्त्री: कि कुछ है जो तू अपने मन में छिपाए रखती है, हमें नहीं बतलाती।
बड़ी लड़की: मेरी किस बात से लगता है ऐसा?
स्त्री: (पुरुष एक से) अब कहो न इसके सामने वह सब जो मुझसे कह रहे थे।
पुरुष एक: तुमने शुरू की है बात, तुम्हीं पूरी कर डालो अब।
स्त्री: (बड़ी लड़की से) मैं तुझसे एक सीधा सवाल पूछ सकती हूँ?
बड़ी लड़की: जरूर पूछ सकती हो।
स्त्री: तू खुश है वहां पर ?
बड़ी लड़की: (बचते स्वर) हांSS, बहुत खुश हूँ।

स्त्री: सचमुच खुश है?

बड़ी लड़की: और क्या ऐसे ही कह रही हूँ?

पुरुष एक: (बिलकुल दूसरी तरफ मुंह किए) यह तो कोई जवाब नहीं है।

बड़ी लड़की: (तुनककर) तो जवाब क्या तभी होता अगर मैं कहती कि मैं खुश नहीं हूँ, बहुत दुखी हूँ?

पुरुष एक: आदमी जो जवाब दे, वह उसके चेहरे से भी झलकना चाहिए।

बड़ी लड़की: मेरे चेहरे से क्या झलकता है कि मुझे तपेदिक हो गया है? मैं घुल-घुलकर मरी जा रही हूँ?

पुरुष एक: एक तपेदिक ही होता है बस आदमी को?

बड़ी लड़की: तो और क्या-क्या होता है? आंख से दिखाई देना बंद हो जाता है? नाक-कान तिरछे हो जाते हैं? होंठ झड़कर गिर जाते हैं? मेरे चेहरे से ऐसा क्या नजर आता है आपको?

पुरुष एक: (कुढ़कर लौटता) तेरी मां ने तुझसे पूछा है, तू उसी से बात कर। मैं इस मारे कभी पड़ता ही नहीं इन चीजों में।

सोफे पर जाकर अखबार खोल लेता है। पर पल-भर ध्यान हो आने से कि वह उसने उलटा पकड़ रखा है, उसे सीधा कर लेता है।

स्त्री: (बड़ी लड़की) अच्छा, छोड़ अब इस बात को। आगे से यह सवाल मैं नहीं पूछूंगी तुझसे।

बड़ी लड़की की आंखें छलछला आती हैं।

बड़ी लड़की: पूछने में रखा भी क्या है, ममा! जिंदगी किसी तरह कटती ही चलती है हर आदमी की।

पुरुष एक: (अखबार का पन्ना उलटता) यह हुआ कुछ जवाब!

स्त्री: (पुरुष एक से) तुम चुप नहीं रह सकते थोड़ी देर?

पुरुष एक: मैं क्या कह रहा हूँ? चुप ही बैठा हूँ यहां। (अखबार में पढ़ता) नाले का बांध पूरा करने के लिए बारह साल के लड़के की बलि। (अखबार से बाहर) आप चाहे जो कह लें, मेरे मुंह से एक लफ्ज भी न निकले। (फिर अखबार में से) उदयपुर में मड़ढा गांव में बांध के ठेकेदार का अमानुषिक कृत्या। (अखबार से बाहर) हद होती है हर चीज की।

स्त्री बड़ी लड़की के कंधे पर हाथ रखे उसे पढ़ने की मेज के पास ले जाती है।

स्त्री: यहां बैठा

बड़ी लड़की पलकें झपकती वहां कुरसी पर बैठ जाती है।

सच-सच बता, तुझे वहां किसी चीज की शिकायत है।

बड़ी लड़की: शिकायत किसी चीज की नहीं....।

स्त्री: तो?

बड़ी लड़की: और हर चीज की है।

स्त्री: फिर भी कोई खास बात?

बड़ी लड़की: खास बात कोई भी नहीं...।

स्त्री: तो?

बड़ी लड़की:और सभी बातें खास हैं।

स्त्री: जैसे?

बड़ी लड़की: जैसे... सभी बातें।

स्त्री: तो मेरा मतलब है कि.....?

बड़ी लड़की: मेरा मतलब है... कि शादी से पहले मुझे लगता था कि मनोज को बहुत अच्छी तरह जानती हूँ पर अब आकर.... अब आकर लगने लगा है कि वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था।

स्त्री: (बात की गहराई तक जाने की तरह) हूँ!....तो क्या उसके चरित्र में कुछ ऐसा है जो....?

बड़ी लड़की: नहीं। उसके चरित्र में ऐसा कुछ नहीं हो। इस लिहाज से बहुत साफ आदमी है वह।

स्त्री: तो फिर क्या उसके स्वभाव में कोई ऐसी बात है जिससे...?

बड़ी लड़की: नहीं। स्वभाव उसका हर आदमी जैसा है। बल्कि आम आदमी से ज्यादा खुशदिल कहना चाहिए उसे।

स्त्री: (और भी गहराई में जाकर कारण खोजती) तो फिर?

बड़ी लड़की: यही तो मैं भी नहीं समझ पाती। पता नहीं, कहां पर क्या है जो गलत है!

स्त्री: उसकी आर्थिक स्थिति ठीक है?

बड़ी लड़की: ठीक है?

स्त्री: सेहत ?

बड़ी लड़की: बहुत अच्छी हैं

पुरुष एक: (बिना उधर देखे) सब -कुछ अच्छा ही अच्छा है फिर तो। शिकायत किस बात की है?

स्त्री: (पुरुष एक से) तुम बात को समझपने भी दोगे? (बड़ी लड़की से) जब इनमें से किसी चीज की शिकायत नहीं है तुझे, तब या तो कोई बहुत ही खास वजह होनी चाहिए या

।

बड़ी लड़की: या?

स्त्री: या...या... मैं अभी नहीं कह सकती ।

बड़ लड़की: वजही सिर्फ वह हवा है जो हम दोनों के बीच से गुजरती है।

पुरुष एक: (उस ओर देखकर) क्या कहा.... हवा?

बड़ी लड़की: हां, हवा।

पुरुष एक: (निराश भाव से सिर हिलाकर मुंह फिर दूसरी तरफ करता) यह वजह बताई है इसने ...हवा!

स्त्री: (बड़ी लड़की के चेहरे को आंखों से टटोलती) मैं तेरा मतलब नहीं समझी।

बड़ी लड़की: (उठती हुई) मैं शायद समझा नहीं सकती (अस्थिर भाव से कुछ कदम चलती) किसी दूसरे को तो क्या अपने को भी नहीं समझा सकती। (सहसा रूककर) ममा, ऐसा भी होता है क्या कि...?

स्त्री: कि.?

बड़ी लड़की: कि दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहें, एक हवा में सांसा लें, उतना ही ज्यादा अपने को एक-दूसरे से अजनबी महसूस करें?

स्त्री: तुम दोनों ऐसा महसूस करते हो?

बड़ी लड़की: कम-से-कम अपने लिए तो मैं कह ही सकती हूँ।

स्त्री: (पल-भर उसे देखती रहकर) नू बैठकर क्यों नहीं बात करती?

बड़ी लड़की: मैं ठीक हूँ इसी तरह।

स्त्री: तूने जो बात कही है, वह अगर सच है, तो उसके पीछे क्या कोई-न-कोई ऐसी अड़चन नहीं है जो....?

बड़ी लड़की: पर कौन-सी अड़चन?उसके हाथ में छलक गई चाय की प्याली, या उसके दफ्तर से लौटने में आधा घंटे की देर-ये छोटी-छोटी बातें अड़चन नहीं होतीं,? मगर अड़चन बन जाती है। एक गुबार-सा है जो हर वक्त मेरे अंदर भरा रहता है और मे। इंतजार में रहती हूँ जैसे कि कब कोई बहाना मिले उसे बाहर निकाल लूं। और आखिर....

स्त्री चुपचाप आगे सुनने की प्रतीक्षा करती है।

आखिर वह सीमा आ जाती है जहां पहुंचकर वह निढाल हो जाता है। ऐसे में वह एक ही बात कहता है।

स्त्री: क्या?

बड़ी लड़की: कि मैं इस घर से ही अपने अंदर कुछ ऐसी चीज लेकर गई हूँ जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देती।

स्त्री: (जैसे किसी ने उसे तमाचा मार दिया हो) क्या चीज?

बड़ी लड़की: मैं पूछती हूँ क्या चीज, जो उसका एक ही जवाब होता है।

स्त्री: वह क्या?

बड़ी लड़की: कि इसका पता मुझे अपने अंदर से, या इस घर के अंदर से चल सकता है। वह कुछ नहीं बता सकता।

पुरुष एक: (फिर उस तरफ मुड़कर) यह सब कहता है वह? और क्या-क्या कहता है?

स्त्री: वह इस वक्त तुमसे बात नहीं कर रही।

पुरुष एक: पर बात तो मेरे ही घर की हो रही है।

स्त्री: तुम्हारा घर! हंह!

पुरुष एक: तो मेरा घर नहीं है यह? कह दो, नहीं है!

स्त्री: सचमुच तुम अपना घर समझते इसे, तो...।

पुरुष एक: कह दो, कह दो, जो कहना चाहती हो।

स्त्री: दस साल पहले कहना चाहिए था मुझे.... जो कहला चाहती हूं।

पुरुष एक: कह दो अब भी... इससे पहले कि दस साल ग्यारह साल हो जाएं।

स्त्री: नहीं होने पाएंगे ग्यारह साल.... इसी तरह चलता रहा सब-कुछ तो!

पुरुष एक: (एकटक उसे देखता, काट के साथ) नहीं होने पाएंगे सचमुच?... काफ़ी अच्छा आदमी है जगमोहन! और फिर से दिल्ली में उसका ट्रांसफर भी हो गया है। मिला था उस दिन कनॉट प्लेस में। कह रहा था, आएगा किसी दिन मिलने।

बड़ी लड़की: (धीरज खाकर) डैडी!

पुरुष एक: ऐसी क्या बात कही है मैंने? तारीफ ही की है उस आदमी की।

स्त्री: खूब करो तारीफ.... और भी जिस-जिस की हो कसे तुमसे। (बड़ी लड़की से) मनोज आज जो तुझसे कहता है यह सब, पहले जब खुद यहां आता रहा है, रात-दिन यहां रहता रहा है, तब क्या उसे नहीं पता चला कि...?

बड़ी लड़की: यह मैं उससे नहीं पूछती।

स्त्री: पर क्यों नहीं पूछती?

बड़ी लड़की: क्योंकि मुझे नहीं लगता है कि.... कैसे बताऊं, क्या लगता है? वह जितने विश्वास के साथ यह बात कहता है, उससे?... उससे मुझे अपने से एक अजब-सी चिढ़ होने लगती है। मन करता है... मन करता है, आसपास की हर चीज को तोड़-फोड़ डालूं। कुछ ऐसा कर डालूं जिससे...।

स्त्री: जिससे?

बड़ी लड़की: जिससे उसके मन को कड़ी-से-कड़ी चोट पहुंचा सकूं। उसे मेरे लंबे बाल अच्छे लगते हैं। इसलिए सोचती हूं, इन्हें जाकर कटा आऊं। वह मेरे नौकरी करने के हम में नहीं है। इसलिए चाहती हूं कहीं भी कोई भी छोटी-मोटी नौकरी ढूंढकर कर लूं। कुछ भी ऐसी बात जिससे एक बार तो वह अंदर से तिलमिला उठे। पर कर मैं कुछ भी नहीं पाती और जब नहीं कर पाती, तो खीझकर...।

स्त्री: यहां चली आती है?

बड़ी लड़की पल-भर चुप रहकर सिर हिला देती है।

बड़ी लड़की: नहीं।

स्त्री: तो?

बड़ी लड़की: कई-कई दिनों के लिए अपने को उससे काट लेती हूं। पर धीरे-धीरे हर चीज फिर उसी ढर्रे पर लौट आती है। सब-कुछ फिर उसी तरह होने लगता है जब तक कि हम.... जब तक कि हम नए सिर से उसी खाहे में नहीं पहुंच जाते। मैं यहां आती हूं...यहां आती हूं तो सिर्फ इसीलिए कि...।

स्त्री: तेरा अपना घर है यहा।

बड़ी लड़की: मेरा अपना घर ! हां। और मैं आती हूं कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूं कि क्या चीज है वह इस घर में जिसे लेकर बार-बार मुझे हीन किया जाता है!

(लगभग टूटते स्वर में) तुम बजता सकती हो ममा, कि क्या चीज है वह? और कहां है वह? इस घर की खिड़कियों दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुम में? डैडी में? किन्नी में? अशोक में? कहां छिपी है वह मनहूस चीज जो वह कहता है मैं इस घर से अपने अंदर लेकर गई हूँ? (स्त्री की दोनों बाहें हाथों में लेकर) बताओ ममा, क्या है वह चीज? कहां पर है वह इस घर में?

काफी लंबा वक्त। कुछ देर बड़ी लड़की के हाथ स्त्री की बांहों पर रूके रहते हैं और दोनों की आंखें लीन रहती हैं। धीरे-धीरे पुरुष एक की गरदन उनकी तरफ मुड़ती है। तभी स्त्री आहिस्ता से बड़ी लड़की के हाथ अपनी बांहों से हटा देती है। उसकी आंखें पुरुष एक से लिती हैं और वह जैसे उससे कुछ कहने के लिए कुछ कदम उसकी तरफ बढ़ाती है। बड़ी लड़की जैसे अब भी अपने सवाल का जवाब चाहती, अपनी जगह पर रूकी उन दोनों देख आंखें उधर से हटा लेता है और दो-एक पल असमंजस में रहले के बाद अनजाने में ही अखबार को गोल करके दोनों हाथों से उसकी रस्ससी बटने लगता है। स्त्री आधे रास्ते में ही कुछ कहने का विचार छोड़कर पल-भर अपने को सहेजती है। फिर बड़ी लड़की के पास वापस जाकर हल्के से उसके कंधे की छूती है। बड़ी लड़की पल-भर आंखें मूंदे रहकर अपने आवेग को दबाने का प्रयत्न करती है, फिर स्त्री का हाथ कंधे से हटाकर एक कुरसी का सहारा लिए उस पर बैठ जाती है। उसकी आंखें फिर एक बार पुरुष एक से मिल जाती है और वह जैसे आंखों से ही उसका तिरस्कार कर अपने को एक मोढ़े की स्थिति बदलने में व्यस्त कर लेती है। पुरुष एक अपनी जगह से उठ पड़ता है। अखबार की रस्सी अपने हाथों में देखकर कुछ अटपटा महसूस करता है और कुछ देर अनिश्चित खड़ा रहने के बाद फिर से बैठकर उस रस्सी के टुकड़े करने लगता है। तभी छोटी लड़की बाहर के दरवाजे से आती है और उन तीनों को उस तरह देखकर अचानक ठिठक जाती है।

4.4 मोहन राकेश एवं आधे अधूरे परिचय

4.4.1 मोहन राकेश: साहित्यिक परिचय- मोहन राकेश हिंदी साहित्य के अत्यंत प्रतिष्ठित रचनाकार हैं। 'नई कहानी' के प्रवर्तकों में उनका नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। यद्यपि उन्हें सर्वाधिक प्रसिद्धि उनके नाटकों से मिली, पर नाटकों के अलावा साहित्य की अन्य विधाओं (कहानी, उपन्यास, निबंध, संस्मरण, जीवनी, रिपोर्ताज, डायरी आदि) में भी उन्होंने सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई। नई कहानी की वृहत्रयी का निर्माण उनके बिना अधूरा है। मोहन राकेश, कमलेश्वर व राजेन्द्र यादव इसके महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', व 'आधे-अधूरे' जैसे नाटक इनकी शोहरत को बुलंदी तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मोहन राकेश एक बहुमुखी रचनाकार हैं जिन्होंने किसी एक विधा तक अपने को सीमित नहीं रखा।

मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी, 1925 को अमृतसर में एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। इनका मूल नाम मदनमोहन गुगलानी था। पिता श्री करमचंद गुगलानी पेशे से वकील थे जिनमें साहित्य व संगीत के प्रति गहरा आकर्षण था, जिसका प्रभाव बचपन में ही मोहन राकेश पर भी पड़ा। इनका बचपन अमृतसर में जंडीवाली गली में संयुक्त परिवार में बीता, जहाँ का

माहौल शोर-शराबे में भरा हुआ था। साथ ही घर में होने वाले कलह के चलते वचपन से ही ये अंतर्मुखी प्रकृति के थे। अल्पायु में ही पिता की मृत्यु से इन पर पारिवारिक भरण-पोषण का उत्तरदायित्व भी आ पड़ा। माँ का प्यार इनके जीवन को हर मोड़ पर सहारा देता रहा जो कि अत्यंत सहनशील, निश्चल, सौम्य व स्नेह से युक्त थी। माँ का प्रभाव इन पर इतना गहरा था कि ये आजीवन हर औरत में अपनी माँ के चेहरे की तलाश करते रहे। माँ का विश्वास इनके लिए सबसे बड़ा सम्बल था। माँ ही उनके जीवन में एक ऐसी व्यक्ति थी जिससे वह पूर्णतः संतुष्ट रहे। माँ की मृत्यु (16 अगस्त 1972) के तीन महीने पश्चात् ही मोहन राकेश (3 दिसम्बर 1973) ने भी दुनिया को अलविदा कह दिया। मानों माँ के बिना उनकी जिंदगी का कोई मतलब ही न हो। मोहन राकेश के व्यक्तित्व पर माँ की गहरी छाप थी।

राकेश की आरंभिक शिक्षा अमृतसर के हिन्दू कॉलेज में हुई। आगे चलकर लाहौर के ओरियंटल कॉलेज से उन्होंने 1941 में 16 साल की उम्र में शास्त्री की उपाधि ग्रहण की। इसके बाद अंग्रेजी में बी.ए. व सत्रह साल की उम्र में संस्कृत में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की, जिसमें इन्हें स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। भारत विभाजन के बाद जालंधर से इन्होंने हिंदी में एम.ए. किया जिसमें इन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया। पारिवारिक दुश्चिंताओं के बावजूद इन्होंने शिक्षा से अपना नाता नहीं तोड़ा। जीवनयापन के दौरान इन्होंने 1947 ई. में डी.ए.वी. कॉलेज जालन्धर में प्राध्यापक का कार्य किया। यहाँ से त्यागपत्र देने के बाद शिमला में 'विशप काटन स्कूल' में नौकरी की, पर यहाँ भी कुछ वर्ष रहने के उपरांत पुनः डी.ए.वी. कॉलेज, हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए। फिर त्यागपत्र देने के बाद सन् 1962-93 में 'सारिका' पत्रिका के संपादक रहे। 1964 में यहाँ से भी इस्तीफा देने के बाद कुछ समय तक दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। अंत में इन्होंने स्वतंत्र लेखन को चुना। आपने उपरोक्त विवरण के दरम्यान देखा कि मोहन राकेश ताउम्र इधर से उधर भटकते रहे, कहीं भी टिककर नहीं रह पाये। समझौता भाव इनकी प्रकृति के विपरीत था, जो भी व्यवस्था पसंद नहीं आयी, वहाँ से इस्तीफा देकर चल देते थे। त्यागपत्र मानों हमेशा उनकी जेब में रहता हो। वे ताउम्र एक घर की तलाश करते रहे। जहाँ सुकून के पल बिता सकें, उनकी इसी खोज ने उन्हें खानाबदोश की हैसियत में ला खड़ा कर दिया। उनके सम्पूर्ण साहित्य में घर की इस तलाश को देखा जा सकता है।

मित्रों का भरा-पूरा संसार अपने में समेटे मोहन राकेश का रचना संसार भी व्यापक फलक धारण किए हुए है। उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं को अपनी कलम से साधा और बाँधा। अनुवाद, संपादन, शोध-कार्य और पत्रकारिता में महत्वपूर्ण योगदान दिया। नाटकों ने इनकी प्रसिद्धि में बेतहाशा वृद्धि की। साथ ही मोहन राकेश नई कहानी आन्दोलन के प्रवर्तकों में से एक थे। इस आन्दोलन ने हिन्दी कहानी को एक नई दिशा प्रदान की। 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे-अधूरे' व 'पैर तले की जमीन' इनके बहुचर्चित नाटक हैं। 'अंडे के छिलके', 'सिपाही की माँ', 'प्यालियाँ टूटती हैं', 'बहुत बड़ा सवाल', 'शायद', 'रात बीतने तक', 'सुबह से पहले', 'उसकी रोटी', उनकी एकांकियों के नाम हैं। 'आखिरी चट्टान तक' इनका प्रसिद्ध यात्रा वृत्तान्त है। इनके उपन्यास हैं 'अंधेरे बंद कमरे (1961)', 'न आने वाला कल

(1968), और अंतराल (1972)। परिवेश (1967), 'बकलम खुद' (1974)। 'मोहन राकेश की साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि' (1975) इनके निबंधों का संग्रह है। डायरी व पत्र लेखन जैसी विधाओं पर भी इन्होंने साधिकार लिखा।

आपने उपरोक्त पंक्तियों में देखा कि मोहन राकेश की प्रसिद्धि का प्रमुख कारण उनके नाटक रहे। फिर भी तथ्य यह है कि वे कथा साहित्य और खासतौर पर नई कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। राकेश ने अपने लेखन की शुरुआत कहानी लेखन से की, जब सन् 1944 में 19 वर्ष की आयु में इन्होंने अपनी पहली कहानी 'नन्हीं' लिखी, जो मरणोपरांत प्रकाशित हुई। इनकी पहली प्रकाशित कहानी 'भिक्षु' (1946) को माना जाता है। इनकी कहानियों का पहला संग्रह सन् 1956 में 'इन्सान के खंडहर' नाम से प्रकाशित हुआ। बहुचर्चित कहानियों में 'मिस पाल', 'आर्द्रा', 'दोराहा', 'छोटी सी चीज', 'धुंधला द्वीप', 'मरुस्थल', 'भूखे', 'फौलाद का आकाश', 'एक ठहरा हुआ चाकू', 'क्वार्टर', 'आदमी और दीवार', 'उर्मिल जीवन', 'सेफ्टी पिन', 'पाँचवे माले का फ्लैट', 'एक और जिंदगी', 'सोया हुआ शहर', 'परामात्मा का कुत्ता', 'फटा हुआ जूता', 'जानवर और जानवर', 'गुंझल', 'मवाली', 'बनिया बनाम इश्क', आदि ध्यातव्य हैं।

4.4.2 आधे अधूरे: परिचय-

'आधे-अधूरे' आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रमुख नाटक है। इसकी रचना मोहन राकेश जी ने 1969 में की थी। अपने पूर्ण के नाटकों के विपरीत राकेश जी ने इसे आधुनिक जीवन समस्या पर केन्द्रित करके नाटक को लिखा। 'आधे-अधूरे' के केन्द्र में एक परिवार है। और परिवार मात्र एक बहाना है, क्योंकि उस परिवार के बहाने निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की जीवन समस्या पर प्रकाश डालना तथा उस पर हमें सोचने के लिए बाध्य करना ही नाटककार का उद्देश्य रहा है।

अभ्यास प्रश्न-

(क)- सही/गलत में जवाब दीजिए।

1. मोहन राकेश मूलतः पंजाब के रहने वाले थे। (सही/गलत)
2. आषाढ़ का एक दिन के रचनाकार जयशंकर प्रसाद है। (सही/गलत)
3. लहरों के राजहंस नाटक के रचनाकार भारतेन्दु हैं। (सही/गलत)
4. मोहन राकेश ने केवल नाटक लिखे हैं। (सही/गलत)
5. आधे आधरे नाटक के रचनाकार मोहन राकेश हैं। (सही/गलत)

(ख)- रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. आधे-अधूरे की स्त्री पात्र का नाम..... है। (बिन्नी/सावित्री/कमना)
2. पुरुष एक का नाम..... है। (महेन्द्रनाथ/ राकेश/जगमोहन)
3. आधे-अधूरे.....जीवन समस्या पर केन्द्रित नाटक है।(सामंती/ कबीलाई/आधुनिक)
4. बड़ी लड़की का नाम है। (निम्नी/बिन्नी/रचना)
5. नाटक की मूल समस्या है। (धनाभाव/अधूरापन/ हिंसा)

4.5 आधे-अधूरे: मूल्यांकन

4.5.1 आधुनिक जीवन के प्रश्न

आधुनिकता ने सामंतवाद से आगे जाकर एक नवीन दृष्टि का प्रतिपादन किया है -जिसे मोटे रूप में आधुनिक जीवन मूल्य कहा गया है। आधुनिक जीवन मूल्य से तात्पर्य ऐसी विचारप्रणाली व जीवन पद्धति से है जो समता, समानता एवं विश्व बंधुत्व की बात करता हो। इस दृष्टि से जहाँ कहीं भी जीवत-पद्धति में असमानताएँ मिलने लगती हैं वहाँ आधुनिक जीवन की विसंगति तीव्र गति से हमारे सामने दिखने लगती है। विसंगति, बिडम्बना, अंतर्विरोध, संत्रास जैसे पद आधुनिक जीवन की विसंगति ही हैं। 'आधे-अधूरे' नाटक आधुनिक जीवन विसंगति को केन्द्र में रख कर लिया गया नाटक है।

'आधे-आधूरे' की कथावस्तु के केन्द्र में नगरी-मध्यमवर्गीय परिवार व उनकी अतृप्त इच्छाएँ हैं। नाटक के केन्द्र में एक परिवार है। परिवार का प्रसार क्रमशः मध्यमवर्ग तक सिमट जाता है। मध्यमवर्गीय-पारिवारिक विघटन की सारी समस्याएँ जो 'नई कहानी' के केन्द्र में थीं, वह सब आधे-अधूरे में विस्तार-गहराई व तीव्रता से उठाई गई है। पारिवारिक विघटन नई कहानी के केन्द्र में था, आधे-अधूरे में वह विघटन और जटिल रूप धारण कर चुका है। यहाँ परिवार भी टूट रहा है लेकिन साथ भी है। लगाव, प्रतिबद्धताएँ भी नहीं हैं, लेकिन मजबूरी भी है। यानी सामाजिक जीवन की जटिलता अपने अधूरेपन में व्यंग्यात्मक रूप से व्यक्त हुई है। सभी पात्र आधे-अधूरे हैं। अधूरेपन का एहसास व उसकी नियति आधुनिक जीवन समस्या है। अधूरेपन को व्यक्त करने के लिए नाटककार ने वर्च्य विषय व वात्र चयन सब में प्रयोग किया है। सावित्री अधूरेपन का केन्द्रीय प्रतीक है। नाटक में अधूरेपन को व्यक्त करता संवाद देखिये- "पुरुष चार: असल बात इतनी ही है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल-दो साल बाद, तुम यही महसूस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है।..... क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है- कितना कुछ एक साथ होकर कितना-कुछ एक साथ पाकर और कितना- कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना-कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस-किसी के साथ भी जिंदगी शुरू करती, तु हमेंशा इतनी ही खाली, इतनी ही वेचैन बनी रहती।....." कह सकते हैं कि सावित्री का अधूरापन 'प्रक्षेपण' के माध्यम से व्यक्त किया गया है। सभी पात्र आधे- अधूरे हैं। इसलिए वे अपनी पूर्णता को दूसरों में खोजने का प्रयास कर रहा है।

4.5.2 चरित्र और समाज-

किसी भी समाज की गति-परिवर्तन का संकेत उसके चरित्रों के माध्यम से मिलता है। चरित्र निर्माण की रात इसीलिए किसी भी समाज में काम्य होती है, क्योंकि उसके बिना न तो समाज ऊपर उठ सकता है और न संस्कृति का संरक्षण ही हो सकता है। दूसरे शब्दों में चरित्र और समाज का संबंध अनिवार्य और परस्पर अन्योन्याश्रित है। इसी समझ के अनुसार साहित्य में चरित्रों की सृष्टि होती रही है। आदर्शवादी युग तक तो 'महनीय चरित्र' ही काम्य रहे लेकिन

आधुनिकता के आगमन के पश्चात यथार्थवादी चरित्रों की सृष्टि पर बल दिया जाने लगा। यथार्थवादी चरित्र अपने मूल रूप में 'आम आदमी' के करीब के चरित्र होते थे, जो प्रायः मनुष्य की मूल वृत्तियों से संचालित होते थे। क्रमशः इस प्रकार के चित्रण में भी क्रमशः दो वर्ग हो गये। एक प्रकार का चित्रण मनुष्य की संभावना और गतिशीलता को स्वीकार करता था तो दूसरे प्रकार का वर्ग मनुष्य के अवचेतन, मन, अतृप्ति यानी कुल मिलाकर सामाजिक दबाव तले जी रहे मनुष्य और उसकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं का ही चित्रण करता था। प्रथम प्रकार के वर्ग को प्रगतिशील या मार्क्सवादी पद्धति कहा गया तो दूसरे प्रकार के वर्ग को अस्तित्ववादी, व्यक्तिवादी या मनोविश्लेषणवादी। समझ की दृष्टि से किया गया विश्लेषण ही इस संदर्भ में हमारी मदद कर सकता है क्योंकि ये वर्गीकरण स्थूल रूप से किए गये हैं। इसके अतिरिक्त भी कई वर्गीकरण रहे हैं और कुछ ऐसे भी रहे हैं जिनमें परस्पर एक-दूसरे का मिश्रण भी हो गया है। नाटकीय चरित्र चित्रण विचारधारात्मक दबाव के बावजूद अपनी नाटकीय शर्तों की पूर्ति क्रम में अलग ही स्वरूप प्राप्त कर लेता है। नाटकीय चरित्र-चित्रण में इसीलिए एक ओर जहाँ पात्र अपने व्यक्तित्व के प्रकटीकरण के लिए विचार का आश्रय लेता है वहीं दूसरी ओर नाटकीय भंगिमाओं का भी.....। आधे-अधूरे नाटक की पात्र संख्या सीमित है। पात्रों में काले सूट वाला व्यक्ति, पुरुष एक, पुरुष दो, पुरुष तीन, पुरुष चार, स्त्री (सावित्री), बड़ी लड़की, छोटी लड़की, लड़का इत्यादि पात्र ही है। इस नाटक का मुख्य पात्र कौन है? नाटक की प्रस्तावना में नाटककार ने लिखा है- “नाटक अंत तक फिर भी इतना ही अनिश्चित बना रहता और यह निर्णय करना इतना ही कठिन होता है कि इसमें मुख्य भूमिका किसकी थी- मेरी, उस स्त्री की, परिस्थितियों की, या तीनों के बीच से उठते हुए कुछ सवालों की?” “स्पष्ट है यह नाटक परिस्थिति केंद्रित है, पात्र केंद्रित नहीं। पात्र इस नाटक में केंद्रित नहीं है, यह नाटककार के पात्र संयोजन से भी स्पष्ट हो जाता है। पुरुष एक (महेन्द्रनाथ), पुरुष दो (सिंघानिया) पुरुष तीन (जुनेजा), पुरुष चार (जगमोहन) के नाम से ही संबोधन है, हय व्यक्तित्वहीनता का चरम है। चरित्रों की प्रधानता की दृष्टि से बात करें तो सावित्री नाटक की प्रधान पात्र गहरती है क्योंकि अन्या सारे पात्र उसी की क्रिया- प्रतिक्रिया में विकसित होते हैं।

4.5.3 संवाद और देशकाल-

4.5.3.1 संवाद

नाटकीय संवादों की सर्वप्रमुख विशेषता यह होती है वह परिस्थितियों के दावपेंच को अभिव्यक्त कर पाने में सक्षम हो। दूसरी विशेषता नाटकीय संवाद की यह होती है कि वह चरित्रों के व्यक्तित्व- प्रकाशन में हमारी मदद कर पा रहा है या नहीं? जैसे महेन्द्रनाथ का संवाद उसके व्यक्तित्व को उजागर करता है। उकसे व्यक्तित्व की दिशाहीनता, ऊलजूलूलपन, निष्क्रियता और बेबसी को उसके संवादों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। जैसे- “ पुरुष एक: (कुढ़कर

लौटता) तेरी मां ने तुझसे पूछा है, तू उसी से बात कर। मैं इस मारे कभी पढ़ता ही नहीं इन चीजों में।

सोफे पर जाकर अखबार खोल लेता है। पर पल-भर ध्यान हो आने से कि वह उसने उलटा पकड़ रखा है, उसे सीधा कर लेता है।”

इसी प्रकार सावित्री या चरित्र उसके संवादों में बखूबी व्यक्त हुआ है। एक उदाहरण देखें-

“स्त्री: (थकान निकालने के स्वर में) ओह होह होह होह होह! (कुछ हताश भाव से) फिर घ में कोई नहीं। (अन्दर के दरवाजे की तरफ देखकर) किन्नी!..... होगी ही नहीं, जवाब कहाँ से दे? (तिपाई पर पड़े बैग को देखकर) यह हाल है इसका! (बैग की एक किताब उठाकर) फिर फाड़ लाई एक और किताब! जरा शरम नहीं कि रोज- रोज कहाँ से पैसे आ सकते हैं नई किताबों के लिए! (सोफे के पास आकर) और अशोक बाबू यह कमाई करते रहे हैं दिन-भर!.....

नाटक के संवादों की एक प्रमुख विशेषता उसकी संक्षिप्तता होती है। इस ढंग से नाटक के अधिकांश संवाद छोटे हैं..... छोटे संवादों के कारण नाटक ज्यादा व्यक्तित्व व देशकाल के गठन में सहायक हो सका है।

4.5.3.2 देशकाल-

नाटक के प्रारम्भ में ही देशकाल, परिवेश का संकेत कर दिया गया है। “मध्यवर्गीय स्तर से ठहकर निम्न-मध्यवर्गीय स्तर पर आया एक घर।” इस एक वाक्य से ही कथ्य- परिवार की आर्थिक स्थिति का संकेत कर दिया गया है। नाटक के निम्न- मध्यवर्गीय स्थिति की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए नाटककार ने लिखा है- “सब रूपों में इस्तेमाल होने वाला वह कमरा जिसमें उस घर के व्यतीत स्तर के कई टूटे अवशेष- सोफा-सेट, डाइनिंग टेबल, कबर्ड और डेसिंग टेबल आदि-किसी-न-किसी तरह अपने लिए जगह बनाए हैं। जो कुछ भी है, वह अपनी अपेक्षाओं के अनुसार न होकर कमरे की सीमाओं के अनुसार एक और ही अनुपात से है। एक चीज का दूसरी चीज से रिश्ता तात्कालिक सुविधा की माँग के कारण लगभग टूट चुका है। फिर भी लगत है कि वह सुविधा कई तरह की असुविधाओं से समझौता करके की गई है- बल्कि कुछ असुविधाओं में ही सुविधा खेजने की कोशिश की गई है। सामान में कहीं एक तिपाई, कहीं दो-एक मोढ़े, कहीं फटी- पुरानी किताबों का एक शेल्फ और कहीं पढ़ने की एक मेज-कुरसी भी है। गद्दे, परदे, मेजपोश और पलंगपोश अगर है, तो इस तरह घिसे, फटे या सिले हुए कि समझ में नहीं आता कि उनका न होना क्या होने से बेहतर नहीं था। ” लम्बे उद्धरण को प्रस्तुत करने का कारण यही था की इस बहाने पूरे नाटक की संरचना, व्यंग्य और परिवेश पर प्रकाश पड़ता है और नाटककार ने उसका संकेत पूर्ण में ही कर दिया है। नाटक के बीच-बीच में निम्न मध्यवर्गीय परिवार की विसंगति और बिडम्बना पर प्रकाश पड़ता रहा है। कामकाजी स्त्री का परिवार और नौकरी से संबंध, बेरोजगार पुरुष की समस्या, परिवार का विघटन, लड़के की दिशाहीनता और बच्चियों का भटकाव, स्त्री-पुरुष संबंध में तनाव व विखराव, आधे-अधूरे व्यक्तित्व व समाज की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। नाटक में विखराव तो दिखाया गया है।

अधूरेपन, टूटन-विखराव को इस युग की नियति के रूप में नाटककार ने अपनी स्वीकारोक्ति दे दी है, लेकिन उसके मूल कारणों की ओर संकेत करके उसने अपने लेखकीय दायित्व का निर्वहन भी कर दिया है।

4.5.4 नाटकीय- रंगमंचीय संदर्भ

‘आधे-अधूरे’ नाटक अपने कथ्य की नवीनता एवं रंगमंचीय प्रयोग दोनों दृष्टियों से चर्चित व लोकप्रिय हुआ था। हिन्दी नाटकीय परम्परा में एक ही व्यक्ति चार रोल करेगा (फिल्मी पात्रों की तरह), यह परिकल्पना पहली बार मोहन राकेश ने प्रस्तुत की थी। आधे-अधूरे के बाद कुछ प्रयोगशील नाटकारों (सुरेन्द्र वर्मा जैसे) ने इस प्रयोग को बखूबी निभाया। एक ही व्यक्ति कई रोल करेगा, यह तो फिल्मों में भी होता है, लेकिन एक ही व्यक्ति दूसरे के रोल क्यों करेगा? आधे-अधूरे में इस प्रश्न को उठाया गया है। काले सूट वाला आदमी, पुरुष एक पुरुष दो, पुरुष तीन एवं पुरुष चार जैसे निर्देश इसीलिए रखे गये हैं क्योंकि उनके नाम होने से भी कुछ फर्क पड़नेवाला नहीं था। क्योंकि व्यक्तित्व की दृष्टि से उनमें कोई अन्तर नहीं हैसभी आधे अधूरे हैं।

नाटककार ने प्रारम्भ में ही रंग-निर्देश व नाट्य निर्देश दे दिये हैं। पूरा नाटक एक कमरे को आधार बना करके मंचित हुआ है। इस संदर्भ में आवश्यक निर्देश नाटककार ने नाटक के प्रारम्भ में ही दे दिये हैं। इसी प्रकार बीच-बीच में नाटककार रंगमंचीय निर्देश देते चलता है जैसे रंग निर्देश का एक उदाहरण देखें- “ हलके अभिवादन के रूप में सिर हिलाता है जिसके साथ ही उकसी आकृति धीरे-धीरे धुंधलाकर कमरे में गुम हो जाती है। उकसे बाद कमरे के अलग-अलग कोने एक-एक करके आलोकित होते हैं और एक आलोक-व्यवस्था में मिल जाते हैं.....” इसी प्रकार नाटक के अंत में नाटककार द्वारा दिये गये रंग-निर्देश देखें- ” प्रकाश खंडित होकर स्त्री और बड़ी लड़की तक सीमित रह जाता है। स्त्री स्थिर आँखों से बाहर लड़की की तरफ देखती आहिस्ता से कुरसी पर बैड़ जाती है। बड़ी लड़की एक बार उकसी तरफ देखती है, फिर बाहर की तरफ। हल्का मातमी संगीत उभरता है , जिसको साथ उन दोनों पर भी प्रकाश मद्धिम पड़ने लगता है। तभी, लगभग अंधेरे में लड़के की बांह थामे पुरुष एक की धुंधली आकृती अंदर आती दिखाई देती है।

लड़का: (जैसे बैठे गले से) देखकर डैडी, देखकर.....।

उन दोनों के आगे बढ़ने के साथ संगीत

अधिक स्पष्ट और अंधेरा अधिक गहरा होता जाता है।

अभ्यास प्रश्न

4.6 सारांश

‘आधे-अधूरे’ आधुनिक जीवन की बिडम्बना एवं संत्रास पर केन्द्रित नाटक है। इस नाटक में समकालीन जीवन की टूटन, हताशा, पीड़ा को केन्द्र में रखकर देशकाल एवं परिवेश का निर्माण किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि-

- आधुनिक जीवन स्थितियाँ क्या है और उनका स्वरूप क्या है?
- मोहन राकेश की नाट्य कला से परिचय प्राप्त किया।
- आधुनिक मनुष्य के ऊपर परिस्थितियाँ कैसे प्रभावी होती जा रही है, इसको आप ने जाना।
- कामकाजी महिलाओं की समस्याओं से आपने परिचय प्राप्त किया।
- आधुनिक जीवन परिवेश को आपने जाना।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क)-

1. सही
2. गलत
3. गलत
4. गलत
5. सही

(ख)-

1. सावित्री
2. महेन्द्रनाथ
3. आधुनिक
4. बिन्नी
5. अधूरापन

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी नाटक संचयन (सं)- अंकुर, देवेन्द्र राज, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
2. हिन्दी नाटक नई परख (सं)- गौतम, रमेश, स्वराज प्रकाशन

4.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मोहन राकेश की नाट्यकला पर निबंध लिखिए।
2. 'आधे-अधूरे' नाटक में चित्रित समस्या पर प्रकाश डालिये।

इकाई 5 पृथ्वीराज की आँखें : पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूप रेखा

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 पाठ का उद्देश्य
- 5.3 लेखक एवं रचना परिचय
 - 5.3.1 लेखक परिचय
 - 5.3.2 रचना परिचय
- 5.4 पृथ्वीराज की आँखें: मूल पाठ
- 5.5 पृथ्वीराज की आँखें: मूल्यांकन
 - 5.5.1 कथ्य विश्लेषण
 - 5.5.2 पात्र संरचना और समाज
 - 5.5.3 संवाद की कीमियागिरी
 - 5.5.4 परिवेश और देशकाल का संदर्भ
- 5.6 सारांश
- 5.7 शब्दावली
- 5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 5.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

एकांकी नाटक जाति की विधा है। एक अंक के नाटक संस्कृत शास्त्रों में भी मिलते हैं, लेकिन एकांकी अपने मूल रूप में पश्चिमी साहित्य से होकर भारत में आया। समाचार पत्रों के बीच मची होड़ ने एकांकी विधा को जन्म दिया था। एक अंक वाले संक्षिप्त नाटक को ही बाद में एकांकी कहा जाने लगा। एक अंक के साथ ही सीमित पात्र, एक दृश्य इसकी अन्य विशेषता है। एक दृश्य होगा तो स्वाभाविक है कि मूल घटना भी एक ही होगी। अतः एकांकी की मूल शर्तों को ध्यान में रखकर एकांकी की सफलता-विफलता का मूल्यांकन किया जा सकता है।

रामकुमार वर्मा को हिंदी एकांकी का जनक कहा जाता है। इसका कारण क्या है? सर्वप्रथम तो इसका कारण यह है कि आप ने हिंदी साहित्य में एकांकी लेखन की विधिवत परम्परा प्राप्त की और दूसरे प्रमुख कारण यह कि आप की एकांकी का वर्ण्य-विषय क्षेत्र अन्य एकांकीकारों से व्यापक व बहुविध रहा है। वर्मा जी के एकांकी पर टिप्पणी करते हुए चन्द्रिका प्रसाद शर्मा ने टिप्पणी है: “डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपने एकांकियों में देशकाल और कार्य का संयोजन बड़ी कुशलतापूर्वक किया है। उन्होंने संकलनचय की ओर बराबर ध्यान दिया है। उनके पात्र अपने युग विशेष के अनुकूल रहते हैं। उनके एकांकी पात्र मनोरंजन के लिए नहीं हैं। वे सोदेश्य हैं। वे भारत के नवयुवकों और नवयुवतियों के समक्ष अपने देश के अतीत की गौरव-गाथाएँ प्रस्तुत कर उनको राष्ट्र-निर्माण की ओर उन्मुख करते हैं। उन्होंने ‘दीपदान’ की भूमिका में इस संदर्भ में लिखा है- ‘यदि आप मेरे नाटकों पर दृष्टि डालें तो आपको ज्ञात होगा कि मैंने सामाजिक नाटकों की अपेक्षा ऐतिहासिक नाटक अधिक लिखे हैं। इसका कारण एक राष्ट्र की संस्कृति में मेरा विश्वास है जिसका विकास करने में हमारे ऐतिहासिक महापुरुषों का विशेष हाथ रहा है। हमारे ऐतिहासिक तथ्यनिरूपण में हमारे वर्तमान जीवन को एक नैतिक धरातल मिलता है।”

5.2 पाठ का उद्देश्य

एम.ए.एच.एल- 202 की यह पॉचवीं इकाई है। यह इकाई ऐतिहासिक घटनाक्रम पर आधारित है। इस एकांकी को पढ़कर आप इतिहास को नये ढंग से पढ़ना सीख सकते हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- एकांकी विधा की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- नाटक और एकांकी के भेद को समझ सकेंगे।
- रामकुमार वर्मा के जीवन से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रामकुमार वर्मा के कृतित्व के बारे में जान सकेंगे।
- पृथ्वीराज की आँखे एकांकी के मूल पाठ से परिचित हो सकेंगे।
- इतिहास और साहित्य के अंतर्सम्बन्ध को समझ सकेंगे।

- आलोच्य एकांकी के बहाने इतिहास की एक बड़ी पूर्ति को एकांकी पूरा करता है।
- इतिहास में कल्पना का प्रवेश कराके संवेदना पैदा कराने का एकांकीकार का उद्देश्य रहा है।

14.3 लेखक एवं रचना परिचय

14.3.1 लेखक परिचय

डॉ. रामकुमार वर्मा जी का जन्म सन् 1904 ई. में सागर में हुआ था। कुमार नाम उनके बचपन का था। वर्मा जी के पिता की नौकरी में हमेशा स्थानान्तरण होता रहा, जिसके कारण आप के ऊपर विभिन्न संस्कृतियों का प्रभाव पड़ता रहा। बालकाल से ही आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। विभिन्न कलाओं और खेल-कूद में आप प्रारम्भ से ही अव्वल रहे। रामकुमार वर्मा जी की प्रारंभिक शिक्षा महाराष्ट्र, नरसिंहपुर और जबलपुर में हुई। प्रारंभिक काल में ही आपके ऊपर राष्ट्र प्रेम एवं संस्कृति औदात्य की भावना ने जन्म ले लिया था। राष्ट्रीय आन्दोलन में भी आप सक्रिय रूप से हिस्सेदारी करते रहे। इसी बीच आपका कास्य संस्कार भी जाग्रत होने लगा था। 1921 में आपकी प्रथम कविता प्रकाशित हुई थी। सन् 1925 में इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आपने प्रभाग विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। सन् 27 में आपने बी.ए. और 1929 में आपने एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1929 में ही आपका विवाह लक्ष्मी देवी जी के साथ सम्पन्न हुआ। 18 अगस्त, 1929 में डॉ. रामकुमार वर्मा प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्राध्यापक पद पर नियुक्त हुए। सन् 30-31 तक वर्मा जी की कई रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं। इस समय तक हिंदी साहित्य में आप लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे।

सन् 1938 में वर्मा जी का प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् आपकी रचनाएँ क्रमशः प्रकाशित होती रहीं। हिंदी के कई प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त आपको प्राप्त हुए। सन् 1991 में आपकी मृत्यु हुई। तब तक आपने हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण सेवा की।

14.3.2 रचना परिचय

डॉ. रामकुमार वर्मा का साहित्य संसार विस्तृत है। कविता, नाटक, एकांकी, इतिहास एवं आलोचना कई विधाओं में आपका लेखन रहा है। साहित्य की बहुविध प्रतिभा का परिचय हम उनके कृतित्व विस्तार से सहज ही देख सकते हैं। आइए हम उनकी प्रमुख रचनाओं का परिचय प्राप्त करें-

काव्य

1. वीर हम्मीर - 1933
2. चित्तौड़ की चिता - 1929
3. अभिशप - 1930
4. अंजलि - 1930

5.	निशीथ	- 1932
6.	रूपराथि	- 1933
7.	चित्ररेखा	- 1935
8.	चन्द्रकिरण	- 1937
9.	आधुनिक कवि	- 1939
10.	संकेत	- 1948
11.	आकाशगंगा	- 1949
12.	एकलव्य	- 1957
13.	कृतिका	- 1966
14.	ये गजरे तारों वाले	- 1935
15.	उत्तरायण	- 1967
16.	संत रैदास	- 1978
17.	ओ अहल्या	- 1985
18.	बलिबध	- 1990

नाटक

1.	शिवाजी	- 1945
2.	कोमुदी महोत्सव	- 1949
3.	विजय-पर्व	- 1954
4.	कला और कृपाण	- 1958
5.	अशोक का शोक	- 1967
6.	जौहर की ज्योति	- 1967
7.	सत्य का स्वप्न	- 1967
8.	महाराणा प्रताप	- 1967
9.	नाना फड़नवीस	- 1969
10.	सारंग-स्वर	- 1948
11.	पृथ्वी का स्वर्ग	- 1971
12.	जय बाङ्ला	- 1971
13.	अग्नि शिक्षा	- 1971
14.	संत तुलसीदास	- 1973
15.	जय आदित्य	- 1973
16.	जय वर्धमान	- 1974
17.	जय भारत	- 1975
18.	भगवान बुद्ध	- 1975
19.	समुन्द्रगुप्त पराक्रमांक	- 1978

20.	सम्राट कनिष्क	- 1978
21.	देवी श्री अहिल्याबाई	- 1980
22.	स्वयंवरा	- 1980
23.	अनुशासन-पर्व	- 1980
24.	मालव कुमार भोज	- 1981
25.	कुन्ती का परितोष	- 1983
26.	सरजा शिवाजी	- 1985
27.	कर्मवीर	- 1985
28.	वत्सराज उद्यन	-

एकांकी

1.	पृथ्वीराज की आँखे	- 1935
2.	रेशमी टाई	- 1941
3.	चारूमित्रा	- 1942
4.	शिवाजी	- 1942
5.	सप्त किरण	- 1947
6.	रूपरंग	- 1948
7.	कौमुदी महोत्सव	- 1949
8.	ध्रुवतारिका	- 1950
9.	रम्यदास	- 1950
10.	ऋतुराज	- 1951
11.	रजत रश्मि	- 1952
12.	दीपदान	- 1953
13.	रिमझिम	- 1955
14.	पांजजन्य	- 1957
15.	साहित्य एकांकी	- 1958
16.	मेरे सर्वश्रेष्ठ एकांकी	- 1958
17.	मयूर पंख	- 1965
18.	ललित एकांकी	- 1966
19.	इतिहास के स्वर	- 1969
20.	अमृत की खोज	- 1971
21.	खट्टे-मीठे एकांकी	- 1973
22.	बहुरंगी एकांकी	- 1982
23.	चित्र एकांकी	- 1983
24.	समाज के स्वर	- 1984

25. विचित्र एकांकी - 1987

आलोचनात्मक ग्रन्थ

1. साहित्य-समालोचनात्मक - 1930
2. हिंदी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन - 1941
3. विचार दर्शन - 1948
4. समालोचना समुच्चय - 1949
5. एकांकी कला - 1952
6. अनुशीलन - 1957
7. साहित्य चिंतन - 1965
8. कबीर एक अनुशीलन - 1963
9. कबीर बायोग्रैफी एण्ड फिलासफी (अंग्रेजी)

शोध-ग्रन्थ/इतिहास

1. कबीर का रहस्यवाद - 1931
2. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - 1938
3. संत कबीर - 1947
4. साहित्यशास्त्र - 1957
5. रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन - 1984

संस्मरण

1. हिम-हास - 1936
2. स्मृति के अंकुर - 1930
3. संस्मरणों के सुमन - 1982

संपादन कार्य

1. हिंदी गीत काव्य - 1932
2. कबीर पदावली - 1937
3. गद्य परिचय - 1942
4. आधुनिक काव्य संग्रह - 1945
5. आधुनिक हिंदी काव्य - 1945
6. गद्य गौरव - 1955
7. काव्यांजलि - 1955
8. काव्य कुसुम - 1965

9. सरज एकांकी नाटक - 1964
10. आक एकांकी नाटक - 1964
11. वरवै रामायण - 1967
12. हस्तलिखित हिंदी ग्रन्थों की विवरणात्मक सूची - 1953
13. संक्षिप्त सन्त कबीर - 1971

अभ्यास कार्य**क. रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए**

1. डॉ. रामकुमार वर्मा का जन्म ----- ई. में हुआ था। (1900/1904/1907)
2. डॉ. रामकुमार वर्मा का जन्म -----में हुआ था। (कलकत्ता/दिल्ली/सागर)
3. रामकुमार वर्मा ----- विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे। (दिल्ली/प्रयाग/हिन्दू)
4. रामकुमार वर्मा की मृत्यु ----- हुई। (1991/2000/1980)
5. “हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास” का प्रकाशन ----- में हुआ था। (1938/1940/1955)

ख. सही (✓)/गलत (ग) का चुनाव कीजिए।

1. चित्ररेखा रामकुमार वर्मा का प्रसिद्ध एकांकी है। ()
2. कौमुदी-महोत्सव की रचना विधा नाटक है। ()
3. रामकुमार वर्मा की ज्यादातर रचनाएँ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित है। ()
4. पृथ्वीराज की आँखे वर्मा जी का प्रथम एकांकी है। ()
5. कबीर का रहस्यवाद का प्रकाशन 1931 ई. में हुआ था। ()

5.4 पृथ्वीराज की आँखें: मूल पाठ**पृथ्वीराज की आँखे**

महाकवि चंद ने अपने ग्रंथ ‘पृथ्वीराज-रासो’ के छियासठ समयो (बड़ी लड़ाई समयो) में पृथ्वीराज का कैद होकर गौर जाना लिखा है। सरसठ समयो (बान-बेध समयो) में पृथ्वीराज की धनुर्विद्या का वर्णन और अंत में पृथ्वीराज के शब्द बेधी बाण को शहाबुद्दीन गोरी का बध होना लिखा है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर इस नाटक की रचना की गई है, पर ये सब बातें ऐतिहासिक सत्य से परे हैं,

पात्र-परिचय

पृथ्वीराज चौहान: दिल्ली और अजमेर का राजा

चंद: महाकवि और पृथ्वीराज का मित्र

शहाबुद्दीन गोरी: गोर का सुलतान (सन् 1992)

अखतर: सिपाही

काल: तराइन के युद्ध के उपरांत

सन्ध्या का समय। गोर के किले में पृथ्वीराज कैद हैं। वह पैतालीस वर्ष के प्रौढ़ व्यक्ति हैं। उनके शरीर से शौर्य अब भी फूट रहा है। चढ़ी हुई मूँछे और रोबीला चेहरा। उनके हाथ साँकलों से बँधे हैं। अब वह अपने घुटनों पर दोनों हाथ रखे हुए सिर झुकाए बैठे हैं। साँकल का एक छोर उनके पैरों तक लटक रहा है, जो हाथों के संचालन-मात्र से ही झूलकर शब्द करने लगता है। उनके बाल बिखरे हुए हैं। डाढ़ी बढ़ आई है। वस्त्र बहुत मैले हो गए हैं। कहीं-कहीं जलने के निशान भी पड़ गए हैं। घुटनों के पास फटा हुआ चूड़ीदार पाजामा है, जिस पर रक्त के धब्बे दिखाई पड़ रहे हैं, पैर में पुराना जूता है, जिस पर गर्द छा रही है। पृथ्वीराज आँखें बंद किए हैं। सामने खिड़की से हवा आ रही है, जिससे उनके बाल हिल रहे हैं। कुछ समय पहले थोड़ा पानी बरस चुका है, इसलिए वायु में कुछ शीतलता आ गई है।

दाहिनी ओर महाकवि चंद बैठा हुआ है। उसकी आयु पृथ्वीराज की आयु के लगभग है। उसके कपड़े साफ-सुथरे हैं। वेश में सादगी है, पर मुख पर दुःख की रेखाएँ अंकित हैं। वह पृथ्वीराज को करूणापूर्ण आँखों से देख रहा है। कुछ क्षणों तक दोनों स्थिर बैठे रहते हैं। फिर वेदना से सिहरकर पृथ्वीराज नीचे मुख किए ही, व्यथित स्वर में बोलता है। बोलने के साथ-साथ हिलने से साँकल बज उठती हैं,

पृथ्वीराज: मत पूछो। कुछ मत पूछो। जिस क्षण ने पृथ्वीराज को पृथ्वीराज न रहने दिया, उसकी-उस निर्दय क्षण की-बात मत पूछो। बड़ी कठिनाई से उस कष्ट को भूला सका हूँ। चंद! आखेट करते समय व्याघ्र के पंजे भी मुझे इस तीक्ष्णता से नहीं लगे। आह!(सिर झुकाकर सोचता है।)

चंद: (दयार्द्र होकर) महाराज, यह आपका शरीर, जिससे शौर्य पसीना बनकर बहा करता था, आज इतना निस्तेज है! क्या गोर के आदमी इतने निर्दय होते हैं! एक शक्तिशाली राजा के साथ इतना पशुत्व!

पृथ्वीराज: पशुत्व ! ओह, चंद ! यदि उस समय तुम होते, तो काँप जाते ! तुम्हारी लेखनी कुंठित हो जाती। मनुष्यता थर्रा उठती। आश्चर्य है, माता वसुंधरा यह सब कृत्य देखती रही ! और, इस पृथ्वीराज के शरीर पर इतना अत्याचार देख लेने पर भी वह माता कहला सकती है? कवि, घोषणा कर दो कि यह वसुंधरा माता नहीं, पिशाचिनी है !! (भावोन्मेष में काँपता है।)

चंद: महाराज !

पृथ्वीराज: (उसी भवावेश में) और यह हवा ! इस समय शरीर से लगकर सुख देना चाहती है, पर उस पर समय? पापिनी ! (घृणा-प्रदर्शन)

चंद: यह उन्माद !

पृथ्वीराज: (तीव्रता से) चुप रहो, चंद ! इतना कहने के बाद भी मैं जीवित हूँ, आश्चर्य है। भयंकर रात थी। प्रेयसी संयोगिता के बिना वह रात हबिशन बन गई थी। अंधकार जैसे मेरी ओर घूर रहा था, मेरी आँखों में घुसकर। इतने में चार मशालें दिखलाई दीं। उनकी लौ इधर-उधर झूम रही थी। जैसे अंधकार-रूपी काले दैत्य की जिह्वाएँ हों। (सोचते हुए) पाँच आदमी सामने आए। चार मशालची और एक उनका सरदार। सरदार के हाथ में एक छुरा था। वह बोला-कैदी, तेरी आँखें निकाली जाएँगी ! (शैथिल्य-प्रदर्शन)

चंद: यह धृष्टता ! (भौंहे सिकोड़ता है।)

पृथ्वीराज: (उसी स्वर से) मैंने कहा, कैद करने के बाद यह जुल्म ? मनुष्यता से रहना सीखा, खुदा के बंदो ! जान से मार डालो, पर एक राजा की इज्जत रहने दो। चंद, उसने कहा, चुप रह! (गहरी साँस लेता है।)

चंद: (तड़पकर) क्या कहा ? चुप रह ?

पृथ्वीराज: हाँ, यही कहा। दिल्ली और अजमेर को भौंह के संकेत से नचानेवाले चौहान को ये शब्द भी सुनने पड़े ! यदि दिल्ली में ये शब्द मेरे कानों में पड़ते, तो तो हाय, जवान लड़खड़ा रही है। बोला भी नहीं जाता।

चंद: (दुःख से) आह, आज महाराज पृथ्वीराज चौहान की यह दशा !

पृथ्वीराज: (अपने ही विचारों से) फिर फिर सबने मिलकर मुझे जोर से पकड़ लिया ! मेरे हाथ-पैर बँधे थे। मैं बिल्कुल असहाय था। चंद, उस समय जीवन में पहली बार-केवल पहली बार-मैंने अपनी आँखों को आँसुओं से भरा पाया!

चंद: (करुणा से) महाराज, आपका गला सूख रहा है, पानी पी लीजिए।

पृथ्वीराज: (चंद की बात सुनकर अपने ही विचारों में, मानों वह दृश्य उसकी आँखों में झूल रहा हो) दो गरम सूजे मेरी आँखों के पास लाए गए। मुझे उनकी गर्मी धीरे-धीरे पास आती हुई जान पड़ी। उस समय मुझे याद आया..... मुझे याद आया संयोगिता ने एक बार इसी प्रकार धीरे-धीरे अपने मुख को समीप लाते हुए इन्हीं आँखों का चुंबन लिया था। उस समय उन अधरों की मादकता मेरे पास इसी प्रकार धीरे-धीरे आती हुई जान पड़ी थी !

चंद: (चंचल होकर) अब आगे मत कहिए, मैं नहीं सुन सकूँगा

पृथ्वीराज: एक क्षण में उन्होंने उन गरम सूजों से मेरी पलकों को छेद डाला और मेरी पुतलियों को जलाकर

चंद: (अधीर होकर) अब न सुन सकूँगा यह क्रूरतापूर्ण अत्याचार !

पृथ्वीराज: (शांत होकर) अच्छा, मत सुनो। पर इतना जान लो कि जिन आँखों में संयोगिता की मूर्ति अंकित थी, वे आँख अब नहीं रहीं। जिन अतृप्त आँखों में सौंदर्य-सुधा-पान की मादकता थी, वे आँखें अब नहीं रहीं।

चंद: (दृढ़ता से) और जिन आँखों ने क्रूर दृष्टि से कितने ही राजाओं को निस्तेज कर दिया, जिन आँखों ने रक्त-वर्ण होकर रण-क्षेत्र में लोहा बरसा दिया, वे आँखें ?

पृथ्वीराज: वे आँखें ? उफ़, वे आँखें तो जयचंद के विश्वासघात की आग में जल गईं। कवि, क्या रेवा-तट के सत्ताईसवें समयों की याद दिलाना चाहते हो ? इस समय मेरे सामने तुम्हारा 'रासो' कवि की कल्पना का साधारण अभ्यास-मात्र है। अब तो यह शरीर वहा पृथ्वीराज चौहान नहीं रह गया।

चंद: महाराज

पृथ्वीराज: (क्रोध से) बार-बार मुझे महाराज क्यों कह रहे हो ? मैं एक कैदी हूँ। खसाँकल बज उठती है,

चंद: पर, मेर लिए नहीं। फिर आपका शरीर कैदी है, आत्मा ? मुझे विश्वास है, आपकी आत्मा कैद नहीं हो सकती। आप वही पृथ्वीराज चौहान है। उस समय आप भारत में थे, इस समय यहाँ शेर पिंजड़े में बंद रहने पर भी शेर ही कहलाता है। (गर्व की मुद्रा)

पृथ्वीराज: यदि शेर का शेर ही रखना चाहते हो, तो चंद, कहाँ है तुम्हारी तलवार ? फाड़ दो मेरा यह वृक्ष:स्थला। पृथ्वीराज के गौरव से धिरे हुए इस प्राणी को अब प्राण की आवश्यकता नहीं। इस जीवन का एक-एक क्षण तुम्हारी तलवार की धार से बहुत पैना है। (साँकल का शब्द) लाओ, अपनी तलवार !

चंद: तलवार ? वह तो मुहम्मद गोरी के हुक्म से दरवाजे पर ही मेरे हाथों से ले ली गई। मुझसे कहा गया कि मैं भीतर नहीं ले जा सकता। वह तो दरवाजे पर ही ले ली गई।

पृथ्वीराज: (दाँत पीसकर) ले ली गई? और हाथ ? वे भी गोरी ने नहीं काट लिए ? नीच ! नारकी ! (ठहरकर) चंद, तुम प्राण-हीन होकर मेरे पास आए हो। जानते हो, वीरों के प्राण का नाम है तलवार !

चंद: जानता हूँ, पर सुलतान का हुक्म।

पृथ्वीराज: सुलतान का हुक्म ? गोरी का ? और तुम उस हुक्म के आज्ञाकारी सेवक हो ?

चंद: (संभलकर) किंतु, किंतु यह कटार (छिपी हुई कटार निकालकर) मैंने अपनी आत्मा की तरह छाती में छिपाकर रक्खी है। मैं इससे अपना काम कर सकता हूँ। (तनकर खड़ा हो जाता है।)

पृथ्वीराज: (बड़ी प्रसन्नता से) मेरे अच्छे चंद महाकवि, मित्र प्यारे ! आओ ! मेरे जीवन की श्मशान के समान भयानक आग शांत कर दो। लाओ, तुम्हारा माथा चूमूँ हाथ, मैं देख भी नहीं सकता, तुम्हारा माथा कहाँ है !

चंद: महाराज ! विचलित न होइए। मैं चौहान की इस दैन्यावस्था में नहीं देख सकता, मैं अभी मृत्यु

पृथ्वीराज: (बात काटकर) हाँ, देर न करो। देर न करो। मेरे चंद, महाकवि,

चंद: महाराज, मैं देर न करूँगा। यह छुरी छाती में घुसकर शीघ्र ही इस दुःख से मुक्त कर देगी। लीजिए, चूमता हूँ यह कटार। (कटार चूमता है) लाइए, अंतिम बार आपके चरण स्पर्श कर लूँ। (चरण स्पर्श करता है) प्रणाम। मैं आप पर नहीं, अपने ही शरीर पर आघात करूँगा, क्योंकि मैं आपकी यह दशा नहीं देख सकता।

खकटार ऊपर तानता है,

पृथ्वीराज: (विचलित होकर) नहीं, नहीं।

खजंजीर बज उठती है,

मेरे चंद, यह नहीं हो

खचंद आत्मघात करना ही चाहता है कि पीछे से मोहम्मद गोरी निकलकर, हाथ रोककर, कटार छीन लेता है। गोरी पैंतीस वर्ष का युवक है। शरीर गठा हुआ। मूँछें तनी हुई। वह फौजी वेश में है। कमर में तलवार है,

गोरी: (हँसकर) हँअ, सरदार, जिंदगी इतनी नाचीज है ? यह दुनिया इसी तरह चलती है, और चलती रहेगी। तुम इतने मायूस क्यों होते हो ? और भोले सरदार ! क्या तुम जानते हो कि मेरे घर में क्या हो रहा है, इसका पता मुझे नहीं ? गोर का सुलतान दीवारों में अपनी दृष्टि रखता है।

चंद मलिन दृष्टि से गोरी को देखता है,

गोरी: (उत्साह से) पर वाह ! तुम कितने वफादार हो ! अपने मालिक की यह हालत न देख सकनेवाले सरदार ! अपनी वफादारी का इनाम माँगो।

ख्चंद चुप रहता है,

गोरी: कुछ नहीं ? बोलो ! अभी तो बोल रहे थे। अंधे का पैर चूम रहे थे। उसकी आँखे नहीं चूमते ? अहा, कैसी खूबसूरत हैं। (व्यंग-दृष्टि)

चंद: खूबसूरत ? उस शेर की आँखे उसके दिल में हैं।

गोरी: दिल में ? बहुत अच्छा यह शेर तुम्हें शायद उन्हीं आँखों से देख रहा है।

पृथ्वीराज, तू मुझे किन आँखों से देख रहा है ?

पृथ्वीराज: (स्थिर भाव से) गोरी, तू देखने लायक भी नहीं है। अपनी इन अंधी आँखों से अगर मैं देख सकता, तो भी मैं तुझे देखना पसंद न करता। अच्छा हुआ, तूने इनका उलेला ले लिया। (ठहरकर) मैं तुझे क्या देखूँ ? तू भूल गया, उस बार मेरे तीरों से तेरी टोपी उड़ी थी ! उस वक्त मैंने तुझे पूरी नजर से देखा था। जब तू मेरे सामने भागा था, तब मैंने तुझे पूरी नजर से देखा था। तू भूल गया ? मुझे दुःख है, सरदारों के कहने में आकर मैंने तेरा पीछा नहीं किया। मेरे तीर तेरे शरीर को न बेध सके ! (निराशा)

गोरी: (लापरवाही से) खैर, तेरे तीर न सही, मेरे मामूली सूजे तेरी आँखों को बेध सके। एक ही बात है, पर मेरे तीर

चंद: (बीच ही में) सुलतान, पृथ्वीराज के तीर-पृथ्वीराज आवाज पर तीर मारता है।

गोरी: (आश्चर्य से) आवाज पर ! मारता होगा, पर अब तो वह अंधा है।

चंद: सुलतान, आवाज पर तीर मारने के लिए आँख की जरूरत नहीं होती।

गोरी: (आश्चर्यपूर्वक) सच ?

चंद: बिलकुल सच। कल अपने अंधे वीर का यही तमाशा देखिएगा। यही मेरा इनाम समझें।

गोरी: (पृथ्वीराज की ओर देखकर) शाबाश कैदी, (चंद से) अच्छा चंद ! कल तुम्हारी खातिर इस अंधे की तीरंदाजी भी देख लूँगा। अच्छा, अब देर हो रही है। तुम मेरे साथ चल सकते हो। खुदखुशी पर तुमसे एक कहानी कहनी है। कैदी से मिलने का वक्त अब पूरा हो गया। अब एक मिनट भी नहीं।

चंद: यह बतलाना तो सिपाही का काम है, आपका नहीं। आप तो सुलतान हैं।

गोरी: तुम हमेशा मुझे सुलतान के बजाय सिपाही ही समझो, सिर्फ सिपाही। (दृढ़ता से खड़ा होता है।)

चंद: (पृथ्वीराज से) अच्छा, अब चलता हूँ प्रणाम महाराज पृथ्वीराज ! (प्रणाम करता है।)

गोरी: (व्यंग्य से) महाराज ('महा' पर जोर देकर) पृथ्वीराज ! (अट्टहास करता है) हा हा हा !
(जोर से) अख्तर !

ख्अख्तर सिपाही का मुस्तैदी से प्रवेश। पूरी वर्दी में तीस वर्ष का जवान ज्ञात होता है। आकर सलाम करता है,

गोरी: महाराज ('महा' पर जोर देकर) पृथ्वीराज की आँखों में आज रात को नींबू और मिर्च पड़ेगा। रात के ग्यारह बजे। कितने बजे ?

अख्तर: ग्यारह बजे।

गोरी: क्या ?

अख्तर: नींबू और मिर्च।

गोरी: हाँ, नींबू और मिर्च पड़ेगा। समझे ?

पृथ्वीराज: (दृढ़ता से उसी स्वर में) नींबू के रस में नमक मिलाना होगा, समझे !

गोरी: (मुस्कराकर सिपाही से) अच्छा, इसकी मुराद पूरी करो (पृथ्वीराज से) कैदी ! कल सुबह मिलूँगा। रात को अपनी आँखों में नमक-मिर्च डालकर आराम से सोना।

(तनकर खड़ा होता है।)

पृथ्वीराज: (व्यंग्य से मुस्कराकर) बहुत अच्छा बादशाह ! सलाम।

गोरी: चंद को साथ लेकर गोरी का गर्व से प्रस्थान। पृथ्वीराज स्थिर भाव से बैठा रहता है,

5.5 पृथ्वीराज की आँखें: मूल्यांकन

5.5.1 कथ्य विश्लेषण

डॉ. रामकुमार वर्मा जी की एकांकियों का कथ्य विषय प्रग्य: ऐतिहासिक भूमि बनी है। इस संदर्भ में उनके समकालीन जयशंकर प्रसाद जी की तरह ही वर्मा जी ने इतिहास और कल्पना के अंतर्संबंध का सृजनात्मक प्रयोग किया है। इतिहास पर लिखकर भी वर्मा जी ने इतिहास के ज्ञात प्रकाश में छेड़छाड़ नहीं की है, उन्होंने इतिहास के अज्ञात अंशों को अपनी कल्पना और सृजन तत्व से पूर्ण किया है। आपके इस प्रकार के एकांकी हैं- सम्राट उदयन पर अभियोग, रात का रहस्य, मर्यादा की वेदी पर, कौमुदी महोत्सव, सोने का वरदान, चारुमित्रा, वासवदत्ता, स्वर्णश्री, विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त पराक्रमांक, कृपाण की धार, कादम्ब या वित्र, समयचक्र, राज्यश्री, भाग्य-नक्षत्र, पृथ्वीराज की आँखें, तैमूर की हार, दीपदान, दुर्गावती, दीने इलाही, शिवाजी, अभिषेक, ध्रुवतारिका, औरंगजेब की आखिरी रात, सरजा शिवाजी, पानीपत की हार, नाना फड़नवीस, कलंक रेखा, वाजिद अली शाह इत्यादि।

'पृथ्वीराज की आँखें' एकांकी, महाकवि, चंद के ग्रन्थ 'पृथ्वीराज-रासो' के छियासठ समयों के आधार पर रचित है। सरसठ समयों में पृथ्वीराज कही धनुर्विद्या का वर्णन और अंत में पृथ्वीराज के शब्द बेधी बाण से शहाबुद्दीन गोरी का वध होना लिखा है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर इस नाटक की रचना की गई। पृथ्वीराज की मृत्यु, गोरी की मृत्यु के संदर्भ में ऐतिहासिक साक्ष्य का अभाव है। पृथ्वीराज के शब्द बेधी बाण से गोरी की मृत्यु हुई थी या नहीं ? स्पष्टतया इसे हम

नहीं कह सकते। एकांकी की भूमिका में ही एकांकी का समय निर्देश कर दिया गया है (तराइन के युद्ध के उपरांत)। स्पष्ट है कि युद्ध में पृथ्वीराज की हार तो इतिहास प्रसिद्ध है, किन्तु उसकी मृत्यु के संदर्भ में इतिहास मौन हैं हाँ साहित्य इस संदर्भ में हमें अवश्य संकेत करता है, जिस आधार पर आलोच्य एकांकी की रचना हुई है। विस्तार को ध्यान में रखते हुए 'पृथ्वीराज की आँखें' को छोटी एकांकी ही कहा जा सकता है इसमें गोरी की कैद में पृथ्वीराज की विवशता का वर्णन प्रमुखता से चित्रित हुआ है। पूर्वदीप्ति शैली में पृथ्वीराज का चन्द को अपनी आँख निकाले जाने की घटना का वर्णन है। चंद का गोरी से अपने ईनाम के रूप में पृथ्वीराज की शर-कुशलता का प्रदर्शन कराने को कहना भावी घटना का संकेत मात्र है। इस प्रकार पूर्व और भविष्य की घटनाओं के आधार पर एकांकी का कथ्य निर्मित किया गया है।

5.5.2 पात्र संरचना और समाज

प्रेमचन्द ने नहीं लिखा था कि कल्पना से गढ़े हुए पात्र में शक्ति नहीं होती है। यानी जीवन की उष्मा और ऊर्जा को धारण करने की योग्यता सजीव पात्रों में ही होती है। सांस्कृतिक-ऐतिहासिक पात्रों में सम्प्रेषण की अतिरिक्त ऊर्जा होती है, इसीलिए वे दीर्घजीवी बन पाते हैं। एकांकी का पात्र परिचय देते हुए लिखा गया है:

पात्र परिचय

पृथ्वीराज चौहान: दिल्ली और अजमेर का राजा

चंद: महाकवि और पृथ्वीराज का मित्र

शहाबुद्दीन गोरी: गोर का सुलतान (सन् 1992)

अरन्तर: सिपाही

काल: तराइन के युद्ध के उपरान्त

पात्र संरचना की दृष्टि से दो ही पात्र मुख्य रूप से हमारे सामने आते हैं। पृथ्वीराज और चंद माध्यम से एकांकी को संरचना प्रदान की गई है। पृथ्वीराज को एक वीर, प्रेमी युवक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। विगत काल की स्मृति और आधुनिक जीवन की पीड़ा के द्वन्द्व से उसके व्यक्तित्व का गठन किया गया है। पृथ्वीराज के इस चरित्र को निम्नलिखित संवाद के प्रस्तुत किया गया है:-

“पृथ्वीराज: मत पूछो। कुछ मत पूछो। जिस क्षण ने पृथ्वीराज को पृथ्वीराज न रहने दिया, उसकी-उस निर्दय क्षण की-बात मत पूछो। बड़ी कठिनाई से उस कष्ट को भूला सका हूँ।”

इसी प्रकार पृथ्वीराज चौहान के वीरत्व का संकेत करती पंक्ति देखें-

“पृथ्वीराज: यदि शेर को शेर ही रखना चाहते हो, तो चंद, कहाँ है तुम्हारी तलवार ? फाड़ दो मेरा यह वक्ष:स्थला पृथ्वीराज के गौरव से घिरे हुए इस प्राणी को अब प्राण की आवश्यकता नहीं।”

इसी प्रकार चंद को एकांकी में कवि, सहृदय, वीर एवं चतुर के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'प्रणाम' । मैं आप पर नहीं, अपने ही शरीर पर आघात करूँगा, क्योंकि मैं आपकी यह दशा देख

नहीं सकता। “इस प्रकार चंद के कवि रूप का संकेत भी लेखक ने एंकाकी के प्रारम्भ में ही कर दिया है। एंकाकी के एक अन्य पात्र गोरी को क्रूर, आतत्ययी के रूप में चित्रित किया गया है।

5.5.3 संवाद की कीमियागिरी

नाटक संवाद चरित्र, देशकाल और व्यक्तित्व को प्रकट करने की क्षमता से युक्त होने चाहिए। इस दृष्टि ‘पृथ्वीराज की आँखें’ अपनी संवाद-शैली के कारण नाटकीय गठन को अपने में लिए हुए है। जैसे एंकाकी का प्रारंभिक संवाद देखिए-

“पृथ्वीराज: मूल पूछो। कुछ मत पूछो। जिस क्षण ने पृथ्वीराज को पृथ्वीराज न रहने दिया, उसकी-उस निर्दय क्षण की-बात मत पूछो। “इस पर चन्द्र का प्रतिउत्तर देखें-

चंद्र: (दयाई होकर) महाराज, यह आपका शरीर, जिससे शौर्य पसीना बहकर बहा करता था, आज इतना निस्तेज है ! क्या गोर के आदमी इतने निर्दय होते हैं ! एक शक्तिशाली राजा के साथ इतना पशुत्व ! ”

उपरोक्त संवाद में एक और जहाँ पूर्व में पृथ्वीराज का शौर्य, उसकी परिस्थिति, गोरी की निर्दयता, पृथ्वीराज पर हो रहे अत्याचार इन सब का वर्णन लेखक ने कुछ-एक पंक्तियों में ही कर दिया है।

5.5.4 परिवेश और देशकाल का संदर्भ

डॉ. रामकुमार वर्मा जी ने काल का संदर्भ देते हुए लिखा है- ‘तराइन के युद्ध के उपरांत’ स्पष्ट है कि तराइन का द्वितीय युद्ध (जिसमें मुहम्मद गोरी की विजय और पृथ्वीराज चौहान की पराजय हुई थी) सन् 1192 में हुआ था। देशकाल-परिवेश का संकेत करते हुए एंकाकीकार ने लिखा है:

“खसन्ध्या का समय। गोर के किले में पृथ्वीराज कैद हैं। वह पैतालिस वर्ष के प्रौढ़ व्यक्ति हैं। उनके शरीर से शौर्य अब भी फूट रहा है। चढ़ी हुई मूँछें और रोबीला चेहरा। उनके हाथ साकलों से बँधे हैं अ बवह घुटनों पर दोनों हाथ रक्खे हुए सिर झुकाए बैठे हैं। सांकल का एक छोर उनके पैरों तक लटक रहा है, जो हाथों के संचालन-मात्र से ही झूलकर शब्द करने लगता है। उनके बाल बिखरे हुए हैं। डाढ़ी बढ़ आई है। वस्त्र बहुत मैले हो गए हैं। कहीं-कहीं जलने के निशान भी पड़ गए हैं। घुटनों के पास फटा हुआ चूड़ीदार पाजामा है, जिस पर रक्त के धब्बे दिखाई पड़ रहे हैं, पैर में पुराना जूता है, जिस पर गर्द छा रही है। पृथ्वीराज आँखें बंद किए हैं। सामने खिड़की से हवा आ रही है, जिससे उनके बाल हिल रहे हैं। कुछ समय पहले थोड़ा पानी बरस चुका है, इसलिए वायु में कुछ शीतलता आ गई है।

दाहिनी ओर महाकवि चंद बैठा हुआ हैं उसकी आयु पृथ्वीराज की आयु के लगभग है। उसके कपड़े साफ-सुथरे हैं। वेश में सादगी है, पर मुख दुःख की रेखाएँ अंकित हैं। वह पृथ्वीराज को करूणापूर्ण आँखों से देख रहा है। कुछ क्षणों तक दोनों स्थिर बैठे रहते हैं। फिर वेदना से सिहरकर पृथ्वीराज नीचे मुख किए ही, व्यथित स्वर में बोलता है। बोलने को साथ-साथ हिलने से साँकल बज उठती है,

5.6 सारांश

‘पृथ्वीराज की आँखें’ एकांकी का अध्ययन करने के पश्चात् आपने जाना कि-

- तराइन का युद्ध और उसका परिणाम क्या था।
- पृथ्वीराज चौहान के जीवन और उसके शौर्य से आप परिचित हुए।
- मुहम्मद गोरी के क्रूर व्यक्तित्व से आप परिचित हुए।
- इतिहास के परिवेश से आप परिचित हुए।
- एक विशेष कालखण्ड के इतिहास को आप समझ सकें

5.7 शब्दावली

तीक्ष्णता	- तीव्रता
शैथिल्य	- सुस्ती
सुधा	- अमृत
मायूस	- निराशा का भाव
शौर्य	- वीरता का भाव
सॉकल	- जंजीर
धृष्टता	- दुस्साहस
अतृप्त	- अधूरापन
निस्तेज	- बिना तेज के

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- 1) क -
 1- 1904
 2- सागर
 3- प्रयाग
 4- 1991
 5- 1938
- ख -
 1- गलत
 2- सही
 3- सही
 4- सही
 5- सही

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामकुमार वर्मा एकांकी रचनावली - (सं) शर्मा, डॉ. चंद्रिका
खण्ड - एक
प्रसाद, किताब घर, नई दिल्ली।

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. डॉ. रामकुमार वर्मा की एकांकी कला का विश्लेषण प्रस्तुत कीजिए।
2. 'पृथ्वीराज की आँखें' की समीक्षा कीजिए।

इकाई 6 हिन्दी निबन्ध साहित्य का स्वरूप एवं तात्त्विक विवेचन

इकाई की रूपरेखा

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 निबन्ध का अर्थ, तात्पर्य और स्वरूप
- 6.4 निबन्ध के प्रकार
- 6.5 निबन्ध : तात्त्विक विवेचन
- 6.6 सारांश
- 6.7 शब्दावली
- 6.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 6.9 अभ्यासों के उत्तर
- 6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे कि 'निबन्ध' शब्द का अर्थ एवं तात्पर्य क्या है ? इसका स्वरूप कैसा होता है? निबन्ध के तत्त्व कौन-कौन से हैं, तथा उनकी विवेचना कैसे की जाती है। इसके साथ ही आप यह भी जान सकेंगे कि निबन्ध लेखन, साहित्य की अन्य विधाओं से किस तरह भिन्न है।

'निबन्ध' साहित्य की एक ऐसी विधा है, जिसमें लेखक अपने मौलिक चिंतन तथा गम्भीर विचारों को तार्किकता के साथ कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। फ्रांसीसी विद्वान मॉन्तेन ने 1580 में व्यक्तिगत दशाओं को अभिव्यक्त करते हुए जिस विधा में लिखा था, उसे 'एस्साइ' की संज्ञा दी।

मॉन्तेन को आधुनिक निबन्ध का जन्मदाता माना जाता है; वे निबन्ध को विचारों, उद्धरणों और कथाओं का सम्मिश्रण मानते थे। भारत में हिन्दी 'निबन्ध' लेखन की परम्परा का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे -

- निबन्ध का अर्थ, तात्पर्य क्या है ?
- निबन्ध का स्वरूप कैसा होता है ?
- निबन्ध कितने प्रकार के होते हैं ?
- निबन्ध के प्रमुख तत्त्व कौन से हैं ?
- निबन्ध साहित्य अन्य विधाओं से भिन्न क्यों है।

6.3 निबन्ध का अर्थ, तात्पर्य एवं स्वरूप

शब्दिक अर्थ में 'निबन्ध' का अर्थ है- पूर्ण रूप से बँधा हुआ, अर्थात् एक ऐसी साहित्यिक विधा जिसमें लेखक द्वारा अपने मनोभावों एवं विचारों को सम्यक् रूप से एकत्र करके कलात्मक शैली में स्वच्छन्दतापूर्वक अभिव्यक्त किया जाता है। संस्कृत साहित्य में स्मृतियों की व्याख्याओं, तथा भोजपत्रों में लिखित मौलिक रचनाओं को सँवारकर ग्रथित करने या बाँधने के लिए 'निबन्ध' शब्द का प्रयोग मिलता है; किन्तु हिन्दी में इस अर्थ की दृष्टि से 'निबन्ध' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता। यद्यपि हिन्दी में निबन्ध शब्द परम्परा से आया; किन्तु अर्थ की दृष्टि से वह अंग्रेजी के 'एस्से' का पर्यायवाची है। अंग्रेजी का 'एस्से' शब्द, प्राचीन फ्रांस के 'एस्साइ' से बना; जो मूलतः लैटिन में 'एग्जाजियर' से व्युत्पन्न है; जिसका अर्थ है- निश्चिततापूर्वक परीक्षण करना।

विभिन्न विद्वानों के मत

यह तो आप जानते ही हैं कि किसी भी व्यक्ति, वस्तु अथवा विषय के संबंध में प्रत्येक व्यक्ति के अपने विचार और अपना दृष्टिकोण होता है, जो दूसरे से कुछ भिन्न होता है; यही कारण है कि निबन्ध के संबंध में भी विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। आइये जानें, किसकी दृष्टि में निबन्ध क्या है- फ्रेंच विद्वान मॉन्तेन ने निबन्ध के लिए 'ऐस्साइ' शब्द का प्रयोग किया है; उनके लिए यह निष्छल आत्माभिव्यक्ति का पर्याय है। वे कहते हैं- "मेरी इच्छा है कि मुझे सच्चे सीधे, सहज, साधारण रूप में ही जाना जाए; उसमें कोई लाग-लपेट, दिखावा-बनाना, छल-छंद, नकलीपन ना हो, क्योंकि अपने निबंधों में मैं स्वयं को चित्रित करता हूँ अथवा मैं स्वयं ही पुस्तक का विषय हूँ।" भारतीय विद्वान जयनाथ 'नलिन' ने निबन्ध को परिभाषित करते हुए लिखा है- "निबन्ध स्वाधीन चिन्तन और निष्छल अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाशन है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निबन्ध को गद्य की कसौटी मानते हैं। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा 'एस्से' के बताए गए लक्षणों के आधार पर वे, निबन्ध के विषय में कहते हैं- "निबन्ध उसी को कहना चाहिये, जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विषेषता हो।"

जॉनसन का मत है- "एस्से स्वच्छन्द मन की तरंग है, जिसमें विश्रृंखलता का प्राधान्य होता है।"

बाबू गुलाबराय निबन्ध को परिभाषित करते हुए कहते हैं- "निबन्ध उस गद्य रचना को कहना चाहिये, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विषेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव एवं सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।"

उपर्युक्त परिभाषाएं को पढ़कर आप यह जान ही चुके होंगे कि सभी विद्वानों ने निबन्ध के विषय में कुछ-न-कुछ विषेष बात अवश्य कही है। आइये, अब यह भी जानें कि हिन्दी साहित्य में निबन्ध लेखन का शुभारम्भ कब से हुआ, और हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार कौन-कौन हैं।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में जब भारत का संपर्क अंग्रेजी ज्ञान-विज्ञान से बढ़ने लगा, तब पाश्चात्य साहित्य की विविध विधाओं से प्रभावित होकर, अनेक भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों ने उनमें साहित्य सृजन करना प्रारम्भ किया। इन्हीं विधाओं में से एक विधा थी- निबन्ध; जो आज भी हिन्दी गद्य साहित्य का अभिन्न अंग है। हिन्दी 'निबन्ध' लेखन की परम्परा का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी में 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' से माना जाता है। उनके समकालीन लेखकों में पंडित बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का नाम उल्लेखनीय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, वासुदेवशरण अग्रवाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र, कुबेरनाथ राय, महादेवी वर्मा आदि साहित्यकारों ने हिन्दी निबन्ध लेखन को उत्कर्ष पर पहुंचाया। हिन्दी साहित्य जगत में शुक्ल युग को गद्य साहित्य के सर्वांगीण विकास का युग माना जाता है, इस युग के प्रवर्तक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल थे। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में 'निबन्ध' लेखन के

लिए चिंतन एवं विचार गाम्भीर्य एवं बोधगम्यता को आवश्यक तत्त्व मानकर, निबन्ध को परिभाषित करते हुए लिखा है- 'यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है, तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।...आधुनिक पाष्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिए, जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विषेषता हो। बात तो ठीक है, यदि ठीक तरह से समझी जाय। व्यक्तिगत विषेषता का यह मतलब नहीं कि उनके प्रदर्शन के लिए विचारों के श्रृंखला रखी ही न जाए, या जान-बूझकर जगह-जगह से तोड़ दी जाए; भावों की विचित्रता दिखाने के लिए ऐसी अर्थयोजना की जाए, जो उसकी अनुभूति के प्रकृत या लोकसामान्य रूप से कोई सम्बन्ध ही ना रखे, अथवा भाषा से सरकस वालों की-सी कसरतें या हठयोगियों के से आसान कराए जाएँ, जिनका लक्ष्य तमाशा दिखाने के सिवा और कुछ न हो।

अभ्यास प्रश्न

1. किसका कथन है-

“एस्से स्वच्छन्द मन की तरंग है, जिसमें विश्रृंखलता का प्राधान्य होता है।”

“यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है, तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।”

“निबन्ध स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकशन है।”

2. आइये, एक बार दोहराएँ -

1. हिन्दी निबन्ध लेखन का प्रारम्भ कब से माना जाता है ?
2. आचार्य शुक्ल निबन्ध का आवश्यक तत्त्व किसे मानते थे ?
3. भारतीय साहित्य में निबन्ध का प्रयोग किस अर्थ में मिलता है ?
4. एस्से शब्द की व्युत्पत्ति किस शब्द किस से मानी जाती है ?
5. हिन्दी गद्य साहित्य के सर्वांगीण विकास का युग किसे कहा जाता है ?

6.4 निबन्ध के प्रकार

वर्तमान समय में निबन्ध आत्मनिष्ठता से वस्तुनिष्ठता की ओर उन्मुख हुए हैं; यही कारण है कि आज वे केवल आत्माभिव्यक्ति का माध्यम नहीं रह गए हैं, वरन् उसका फलक अत्यन्त विस्तृत हो गया है। इस आधार पर निबन्धों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

1. व्यक्तिप्रधान निबन्ध
2. विषयप्रधान निबन्ध
3. ललित निबन्ध

1. व्यक्ति-प्रधान निबन्ध - निबन्ध का प्रमुख तत्त्व है- आत्मीयता; इसलिए व्यक्ति प्रधान निबन्धों में 'निज' अर्थात् आत्मतत्त्व की प्रधानता होना स्वाभाविक है। जब लेखक अपनी स्मृति में अंकित किसी भाव, घटना या बातचीत के किसी प्रसंग को श्रृंखलाबद्ध करके, उसे वैचारिक, अथवा भावात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है, तब व्यक्ति प्रधान निबन्ध का जन्म होता है। इस

प्रकार के निबन्धों में हमें लेखक के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। किसी भी व्यक्ति में भाव एवं विचार दोनों तत्त्व विद्यमान रहते हैं, इस आधार पर व्यक्ति प्रधान निबन्धों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

अ. भावात्मक

आ. विचारात्मक

इ. आत्मपरक

अ. भावात्मक निबन्ध -

जिनमें हृदय की प्रधानता रहती है, उन्हें भावात्मक निबन्ध कहते हैं। भावात्मक निबन्धों में हमें- कल्पना के विस्तृत आकाश में हृदय की उन्मुक्त उड़ान, भावनाओं की तीव्रता के साथ दिखाई देती है। हर्ष-विषाद, अनुरक्ति-विरक्ति, आकर्षण-विकर्षण हृदय के विविध उद्गार प्रयुक्त होते हैं। जब लेखक किसी परिस्थिति विशेष, घटना विशेष, अथवा अनुभव विशेष को भावावेग में कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है, तब ऐसी स्थिति में भावात्मक निबन्ध का जन्म होता है। भावात्मक निबन्धों में वाक्य छोटे, अनुभूति की गहनता तथा भावों की तीव्रता होती है। माधव प्रसाद मिश्र, पूर्ण सिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, डॉ. रघुवीर सिंह, गुलाबराय, आदि की गणना श्रेष्ठ भावात्मक निबन्धकारों में की जाती है। भावात्मक निबन्धों का चरम विकास हमें पूर्णसिंह जी के निबन्धों में दिखाई देता है। 'आचरण की सभ्यता' में वे मौन की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं- 'प्रेम की भाषा शब्द रहित है। नेत्रों की, कपोलों की, मस्तक की भाषा भी शब्द रहित है। जीवन का तत्त्व भी शब्द से परे है। सच्चा आचरण-प्रभाव, शील, अचल-स्थित-संयुक्त आचरण न तो साहित्य के लम्बे व्याख्यानों से गठा जा सकता है, न वेद की श्रुतियों के मीठे उपदेश से, न अंजील से, न कुरान से, न धर्म-चर्चा से न केवल सत्संग से।'

आ. विचारात्मक निबन्ध-

जिन निबन्धों में चिन्तन-पक्ष की प्रधानता रहती है, उन्हें विचारात्मक निबन्ध कहते हैं। वैचारिक पक्ष की महत्ता के कारण विचारात्मक निबन्धों में हमें तार्किकता तथा विश्लेषणात्मकता दिखाई देती है; जिससे हमें लेखक की अन्तःदृष्टि, चिन्तन-मंथन के साथ ही उसके दृष्टिकोण की नवीनता, तथा विश्लेषण करने की क्षमता का भी ज्ञान होता है। निबन्ध के विचारात्मक होने का तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें भावों की उपेक्षा की जाती हो, इसका अर्थ यह है कि विचारात्मक निबन्धों में भाव, विचारों के अनुवर्ती बनकर रहते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य का इतिहास में विचारात्मक निबन्धों को श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण माना है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास, नन्द दुलारे वाजपेयी, डॉ० नगेन्द्र, डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थवाल आदि के निबन्ध विचारात्मक निबन्धों के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। आधुनिक युग के निबन्धकारों में प्रमुख, शुक्ल जी के शिष्य डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थवाल ने अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'गाँधी और कबीर' में उन्होंने गाँधी जी के प्रति अपने चिन्तन को कौन-सी दिशा प्रदान की है, एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है- 'प्रार्थना में गाँधी जी का ध्यान निराकार सर्वव्यापी प्रभु की ओर रहता है। राम जिनको वो पूजते हैं, उनकी कल्पना

का है न तुलसी-रामायण का ना वाल्मीकि का। ईश्वर अवतार लेता है अवश्य, परन्तु उसी अर्थ में जिसमें प्रत्येक मनुष्य ईश्वर का अवतार है। कबीर का अनुसरण करते हुए गांधी सबके हृदयस्थ परमात्मा की ओर संकेत कर जन समाज के सामने महत्व का अभिनव मार्ग खोल रहे है।”

इ. आत्मपरक निबन्ध-

जिनमें भावात्मक एवं विचारात्मक दोनों प्रकार के निबन्धों की विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं, उन निबन्धों को आत्मपरक निबन्ध कहते हैं। आत्मपरक निबन्धों में लेखक के निज में विष्व को अपनी निजता का अनुभव होता है; क्योंकि इनमें लेखक अपने व्यंग्य-विनोद, सहज-सरल भाषा, मनमौजी व्यक्तित्व के साथ, पाठक को संवाद करता प्रतीत होता है। शान्तिप्रिय द्विवेदी, पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास निवास मिश्र आदि के निबन्ध आत्मपरक निबन्धों के सशक्त उदाहरण हैं।

2. विषय-प्रधान निबन्ध - विषय-प्रधान निबन्धों में ‘परात्मकता’ को अधिक महत्त्व दिया जाता है, अर्थात् विषय-प्रधान निबन्धों में वर्ण्यविषय की प्रधानता रहती है। निबन्ध की विषयवस्तु चाहे सामाजिक हो, अथवा राजनीतिक; आर्थिक हो या फिर सांस्कृतिक, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक आदि कुछ भी हो, किन्तु अच्छे निबन्ध के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है - उसकी प्रस्तुति। जब किसी विशिष्ट विषय की केवल शुष्क एवं वैचारिक विवेचना की जाती है तो वह निबन्ध न होकर, लेख बनकर रह जाता है; इसके विपरीत यदि लेखक किसी सामान्य विषय पर लिखते समय उसमें अपने मौलिक विचारों को अनुभवों से सजीवता व जीवन्तता प्रदान करता है, तो सहज ही वह निबन्ध बन जाता है। विषयप्रधान निबन्धों को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं-

(क) वर्णनात्मक

(ख) विवरणात्मक

क. वर्णनात्मक निबन्ध -

जब निबन्धकार अनुभूति, विचार, कल्पनातत्त्व तथा अभिव्यंजना कौशल के सहारे किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, अथवा प्रकृति आदि के स्थिर रूप का वर्णन करता है, तब वर्णनात्मक निबन्धों का जन्म होता है। वर्णनात्मक निबन्धों में विषयवस्तु का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है; किन्तु उसकी व्याख्या नहीं की जाती। माधव प्रसाद मिश्र का ‘रामलीला’ महावीर प्रसाद द्विवेदी का ‘प्रभात’, बालकृष्ण भट्ट का ‘महाकवि माघ का प्रभात वर्णन’ राहुल सांकृत्यायन का ‘गोमती की उपत्यका में बिखरे मंदिर’ आदि में हम वर्णनात्मक निबन्ध की विशेषताएँ देख सकते हैं। कलात्मक अभिव्यंजना, प्रवाहमयी भाषा; वर्णनात्मक निबन्धों को जीवन्तता प्रदान करती है। वर्णनात्मक निबन्धों में कल्पना-तत्त्व का भी समावेश रहता है, और चिंतन-पक्ष प्रायः गौण दिखाई देता है।

ख. विवरणात्मक निबन्ध-

इन्हें आख्यात्मक अथवा कथात्मक निबन्ध भी कहा जाता है; क्योंकि इस प्रकार के निबन्धों में लेखक किसी ऐतिहासिक घटना, काल्पनिक इतिवृत्त, पौराणिक आख्यान, उत्सव-मेले, पर्वतारोहण, अथवा दुर्गम प्रदेश की यात्रा का आश्रय लेकर निबन्ध लिखता है। विवरणात्मक निबन्धों में वर्ण्यविषय का रूप गतिशील दिखाई देता है; जिसे लेखक अपनी कल्पना से रंजित करके प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के निबन्धों में व्यंजनापूर्ण भाषा, तथा सामासिक शैली का प्रयोग मिलता है। राहुल सांकृत्यायन, रामधारी सिंह 'दिनकर' गुलाबराय आदि द्वारा लिखित इस प्रकार के अनेक निबन्ध मिलते हैं। गुलाबराय के निबन्ध 'आत्म-विश्लेषण' से एक उदाहरण दृष्टव्य है- "तुलसीदास की भाँति न तो मैं कभी छाछी को ललचाता रहा और न बड़े होने पर सौँधे दूध की मलाई को नखरे और नाराजगी से खाया - 'छाछी को ललात जे ते राम नाम के प्रसाद , खाद खुनसात सौँधे दूध की मलाई है ।' मैंने दूध का हर एक रूप में स्वागत किया है (सपरेटा को छोड़कर) । दूध मैंने गरम ही पीना चाहा है । असावधानी मेरा जन्मगत दोष है; क्योंकि बसंत से एक दिन पूर्व ही मैं इस संसार में आया, किंतु मैं उससे (दूध से) जला नहीं हूँ , इसलिए छाछ को फूंक-फूंक कर पीने की आवश्यकता नहीं पड़ी। जीवन में पर्याप्त लापरवाही रही।"

3. ललित निबन्ध-

ललित निबन्धों की सुदीर्घ परम्परा रही है। यूँ तो स्वतन्त्रता से पूर्व भी ललित निबन्ध लिखे गए, किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् हमें ललित निबन्धों का एक स्वतन्त्र एवं सुव्यवस्थित रूप दिखलाई देता है। जब निबन्धकार आत्मीयता और खुलेपन से कथ्य में निहित सौंदर्य को निखारता है, अर्थात् किसी भी मनःस्थिति अथवा भाव को अभिव्यक्त करने के लिए वह अपनी अनुभूतियों को निष्कलता एवं सरसता से पाठक के समक्ष रख देता है, तब ललित निबन्ध का जन्म होता है। आधुनिक युग के महत्त्वपूर्ण निबन्धकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ललित निबन्धों के माध्यम से सर्जनात्मक साहित्य की सरसता एवं सौंदर्य को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत है 'अशोक के फूल' से एक उदाहरण- "कहते हैं, दुनियाँ बड़ी भुलक्कड़ है। केवल उतना ही याद रखती है जितने में उसका स्वार्थ सधता है बाकी को फेंककर आगे बढ़ जाती है। शायद अशोक ने उसका स्वार्थ नहीं साधा। क्यों उसे वह याद रखती ? सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।" व्यंग्यात्मकता, कोमलकान्त पदावली, माधुर्य गुणयुक्त भाषा तथा गद्यात्मक लालित्य जैसी विलक्षणता से युक्त होने के कारण, इन्हें ललित निबन्ध कहा जाता है। ललित निबन्धकारों में हजारी प्रसाद द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त, सरदार पूर्णसिंह, सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', बनासीदास चतुर्वेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रभाकर माचवे, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथराय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। रामविलास शर्मा, अमृतराय नागर, गोपाल प्रसाद व्यास, हरिषंकर परसाई, शरद जोषी आदि हास्य-व्यंग्यकारों का भी ललित निबन्धों की विकासयात्रा में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। डा. नगेन्द्र ने ललित निबन्धों के विषय में लिखा है- "ललित निबन्ध का प्राणतत्त्व व्यक्तित्व का अभिव्यंजन ही है। रचना में

व्यक्तित्व की खोज, आत्मानुभूति की विवृति, और वैयक्तिकता का रागमय संस्पर्ष पाठक और विवेचक, दोनों जरूरी समझने लगे है।”

ललित निबन्धों का पल्लवन भावात्मक निबन्धों से बताते हुए डा. हरिमोहन ने लिखा है- “ललित निबंध का पल्लवन भावात्मक निबंधों से हुआ है। भावात्मक निबंधों की ही भाँति भावात्मकता, कल्पना प्रणवता, सरसता, रोचकता, पाण्डित्य और व्यापक ज्ञानस्रोत- ललित निबंध के लिए भी अनिवार्य है। ललित निबंध ‘व्यक्तिप्रधान’ व्यक्तित्व प्रधान अथवा व्यक्तिगत आत्मपरक लघु गद्यखण्ड है, जिसमें काव्यात्मक भाषा का प्रयोग होता है।”

आइये, अब हम एक निबन्धों के प्रकार एवं उनकी पहचान दोहराएँ -

अभ्यास प्रश्न

3. रिक्त स्थान की पूर्ति करें-

1.आख्यात्मक अथवा कथात्मक निबन्ध भी कहा जाता है।
2. आत्मपरक निबन्धों में.....दोनों प्रकार के निबन्धों की विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं।
3. परात्मकता को अधिक महत्त्व दिया जाता है।
4. लेखक के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप दिखाई देती है।
5. ललित निबंध का पल्लवन निबन्धों से हुआ है।

4. अपने शब्दों में लिखिये-

1. ‘निबन्ध’ किस भाषा का पर्यायवाची शब्द है ?
2. व्यक्ति-प्रधान निबन्ध से आप क्या समझते हैं ?
3. भावात्मक और विचारात्मक निबन्ध में क्या अंतर है ?
4. वर्णनात्मक और विवरणात्मक निबन्ध में क्या अंतर है ?
5. ललित निबन्ध की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं ?

6.5 निबन्ध : तात्त्विक विवेचन

स्वच्छन्दता, आत्मनिष्ठता, वैचारिकता, भावात्मकता, तार्किकता, विषयनिष्ठता, शृंगलाबद्धता, व्यंग्यात्मकता, कलात्मकता, जीवन्तता तथा संक्षिप्तता निबन्ध के प्रमुख तत्त्व हैं। स्वच्छन्दता - वैयक्तिकता के कारण निबन्ध लेखन में स्वच्छन्दता आना स्वाभाविक है; किन्तु स्वच्छन्दता का आशय विशृंखलता नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार - “निबन्ध लेखक अपने मन की प्रवृत्ति के अनुसार स्वच्छन्द गति से इधर-उधर फूटी हुई सूत्र शाखाओं पर विचरता हुआ चलता है, यही उसकी अर्थ सम्बन्धी व्यक्तिगत विशेषता है।.....निबंध लेखक जिधर चलता है, उधर अपनी संपूर्ण मानसिकता सत्ता के साथ अर्थात् बुद्धि तथा भावात्मक हृदय दोनों लिए हुए। जो करुण प्रकृति के हैं उनका मन किसी बात को लेकर अर्थ-सम्बन्ध-सूत्र

पकड़े हुए करुण स्थलों की ओर झुकता और गम्भीर वेदना का अनुभव करता चलता है। जो विनोदशील हैं उसकी दृष्टि उसी बात को लेकर उसके ऐसे पक्षों की ओर दौड़ती है, जिन्हें सामने पाकर कोई हँसे बिना नहीं रह सकता।”

आत्मनिष्ठता - निबन्ध में लेखक अपने व्यक्तिगत विचारों एवं हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति करता है। यह सत्य है कि निबन्ध की यात्रा आत्मीयता से प्रारम्भ हुई; किन्तु उसकी विकास-यात्रा विषयवस्तु की प्रेरणा से वैचारिक धरातल का आश्रय लेकर चलती रही। गद्य की अन्य विधाओं में लेखक अपने व्यक्तित्व को छिपा सकता है, परन्तु निबन्ध में वह चाहकर भी ऐसा नहीं कर सकता; क्योंकि आत्मनिष्ठता निबन्ध का एक अनिवार्य तत्त्व है। यही कारण है कि निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्व इस प्रकार भासित होता है- जैसे निर्मल जलाशय में आकाश।

वैचारिकता - गद्य की अन्य विधाओं- कहानी, उपन्यास, नाटक, संस्मरण, जीवनी आदि की अपेक्षा निबन्ध में बौद्धिकता की अधिक प्रधानता होती है। डॉ.शिव प्रसाद मिश्र लिखते हैं- “निबन्ध वही कहा जा सकता है जो विचारों को उत्तेजना दे।” यद्यपि व्यक्ति के अनुरूप निबन्धों में मनोविकारों का गुम्फन होता है किन्तु लेखक का ध्यान मात्र सरसता पर केन्द्रित नहीं होता। वह अपनी वैचारिक-शक्ति के माध्यम से, पाठक की ज्ञान पिपासा को भी जाग्रत करता है। निबन्ध लेखन के लिए वैचारिक क्षमता का होना नितान्त आवश्यकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विचारात्मकता को निबन्ध का आवश्यक तत्त्व मानते थे, यही कारण है कि उन्होंने अधिकांश निबन्ध विश्लेषणात्मक शैली में लिखे हैं। उदाहरणार्थ उनके ‘भय’ निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं- “भय की इस वासना का परिहार क्रमशः होता चलता है। ज्यों-ज्यों वह नाना रूपों में अभ्यस्थ होता जाता है, त्यों-त्यों उसकी धड़क खुलती जाती है। इस प्रकार अपने ज्ञान बल, हृदय बल और शरीर बल की वृद्धि के साथ वह दुःख की छाया मानो हटाता चलता है। समस्त मनुष्य-जाति की सभ्यता के विकास का भी यही क्रम रहा है।”

भावात्मकता - निबन्ध का एक प्रमुख तत्त्व है आत्मीयता; अर्थात् लेखक का व्यक्तिगत व्यक्तित्व। निबन्ध लेखन के लिए बुद्धितत्त्व के साथ भावतत्त्व का होना नितान्त आवश्यक है, भावतत्त्व के अभाव में निबन्ध लेख बनकर रह जाता है। निबन्ध में विचार होते हैं, किन्तु वे मस्तिष्क के शुष्क चिन्तन पर ही आधारित नहीं होते, उनके पीछे हृदय की तरल रागात्मकता भी होती है। मनोवैज्ञानिकता तथा गीतात्मकता के कारण निबन्धों में जिस सजीवता एवं सरसता के दर्शन होते हैं, वह भावात्मकता का ही परिणाम है। निबन्ध के भावात्मकता के विषय में डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त का कथन है- “निबन्ध में विचारों का प्रतिपादन करते हुए भी उसमें भावोत्तेजन की क्षमता होनी आवश्यक है। निबन्ध में भावोत्तेजना का यह गुण तभी आ सकता है, जब कि इनमें रचयिता के व्यक्तित्व का जीवित स्पर्श हो।”

संक्षिप्तता - आज के व्यस्त जीवन में व्यक्ति के पास इतना समय भी नहीं है कि वह स्वयं को समझ सके। ऐसी स्थिति में विस्तृत निबन्धों को पढ़ने के लिए समय निकालना असंभव प्रतीत होता है। यही कारण है कि वर्तमान काल में संक्षिप्तता निबन्ध का आवश्यक गुण प्रतीत होता है। निबन्ध में वैचारिक गहनता के साथ, सरसता एवं सारगर्भितता भी होनी चाहिये, जिससे कि

प्रतिपाद्य विषय को सहज ही पाठक तक पहुँचाया जा सके। संक्षिप्तता को निबन्ध का महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानते हुए बाबू गुलाबराय ने कहा है- “निबन्ध उस गद्य रचना को कहना चाहिये, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव एवं सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।”

तार्किकता - निबन्ध में विषयवस्तु के माध्यम से लेखक अपना दृष्टिकोण प्रकट करता है, इसे प्रकट करते हुए वह जिस शृंखलाबद्धता का सहारा लेता है वही निबन्ध की तार्किकता है। तार्किकता द्वारा लेखक अपने मौलिक विचारों को ऐसे प्रस्तुत करता है कि उसके विचारों से पाठक अभिभूत हो उठे। तार्किकता के अभाव में विषयगाम्भीर्य समाप्त हो जाएगा, और निबन्ध अपरिपक्व रचना बनकर रह जाएगी। इसके अतिरिक्त अपनी बात को पुष्ट करने के लिए, मीमांसा तथा दार्शनिक विषयों को स्पष्ट करने के लिए भी तार्किकता की आवश्यकता पड़ती है। अतः तार्किकता निबन्ध का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

कलात्मकता - कलात्मकता से तात्पर्य है - उसके प्रस्तुतिकरण से; प्रस्तुतिकरण, अर्थात् ऐसी भाषा एवं शैली का प्रयोग करना जो निबन्ध को सर्वग्राह्य बनाने के साथ, अपनी उत्कृष्टता, सरसता, प्रौढ़ता तथा लालित्य से पाठक को आदि से अन्त तक पढ़ने के लिए उसे विवश कर दे। उत्कृष्ट निबन्ध के लिए आवश्यक है कि उसकी भाषा-शैली अर्थात् उसका प्रस्तुतिकरण कलात्मक होना चाहिए, ताकि वह पाठक को अपने आकर्षणपाश में बाँधे रखे। कलात्मकता साधारण विषय को भी सुरुचिपूर्ण आकार प्रदान कर देती है। निबन्ध की श्रेष्ठता उसके अनुभूति पक्ष तथा अभिव्यक्ति पक्ष पर निर्भर करती है। अभिव्यक्ति पक्ष का संबंध रचनात्मक कला के सौंदर्य से है; और कलात्मक पक्ष के मुख्यतः चार अंग हैं - भाषा-शैली, अलंकार, ध्वनि, और औचित्य।

तारतम्यता - जब लेखक अपनी हृदयानुभूति को अथवा अपने विचारों को किसी एक विषय के माध्यम से शीर्षक, प्रस्तावना, विस्तार, तथा परिणाम के आधार पर विकसित करता है, तो उसमें आदि से अन्त तक तारतम्यता बनी रहती है। यदि निबन्ध में आरम्भ, मध्य और अन्त में संगति नहीं होगी तो वह मात्र प्रलाप बनकर रह जाएगा। निबन्ध का प्रारम्भ भूमिका द्वारा होता है; जिसमें लेखक विषय का संकेतात्मक परिचय देता है। निबन्ध के मध्य भाग में लेखक, विषय को अपने बौद्धिक विवेचन, भावनाओं, अनुभवों, व्यंग्यों तथा विवरण आदि के माध्यम से विस्तार देता है; तथा अन्ततः प्रभावोत्पादक भाषा-शैली के माध्यम से सम्पूर्ण विवेचन का निचोड़ प्रस्तुत करता है।

भाषा - सामान्यतः भाषा संप्रेषणीयता, अर्थात् अपनी बात को दूसरे तक पहुँचाने का सहज माध्यम है, किन्तु निबन्ध लेखन में भाषा का महत्त्व इससे कुछ अधिक है; क्योंकि इसमें निबन्धकार के लिए भाषा, केवल अपने भावों एवं विचारों को पाठक तक पहुँचाने का साधन मात्र नहीं होती। इसमें लेखक विषय को प्रभावशाली बनाने के लिए शब्द-चयन, वाक्य-रचना तथा भाषा में नवीनता लाकर निबन्ध को निखारने का प्रयास भी करता है। यही कारण है कि निबन्ध में हमें, कहीं सरल शब्द और छोटे वाक्य दिखाई देते हैं; तो कहीं कठिन शब्दों तथा

अनेक उपवाक्यों से मिलकर बने लम्बे वाक्यों का प्रयोग मिलता है। यह सत्य है कि निबन्ध की भाषा और शैली के माध्यम से ही हम, निबन्ध-लेखक के व्यक्तित्व से भी परिचित होते हैं; किन्तु निबन्ध की लोकप्रियता के लिए आवश्यक है कि उसकी भाषा ऐसी हो, जो विषयवस्तु को सहजग्राह्य बनाने में सफल हो सके।

शैली - प्रत्येक रचनाकार का व्यक्तित्व दूसरे से भिन्न होता है, यही कारण है कि एक लेखक की निबन्ध-शैली दूसरे से भिन्न होती है। इसके अतिरिक्त निबन्धकार अपने भावों एवं विचारों को जिस रूप में प्रस्तुत करता है, अभिव्यक्ति के उस तरीके को ही निबन्ध की शैली कहा जाता है। कुछ लोग अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए किसी लोकोक्ति-मुहावरे, दोहे-चौपाई, श्लोक, अथवा जीवन-अनुभवों के उदाहरणों का सहारा लेते हैं, तो कुछ सीधे-सपाट तरीके से अपनी बात कहते हैं; कुछ अपनी बात इतनी आत्मीयता से कहते हैं कि पाठक भी उस भाव-प्रवाह में बहता चला जाता है, और कुछ लेखक इतना गहन वैचारिक-विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं कि हम उनके चिंतन-मंथन और अंतर्दृष्टि का लोहा माने बिना नहीं रहते। निबन्ध बोधगम्य बन सके इसके लिए आवश्यक है कि निबन्धकार शब्द-चयन करते समय, तथा वाक्य-संरचना समय इस बात ध्यान रखे कि वे दुरूह व जटिल न हों; क्योंकि भाषा-शैली ही वह संजीवनी है जो निबन्ध को जीवन्तता प्रदान करती है।

गद्यात्मकता - उपर्युक्त तत्त्वों के अतिरिक्त निबन्ध का सर्वाधिक प्रमुख तत्त्व है - गद्यात्मकता; किन्तु केवल गद्यात्मक शैली में लिखे जाने से ही कोई रचना निबन्ध नहीं कही जा सकती। यद्यपि निबन्धों में उदाहरण स्वरूप किसी व्यक्ति के जीवन का उल्लेख हो सकता है, किन्तु लेखक का उद्देश्य उस व्यक्ति का जीवनचरित्र प्रस्तुत करना नहीं होता, इसलिए यह जीवनी से भिन्न है; निबन्ध में किसी स्थान विशेष की यात्रा का जिक्र भी हो सकता है, किन्तु यात्रावृत्तान्त प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य नहीं होता; इसी तरह निबन्धों में कहानी की रंजकता, नाटक की रमणीयता, संस्मरण की मधुरता तथा रेखाचित्र की चित्रात्मकता हो सकती है; किन्तु लेखक का उद्देश्य न कथा कहना, और न नाटक, संस्मरण या रेखाचित्र आदि लिखना ही होता है।

निबन्ध के जनक मोंतेन एवं सभी पाश्चात्य समीक्षकों, तथा हिन्दी के ग्रंथकारों-हजारीप्रसाद द्विवेदी बाबू गुलाबराय, जयनाथ नलिन आदि ने निबन्ध में व्यक्तित्व की प्रधानता को स्वीकार किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निबन्ध में आत्मनिष्ठता के साथ, विचार गाम्भीर्य और भाषा की सामासिकता को अधिक महत्त्व देते हैं। निबन्ध का उद्देश्य एक ओर मनोरंजन के साथ जनजागृति लाना या समसामयिक समस्याओं का उद्घाटन करना है, तो दूसरी ओर भाव एवं कल्पना का प्राधान्य होने के कारण कलात्मकता पाठक को आद्योपान्त पढ़ने के लिए विवश कर भी देती है। निबन्धकारों के एक वर्ग ने राचन्द्र शुक्ल की भाँति निबन्ध को गम्भीर विचार-प्रकाशक माना तो दूसरे वर्ग ने 'विनोदी तत्त्वों' को भी निबन्ध के लिए आवश्यक माना। बाबू गुलाबराय ने 'काव्य के रूप' में निबन्ध के अनेक तत्त्वों को समेटते हुए निबन्ध की एक सन्तुलित परिभाषा देते हुए लिखा है- "निबन्ध उस गद्य रचना को कहते हैं जिनमें एक सीमित आकार के

भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।”

डॉ. नलिन ने निबन्ध विषयक उपर्युक्त सभी परिभाषाओं का निचोड़ प्रस्तुत करते हुए ‘हिन्दी निबन्धकार’ में लिखा है- “किसी विषय पर स्वाधीन चिन्तन और निष्कल अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाशन ही निबन्ध है।”

अभ्यास प्रश्न

4. नीचे लिखे कथनों में से सही और ग़लत को छाँटिये -

- (क) निबन्ध का जनक मांतेन को माना जाता है। (सही/ग़लत)
- (ख) एस्से और निबन्ध के अर्थ में अन्तर होता है। (सही/ग़लत)
- (ग) निबन्ध में व्यक्ति की आत्मकथा होती है। (सही/ग़लत)
- (घ) निबन्ध गद्य-पद्य दोनों शैलियों में लिखे जाते हैं। (सही/ग़लत)
- (ङ) आत्मनिष्ठता निबन्ध का अनिवार्य तत्त्व है। (सही/ग़लत)

6. निबन्ध शब्द का अर्थ एवं स्वरूप स्पष्ट कीजिये।

.....

.....

.....

.....

7. निबन्ध कितने प्रकार के होते हैं ?

.....

.....

.....

.....

8. निबन्ध के प्रमुख तत्त्व कौन-कौन से हैं ?

.....

.....

.....

.....

9. निबन्ध के तत्त्वों से आप क्या समझते हैं, तथा उनका क्या महत्व है ? (दस पंक्तियों में उत्तर दीजिये)

.....

.....

.....

.....

.....

6.6 सारांश

इस इकाई को पढ़कर आप जान चुके हैं कि निबन्ध का अर्थ क्या है . साथ ही साथ आप ये भी जान चुके होंगे कि निबन्ध का तात्पर्य और उसकी प्रमुख परिभाषाएं क्या हैं । इसके साथ ही आपने यह भी जाना कि निबन्ध कितने प्रकार के हो सकते हैं, निबन्ध का स्वरूप क्या है तथा निबन्ध के तत्त्व कौन-कौन से हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप हिन्दी साहित्य के अंतर्गत निबन्ध विधा का सम्पूर्ण परिचय भी प्राप्त कर चुके हैं

6.7 शब्दावली

1.	आत्मनिष्ठ	-	अपने में लगा रहने वाला।
2.	बोधगम्यता	-	समझ में अपने लायक या जिसे आसानी से समझा जा सके।
3.	आकर्षणपाश	-	खिंचाव से बाँधकर रखना,
4.	विवरणात्मक	-	व्याख्या संबंधी
5.	वैयक्तिक	-	व्यक्तिगत अर्थात् जिसमें अपना सोच-विचार चिंतन दिखाई दे।
6.	विशृंखलता	-	बिखरा हुआ
7.	विश्लेषणात्मकता-		छान-बीन संबंधी
8.	लालित्य	-	रमणीयता
9.	आद्योपान्त	-	प्रारम्भ से अन्त तक
10.	दुरूह	-	कठिन
11.	आत्माभिव्यक्ति	-	अपने मनोभावों को प्रकट करना
12.	जटिल	-	उलझा हुआ
13.	सहजग्राह्य	-	आसानी से समझ आने वाला
14.	शृंखलाबद्धता	-	क्रम युक्त
15.	प्रभावोत्पादक	-	प्रभाव डालने वाला
16.	तारतम्यता	-	क्रमबद्धता
17.	तार्किकता	-	सुविचारित बात, चमत्कारपूर्ण कथन

18. तात्त्विक विवेचन - परीक्षण के आधार पर किसी तत्त्व के विषय में विस्तार से बताना

6.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त, गणपतिचन्द्र गुप्त
3. साहित्य सहचर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. साहित्य शास्त्र, डॉ. रामशरण दास गुप्ता, प्रो. राजकुमार शर्मा
5. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह
6. हिन्दी साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा

6.9 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. **किसका कथन है:-**
जॉनसन
रामचन्द्र शुक्ल
जयनाथ 'नलिन'
2. **आइये दोहराएँ -**
अ. उन्नीसवीं शताब्दी से।
आ. चिंतन, विचारगाम्भीर्य एवं बोधगम्यता।
इ. मौलिक रचनाओं को ग्रथित करने या बाँधने के लिए।
ई. लैटिन के एजाजियर से।
उ. शुक्ल युग से।
3. **रिक्त स्थानों की पूर्ति:-**
क. विवरणात्मक
ख. भावात्मक और विचारात्मक
ग. विषय-प्रधान
घ. व्यक्ति-प्रधान
ड. भावात्मक
4. **अपने शब्दों में लिखिये-**
(क) अंग्रेजी के 'एस्से'।
(ख) जिन निबन्धों में व्यक्ति की अर्थात् आत्मतत्त्व की प्रधानता होती है।
(ग) भावात्मक निबन्धों में भावों की प्रधानता होती है। वाक्य छोटे, तथा भाषा काव्यात्मक होती हैं। विचारात्मक निबन्धों में चिंतन की प्रधानता होती है, तथा भाव विचारों के अनुवर्ती बनकर रहते हैं।

(घ) वर्णनात्मक निबन्धों में वर्णविषय का रूप स्थिर, तथा विवर्णनात्मक निबन्धों में गतिशील दिखाई जाता है। वर्णनात्मक निबन्धों में विषयवस्तु का वर्णन विस्तारपूर्वक किया जाता है, और विवर्णनात्मक निबन्धों में उसकी व्याख्या की जाती है।

(ङ) ललित निबन्धों में लेखक अपने भावों एवं विचारों को निश्छलता एवं सरसतापूर्वक पाठक के समक्ष रख देता है। आत्मीयता के कारण इसकी भाषा में काव्यात्मक-सौंदर्य दिखाई देता है।

5. सही-गलत:-

- (क) सही, (ख) सही, (ग) गलत, (घ) गलत, (ङ) सही
6. निबन्ध का शाब्दिक अर्थ है- भलीभाँति बाँधना। निबन्ध एक ऐसी गद्य रचना है- जिसमें निबन्धकार किसी साधारण अथवा विशेष विषय पर अपने मौलिक चिंतन तथा गम्भीर विचारों को सोद्देश्य, कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है।
7. निबन्ध मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं- 1. व्यक्ति-प्रधान, और 2. विषय-प्रधान।

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निबन्ध का अर्थ बताते हुए, उसका तात्विक विवेचन कीजिये ?
2. हिन्दी साहित्य के अंतर्गत निबन्ध विधा का संक्षिप्त विवेचन कीजिए तथा निबन्ध का महत्त्व भी स्पष्ट कीजिए ?

इकाई 7 अन्य गद्य विधाओं का स्वरूप एवं तात्त्विक विवेचन - भाग 1

इकाई की रूपरेखा

- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 उद्देश्य
- 7.3 गद्य साहित्य: अर्थ एवं उसके विविध रूप
 - 7.3.1 साहित्य का अर्थ एवं स्वरूप
 - 7.3.2 परिभाषाएँ
- 7.4 विविध विधाओं का विश्लेषण
 - 7.4.1 आत्मकथा
 - 7.4.2 जीवनी
 - 7.4.3 आलोचना
 - 7.4.4 व्यंग्य
- 7.6 सारांश
- 7.7 शब्दावली
- 7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने जाना कि 'निबन्ध' शब्द का अर्थ एवं तात्पर्य क्या है? उसका स्वरूप कैसा होता है? निबन्ध के तत्त्व कौन-कौन से हैं, उनकी विवेचना कैसे की जाती है; तथा निबन्ध लेखन, साहित्य की अन्य विधाओं से किस तरह भिन्न है।

आप जानते ही होंगे कि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है; लेकिन क्यों, क्या कभी सोचा है? आइये हम आपको बताते हैं- मनुष्य स्वभावतः जिज्ञासु प्राणी है; यही कारण है कि पाषाण युग से विकास करते-करते आज वह उद्योग के क्षेत्र में भी निरन्तर विकास करता चला जा रहा है। विकास न कोई चमत्कार है, और न अनायास होने वाली कोई घटना; बल्कि आज वह एक प्रक्रिया है, जो मानव के बौद्धिक विकास का परिणाम है। यही कारण है कि धीरे-धीरे लेखक और पाठक दोनों की मनोवृत्तियाँ परिवर्तित हुईं, और नवीन प्रयोगों के प्रति उनकी अभिरुचि जाग्रत होने लगी। बौद्धिक और सामाजिक परिवर्तन के साथ ही, साहित्य का पारम्परिक स्वरूप भी परिवर्तित होता चला गया। यही कारण था कि कथासाहित्य के गर्भ में छिपे स्मारक साहित्य के बीज अपना स्वतन्त्र अस्तित्व तलाशने लगे; परिणामस्वरूप स्मारक साहित्य का जन्म हुआ और उसकी विविध शाखाएँ- संस्मरण, आत्मकथा, यात्रावृत्तान्त, व्यंग्य, रेखाचित्र आदि विकसित होकर फलने-फूलने लगीं।

इस खण्ड की अगली इकाई में आप, हिन्दी गद्यसाहित्य की अन्य विधाओं- डायरी, पत्र, यात्रावृत्तान्त, संस्मरण तथा रेखाचित्र का स्वरूप एवं इनके तात्त्विक विवेचन का अध्ययन करेंगे।

7.2 उद्देश्य

निबन्ध एवं अन्य गद्य विधाएँ, यह स्नातक प्रथम वर्ष, गद्य साहित्य का द्वितीय प्रश्न पत्र है। इसमें हम आपको गद्य साहित्य की अन्य विधाओं के स्वरूप, तथा उनके तात्त्विक विवेचन से परिचित कराएँगे। इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे :-

- गद्य साहित्य की प्रमुख विधाएँ कौन-कौन सी हैं।
- गद्य की अन्य विधाओं से क्या तात्पर्य है, तथा उनके नाम क्या हैं।
- आत्मकथा किसे कहते हैं।
- आत्मकथा का स्वरूप और उसका तात्त्विक विवेचन।
- जीवनी का अर्थ, स्वरूप और उसका तात्त्विक विवेचन।
- जीवनी और आत्मकथा में अन्तर; (हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा, तथा शरतचन्द्र की जीवनी के अंश के माध्यम से)।
- आलोचना का अर्थ; प्रमुख आलोचक और उनकी रचनाएँ।
- आलोचना का स्वरूप, और उसका तात्त्विक विवेचन।
- व्यंग्य का अर्थ; प्रमुख व्यंग्यकार और उनकी रचनाएँ।

अब तक आप हिन्दी गद्य साहित्य की विशिष्ट विधा निबन्ध के विशय में भलीभाँति जान गए होंगे। गद्य साहित्य की अन्य विधाओं के विशय में जानने से पहले आइये, यह भी समझ लें कि साहित्य शब्द का क्या अर्थ है, साहित्य हमें किस-किस रूप में उपलब्ध होता है, तथा गद्यात्मक साहित्य कितने प्रकार का होता है।

7.3 गद्य साहित्य: अर्थ एवं उसके विविध रूप

7.3.1 साहित्य का अर्थ एवं स्वरूप

सामान्यतः किसी भी विशय की जानकारी प्रदान करने वाली लिखित सामग्री को 'लिट्रेचर' कहा जाता है; और 'साहित्य' शब्द का प्रयोग हम अंग्रेजी के 'लिट्रेचर' शब्द के रूप में करते हैं। ऐसे में अक्सर हमारे मस्तिष्क में यह प्रश्न आता है कि आखिर साहित्य है क्या?

तो आइये, हम आपको बताते हैं- ऐसा लेखन जो जनहित के उद्देश्य से लिखा गया हो, जिसमें स्थायित्व हो, अर्थात् कृति का महत्त्व स्थायी बना रहे; जिसमें रचनाकार के व्यक्तित्व का प्रतिफलन हो अर्थात् उसकी विचारधारा, अनुभूति आदि का प्रकाशन हो, और जिसमें रागात्मकता हो अर्थात् लेखक अपने भाव, कल्पना, बुद्धि तथा रचनात्मक कौशल से पाठक के हृदय को आन्दोलित एवं आनन्दित करने में सफल हो जाए; उसे साहित्य कहा जाता है। साहित्य के विशय में अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रकट किए हैं, उनमें से प्रमुख लोगों की साहित्य संबंधी कथन इस प्रकार हैं-

संस्कृत साहित्य में 'साहित्य' की व्युत्पत्ति संबंधी दो मत मिलते हैं, पहला- 'हितेन सहितं साहित्यम्' अर्थात् जिसमें हित भाव निहित हो; और दूसरा- 'सहितस्य भावं इति साहित्यम्' अर्थात् जिसमें सहित का भाव निहित हो। हिन्दी-साहित्य-कोश में 'साहित्य' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा गया है- 'साहित्य' शब्द 'सहित' शब्द में यत् प्रत्यय के योग से बना है; जिसका अर्थ होता है- शब्द और अर्थ का सहभाव अर्थात् साथ होना।

7.3.2 परिभाषाएँ

'साहित्य-विज्ञान' में साहित्य कि सामान्य परिभाषा इस प्रकार निर्धारित की गयी है- "साहित्य भाषा के माध्यम से रचित वह सौन्दर्य या आकर्षण से युक्त रचना है, जिसके अर्थ-बोध से सामान्य पाठक को आनन्द की अनुभूति होती है।"

अरस्तु का कथन है- "शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत अनुकृति ही काव्य या साहित्य है।"

शैली के विचार से- "काव्य सर्वाधिक सुखी एवं हृदयों के श्रेष्ठतम क्षणों का लेखा-जोखा है।"

सिडनी का मत है- "काव्य या साहित्य वह अनुकरणात्मक कला है, जिसका लक्ष्य शिक्षा एवं आनन्द प्रदान करना है।"

कालरिज के अनुसार- "काव्य, रचना का वह विशिष्ट प्रकार है जिसका तात्कालिक लक्ष्य प्रसन्नता प्रदान करना होता है।"

साहित्य लेखन की मुख्यतः दो विधाएँ प्रचलन में हैं, पहली- पद्य; इसके अन्तर्गत- कविता, गीत, मुक्तक, खण्डकाव्य और महाकाव्य आते हैं; और दूसरी- गद्य, इसके अन्तर्गत-

कहानी, उपन्यास, निबन्ध तथा स्मारक साहित्य आते हैं। इनके अतिरिक्त एक और विधा भी है- जिसे मिश्रित साहित्य कहा जाता है अर्थात् ऐसा साहित्य जिसमें पद्य एवं गद्य दोनों का प्रयोग मिलता है, जैसे- नाटक, और चम्पू (संस्कृत साहित्य की विधा)।

हिन्दी में, गद्यात्मक साहित्य प्रमुखतः तीन रूपों का मिलता है- आख्यानात्मक, निबन्धात्मक और विश्लेषणात्मक। उपन्यास और कहानी आख्यात्मक साहित्य के अन्तर्गत आते हैं; निबन्धात्मक साहित्य के अन्तर्गत- भावात्मक, विचारात्मक, वैयक्तिक तथा वर्णनात्मक निबन्ध आदि, तथा यात्रा साहित्य, डायरी, पत्राचार, रिपोतार्ज, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, शब्दचित्र, एकांकी आदि आते हैं। विश्लेषणात्मक साहित्य के अन्तर्गत दो प्रकार का साहित्य आता है- पहला- समालोचनात्मक अर्थात् आलोचना साहित्य; और दूसरा- इनके अतिरिक्त गद्य में जो भी शेष रह जाता है, वह सब इसी के अन्तर्गत आता है।

अभ्यास प्रश्न 1

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति:-

1. हिन्दी में, गद्यात्मक साहित्य प्रमुखतः रूपों का मिलता है।
2. उपन्यास और कहानीसाहित्य के अन्तर्गत आते हैं।
3. समालोचनात्मक साहित्य.....साहित्य के अन्तर्गत आता है।
4. संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा.....साहित्य के अन्तर्गत आते हैं।
5. कहानी, उपन्यास, निबन्ध तथा स्मारक साहित्य..... के अन्तर्गत आते हैं।
6. जिस साहित्य में दोनों का प्रयोग मिलता है उसे.....कहते हैं।
7.संस्कृत साहित्य की विधा है।

7.4 विविध विधाओं का विश्लेषण

7.4.1 आत्मकथा

जब किसी रचना में साहित्यकार द्वारा अपने व्यक्तित्व का विवेचन-विश्लेषण किया जाता है, तब उसे आत्मकथा कहा जाता है। आत्मकथा में साहित्यकार अपने सम्पूर्ण जीवन की कथा को साहित्यिक रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि वह संस्कृति, इतिहास और साहित्य का अनूठा संगम बन जाती है। हिन्दी साहित्य-कोश में आत्मकथा को परिभाषित करते हुए लिखा है- “आत्मकथा लेखक के अपने जीवन से सम्बद्ध वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्त्व दिखलाया जाना सम्भव है।”

आलोचक शिप्ले ने आत्म-कथा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है- “यद्यपि आत्म-कथा और संस्मरण देखने में समान साहित्य स्वरूप मालूम पड़ते हैं, किन्तु दोनों में अन्तर है। यह अन्तर बल सम्बन्धी है। एक में चरित्र में बल दिया जाता है और दूसरे में बाह्य घटनाओं और वस्तु आदि वर्णनों पर ही लेखक की दृष्टि रहती है। संस्मरण में लेखक उन अपने से भिन्न

व्यक्तियों, वस्तुओं, क्रियाकलापों आदि के विशय में संस्मरणात्मक चित्रण करता है, जिनका उसे अपने जीवन में समय-समय पर साक्षात्कार हो जाता है।.....आत्म-कथा विशाल जीवन सामग्री की पृष्ठभूमि में से कुछ महत्वपूर्ण बातों को लेकर उनको व्यवस्थित ढंग से पाठकों के समक्ष रखता है या फिर अपनी अर्न्तदृष्टि से उनको संस्मरण रूप में प्रस्तुत करता है।”

हिन्दी साहित्य में ‘आत्मकथा’ लेखन की आरम्भ बनारसीदास जैन की 1641 में प्रकाशित पद्यात्मक रचना ‘अर्द्धकथानक’ से होता है; किन्तु गद्यात्मक रूप में इसकी प्रतिष्ठा आधुनिक युग में हुई। 1910 में सत्यानन्द अग्निहोत्री द्वारा रचित ‘मुझमें देव जीवन का विकास’, तथा 1917 में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित ‘जीवन-चरित्र’ इस विधा की प्रारम्भिक कृतियाँ हैं। आत्मकथा लेखन में रचनाकार पाठकों की रोचकता को ध्यान में रखते हुए, अपने जीवन की घटनाओं के साथ अपने मनोभावों, विचारों, चिंतन-मंथन, दर्शनादि को भी सम्मिलित कर देता है।

अभ्यास प्रश्न 2

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति :-

1.में साहित्यकार अपने सम्पूर्ण जीवन की साहित्यिक रूप में.....करता है।
2. आत्मकथाकार दुनिया केके साथ अपना एक रूपाकार अनुभव करता है।
3. सत्यानन्द अग्निहोत्री द्वारा रचितसन्.....प्रकाशित हुई।
4.और..... आत्मकथा की प्रारम्भिक कृतियाँ हैं।
5.की 1641 में प्रकाशित पद्यात्मक रचना का नाम..... था, जिसे हिन्दी साहित्य की..... प्रथम.....माना जाता था।

आत्मकथाकार दुनिया के साधारणजनों के साथ अपना एक रूपाकार अनुभव करता है, और वास्तव में इसी भावना से युक्त होकर ही आत्मकथा लेखन में सफलता पाई जा सकती है। हरिवंशराय बच्चन ने अपने इसी मनोभाव को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है- “इतने बड़े संसार में अपने को अकेला अनुभव करने से बड़ा बंधन नहीं। इतने बड़े संसार में अपने को समझने से बढ़कर मुक्ति नहीं।” बच्चन जी में लेखन प्रतिभा कब और कैसे जाग्रत हुई, इसके विशय में उन्होंने अपनी आत्मकथा ‘क्या भूलूँ क्या याद करूँ’ में बिना किसी लाग-लपेट के स्पष्ट रूप से लिखा है-

“स्कूल में एक हिन्दी-समिति थी। उसमें समय-समय पर हिन्दी में व्याख्यान होते, कविताएँ, कहानियाँ पढ़ी जातीं। निबन्ध पढ़े जाते। ऊँचे दर्जे के हिन्दी-प्रेमी विद्यार्थियों में उस समय ठाकुर यादवेन्द्र सिंह थे- रीवा के; बाद को उनकी कहानियों के दो संग्रह प्रकाशित हुए; पहले का नाम

‘हार’ था, जिससे मैंने अपने प्रथम काव्य-संग्रह ‘तेरा हार’ के नाम के लिए प्रेरणा ली थी; उनके दूसरे संग्रह की भूमिका मैंने लिखी थी, नाम इस समय ध्यान से उतर गया है। अपने जीवन के एक कटु प्रसंग पर उन्होंने दो भागों में ‘उषा बनाम प्रकाश’ नाम की एक पुस्तक छपाई थी, उसके कवर पृष्ठ पर मेरी ये पंक्तियाँ दी थी-

‘मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता,

शत्रु मेरा बन गया है छल-रहित व्यवहार मेरा।’-

ठाकुर विक्रमादित्य सिंह थे, जो छायावादी शैली में कविता लिखते थे, नाटक भी; उनके लिखे कई नाटक कायस्थ पाठशाला में अभिनीत हुए थे। उनके -‘ध्रुव’ नाटक में भगवान के स्वर में मैं ही पर्दे के पीछे से बोलता था, क्योंकि मेरा उच्चारण शुद्ध समझा जाता था; भगवान चतुर्भुजी रूप में मंच पर नहीं प्रकट हुए थे। भगवान के मंच पर आने के स्थान पर केवल उनकी वाणी सुनाई देना अधिक प्रभावकारी सिद्ध हुआ। उनके सुदामा नाटक के अभिनीत होने की भी मुझे याद है। खेद है कि विक्रमादित्य सिंह का लिखा कुछ भी प्रकाशित न हो सका, नहीं तो उसकी कविता और नाटकों का निश्चय ऐतिहासिक महत्व होता। मैंने अपनी हिन्दी की पहली कविता उन्हीं से शुद्ध कराई थी; उन्हीं से मैंने मात्रा ज्ञान पाया था- और थे श्री आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव जिनकी कविताओं का एक छोटा सा संग्रह ‘झाँकी’ या ‘अछूत’ के नाम से निकाला था, बाद को वे कायस्थ पाठशाला में अध्यापक हो गये थे। समिति की ओर से एक हस्तलिखित हिन्दी पत्रिका निकलती थी जिसका नाम ‘आदर्श’ था। मेरी लिखावट बड़ी साफ़-सुथरी थी-अक्षर मोती जैसे चुने। विश्राम तिवारी ने सिखाया था, ‘घन अक्षर बिड़र पाँती; यह आय लिखबे की भाँति’; मैंने भी शब्दों को बिड़र लिखने की रीति चलाई थी। ‘आदर्श’ में आए लेखों को सुन्दर लिपि में एकरूपता देने के लिए मुझ से समान आकार-प्रकार के कागजों पर नकल कराया जाता था। यह सब मेरे मौलिक लेखन के लिए अनजान तैयारी थी, आज मैं निःसन्देह कह सकता हूँ। मैंने कहीं पड़ा था कि एक यूनानी इतिहासकार ने अपनी शैली सुधारने के लिए अपने एक पूर्वज इतिहासकार का पूरा ग्रन्थ नकल कर डाला था। नकल अगर नकल के साथ की जाए तो नकल करना मौलिक लेखक की विचार-प्रक्रिया से होकर गुजरना है। इसके लाभों का सहज अनुमान नहीं किया जा सकता।

कायस्थ पाठशाला में ही मैंने अपनी पूरी हिन्दी कविता लिखी, किसी अध्यापक ने विदाभिनन्दन पर, जब मैं सातवीं में था। थोड़ी बहुत तुकबंदी मैंने ऊँचामण्डी स्कूल में ही शुरू कर दी थी। विश्राम तिवारी जब निबंध लिखते तब कहते, अन्त में कोई दोहा लिख देना चाहिए। विशय से सम्बन्ध दोहा याद न होने पर मैं स्वयं कोई रचकर लगा देता था। इन्हीं दोहो में मेरे काव्य का उद्गम हुआ। नवीं - दशवीं कक्षा में तो मैंने कविताओं से एक कापी भर डाली; ‘भारत-भारती से’ गुप्त जी की पद्यावली, ‘सरस्वती’ के पृष्ठों से पन्त जी की कविता और ‘मतवाला’ के अंकों से निराला जी के मुक्त छन्द से मेरा परिचय हो चुका था। पर मेरी वे कविताएँ इतनी निजी थीं कि जब मेरे एक साथी ने चोरी से उसे देख लिया तो मैंने गुस्से में पूरी कापी के टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दी। मेरे घर से गिरधारी के खेत तक कापी के टुकड़े फैल गये थे, इसका चित्र मेरी

आँखों के सामने अब भी ज्यों-का-त्यों है। कविताएँ मैंने आगे भी बिल्कुल अपनी और निजी बनाकर रखी, और मेरे कई साथी उनके साथ ताक-झाँक करने का प्रयत्न करते रहे।”

- हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा का अंश

आत्मकथा के प्रमुख तत्त्व - प्रामाणिकता, सत्यता, संयम, तटस्थता, औचित्य, भाषा की सरलता

अभ्यास प्रश्न 3

क) यह कथन किसका है :-

1. “इतने बड़े संसार में अपने को अकेला अनुभव करने से बड़ा बंधन नहीं। इतने बड़े संसार में अपने को समझने से बढ़कर मुक्ति नहीं।”
2. “शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत अनुकृति ही काव्य या साहित्य है।”
3. मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता,
शत्रु मेरा बन गया है छल-रहित व्यवहार मेरा।
4. “काव्य सर्वाधिक सुखी एवं हृदयों के श्रेष्ठतम क्षणों का लेखा-जोखा है।”

7.4.2 जीवनी

‘जीवनी’ शब्द अंग्रेजी के ‘बायोग्राफी’ या ‘लाइफ़’ का पर्याय है। हिन्दी में जीवनी के लिए ‘जीवन चरित’ या ‘जीवन चरित्र’ शब्द प्रचलित है। किसी विशय का कलात्मक तथा उद्देश्यपूर्ण वर्णन ही साहित्य है; इसलिये जब कोई साहित्यकार किसी व्यक्ति की जीवनी लिखता है, तो यह उस पर निर्भर करता है कि वह अपने जीवन परित नायक के सम्पूर्ण जीवन को ले अथवा उसके द्वारा किए गए विशिष्ट कार्यों को अपना वर्ण्यविशय चुने। सामान्यतः जीवनी में हमें, नायक द्वारा सम्पूर्ण जीवनकाल में किए गए कार्यों का वर्णन कलात्मक रूप में मिलता है। जीवनी साहित्य द्वारा हम व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व से सहज ही परिचित हो जाते हैं।

परिभाषाएँ :-

शिप्ले ने जीवन की परिभाषा बहुत कुछ इस प्रकार से दी है -“जीवनी किसी व्यक्ति विशेष की जीवन घटनाओं का विवरण है। अपने आदर्श रूप में वह प्रयत्नपूर्वक लिखा गया इतिहास है, जिसमें व्यक्ति-विशेष के सम्पूर्ण जीवन या उसके किसी अंश से सम्बन्धित बातों का विवरण मिलता है। यह आवश्यकताएँ उसे उक्त साहित्य विधा का रूप प्रदान करती है।”

जॉनसन ने जीवनी की परिभाषा देते हुए लिखा है कि- “जीवनीकार का लक्ष्य जीवनी की उन घटनाओं और क्रियाकलापों का रंजक वर्णन करना होता है जो व्यक्ति विशेष के बड़ी महानता से लेकर छोटी से छोटी घरेलु बातों तक से सम्बन्धित होती है।”

जीवनी की सरलतम परिभाषा “जीवनी का वर्णन” है। **इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिया** में जीवनी को “जीवन के क्रियाकलापों का उद्देश्यपूर्ण कलात्मक चित्रण तथा एक वैयक्तिक जीवन को साकार करना माना गया है।”

मार्क ही. चट ने लिखा है -“किसी खेल का सच्चा आनन्द उसके नियमों में बँधकर खेलने में ही है, उसी प्रकार जीवनी लेखन को भी सदा सत्य कहने का प्रयास करना चाहिए”

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत जीवनी विधा की परिभाषा देते हुए लिखा है कि- “जीवनी कथा वह साहित्य विधा है- जिसमें भावुक कलाकार किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन या उसके जीवन के किसी भाग का वर्णन परम सुपरिचित ढंग से इस प्रकार व्यक्त करता है कि उस व्यक्ति की सच्ची जीवनी गाथा के साथ-साथ कलाकार का हृदय भी मुखरित हो उठता है। ऐतिहासिक तथ्य लेखक की वैयक्तिक श्रद्धा या सहानुभूति से अनुप्राणित हो जाते हैं।”

जीवनी की विशेषताएं :-

1. उसमें चरित नायक के जीवन-तथ्यों को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
2. जीवनी में नायक की असफलताओं, विसंगतियों तथा उसके अवगुणों भी उजागर किया जाता है।
3. जीवनी में अनावश्यक विस्तार न होते हुए भी, नायक के जीवन का कोई भी महत्वपूर्ण पक्ष अछूता नहीं रहता।
4. इसमें लेखक का जीवन, और व्यक्तित्व पृथक तथा गौण रहता है।
5. नायक के जीवन की सम्पूर्ण घटनाओं की सूत्रबद्धता के कारण, इसमें स्वतः ही क्रमबद्धता आ जाती है।
6. जीवनी में तथ्यों के अन्वेषण तथा उनकी प्रस्तुति पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
7. जीवनी, अधिकांशतः महान् अथवा प्रसिद्ध व्यक्तियों की ही लिखी जाती हैं।
8. इसमें तथ्यात्मकता की प्रधानता तथा इतिहास के प्रति आग्रह होता है।
9. जीवन संबंधी तथ्यों के प्रति, सम्यक् रूप में वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है।
10. इसमें कल्पना का आश्रय, केवल टूटी हुई कड़ियों को जोड़ने तथा रोचकता लाने के लिये ही किया जाता है।
11. इसमें लेखक की तार्किकता अथवा बौद्धिक ईमानदारी के दर्शन होते हैं।

जीवनी का अंश:- (महात्मा गाँधी की प्रिय शिष्या - सरला बहन)

सरला बहन का जन्म पाँच अप्रैल उन्नीस सौ एक (5.4.1901) को प्रातःकाल ‘गुडफ्राइडे’ के दिन, लन्दन के एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ। उनका नाम ‘हैरी कैथरीन हाइलामैन’ रखा गया, किन्तु माता-पिता प्यार से उन्हें ‘केटी’ कहा करते थे। उनकी माताजी अंग्रेज़ थीं, तथा पिताजी का जन्म स्विटज़रलैंड में हुआ था। उनकी दादी वुर्टनबर्ग के ‘कॉलेबन’ की थीं, तथा दादा जी फ्राँस के निवासी थे। कालान्तर में वे सपरिवार इंग्लैंड आकर रहने लगे। परिवार में अनेक भाषाएँ बोली जाती थीं, अतः कैथरीन को विविध भाषाओं का ज्ञान होना स्वाभाविक ही था।

कैथरीन की माताजी अत्यन्त कर्मठ एवं स्नेहिल महिला थीं, तथा व्यवसाय से वे एक शिक्षिका थीं। उनके पिता स्वर्णकार थे। उनका एक भाई था, जिससे वह अगाध स्नेह किया करती थीं। जब वह मात्र सात वर्ष की थीं, तब दुर्भाग्यवश कैसर ने उनकी माँ को अपनी चपेट में ले लिया। इस तरह अल्पायु में ही उनके जीवन से माँ का स्नेहाकाश छिन गया। माँ की मृत्यु से पूर्व उनके घर का वातावरण अत्यन्त अनुषासित हुआ करता था। जब भी वह अपनी माँ के विशय में बातें

किया करती थीं, तो बरबस ही उनकी आँखें छलक जाया करती थीं। एक बार जब वह अस्वस्थ थीं, तब अपनी माँ के साथ व्यतीत किए हुए स्नेहिल क्षणों को याद करते हुए उन्होंने बताया- “जब मैं लगभग पाँच वर्ष की थी, एक बार मैं बहुत बीमार हुई। तब माँ रात-दिन मेरे सिरहाने पर बैठी, स्नेह से मेरे सिर पर हाथ फेरती रहती थी।”

उनके पिता एक जुझारू, परिश्रमी एवं कलात्मक अभिरुचि के व्यक्ति थे। यद्यपि व्यवसाय से वह सुनार थे, किन्तु आजीविका जुटाने के प्रति वे उदासीन रहे। उन्हें बागवानी करना रुचिकर लगता था। काष्ठकला में भी उनकी अभिरुचि थी, अतः उनके पास बढईगिरी के औजार भी थे। अतिरिक्त समय में वह अपने घर की टूट-फूट स्वयं ही ठीक कर लिया करते थे। सरला बहन कहा करती थीं- “माँ की मृत्यु के पश्चात पिताजी अपनी आजीविका कमाने के प्रति कुछ लापरवाह हो गए थे। अतः दादी को उसकी पूर्ति अपनी जीवनभर कमाई, जमा पूंजी से करनी पड़ती थी। उन्होंने हमारा पालन-पोषण बहुत स्नेह से किया। वह बहुत बूढ़ी थीं, किन्तु उनकी आत्मशक्ति प्रबल थी। हम दोनों भाई-बहिन एक ही कक्षा में पढ़ा करते थे, और दोनों ही पढ़ने में बहुत तेज थे। यही कारण था कि हमें हाई स्कूल में वजीफ़ा भी मिलने लगा था, जिससे हमारी पढ़ाई-लिखाई सुचारु रूप से चलने लगी। परिवार के प्रति पिताजी के उपेक्षापूर्ण एवं उदासीन व्यवहार से मुझे बहुत खिन्नता होती थी। यही कारण था कि मैंने अपने पैरों पर खड़े होने का निश्चय किया।”

अभ्यास प्रश्न 4

1. साहित्य किसे कहते हैं?
2. संस्कृत साहित्यविदों के मतानुसार साहित्य क्या है?
3. साहित्य-लेखन की कौन-कौन सी विधाएँ प्रचलित हैं?
4. गद्यात्मक साहित्य प्रमुखतः किन रूपों का मिलता है?
5. ‘हिन्दी-साहित्य-कोश’ में ‘साहित्य’ शब्द की व्याख्या करते हुए क्या कहा गया है?

7.4.3 आलोचना

आलोचना शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की ‘लुच्’ धातु से हुई है। ‘लुच्’ का अर्थ है- ‘देखना’; अतः आलोचना का अर्थ हुआ- देखना; अर्थात् किसी कृति की सम्यक् व्याख्या तथा उसका मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है। डॉ. श्यामसुन्दरदास ने ‘आलोचना’ शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है - “साहित्य-क्षेत्र ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है।”

आलोचना के उद्देश्य के विशय में बाबू गुलाबराय का कथन है कि- “आलोचना का मूल उद्देश्य कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद करके पाठकों को इस प्रकार के आस्वादन में सहायता देना, तथा उसकी रुचि को परिमार्जित करके साहित्य की गति निर्धारित करने में योग देना है।”

आलोचना के प्रकार - साहित्यिक आलोचना और वैज्ञानिक आलोचना

द्विवेदी-युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा उनके समकालीन समीक्षकों ने समालोचना ग्रंथों की रचना आरम्भ कर दी थी। छायावाद युग के समालोचकों, विशेषतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके द्वारा आरम्भ किए गए आलोचना साहित्य को सम्यक् रूप प्रदान किया। छायावाद के पक्ष-विपक्ष में पुस्तकों और निबन्धों के रूप में आलोचना का एक ऐसा रूप विकसित हुआ, जो भविष्य में लिखे जाने वाले आलोचना साहित्य की पूर्वपीठिका भी बना। हिन्दी की सैद्धान्तिक आलोचना का सही और स्तरीय रूप हमें 1920 में प्रकाशित बाबू गुलाबराय के 'नवरस'; श्यामसुन्दरदास के 'साहित्यालोचन'; विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के 'वाङ्मय विमर्श' और रामचन्द्र शुक्ल के 'काव्य में रहस्यवाद' आदि में दिखाई देता है। इन सभी आलोचकों द्वारा भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का मंथन करके, काव्यशास्त्र के विविध अवयवों का संतुलित रूप प्रस्तुत करने के कारण ही इन सभी को समन्वयवादी समालोचक माना जाता है। सैद्धान्तिक आलोचना के क्षेत्र में रामचन्द्र शुक्ल का नाम अग्रणीय है। नन्ददुलारे वाजपेयी ऐसे आलोचक थे जो वादग्रही नहीं थे, उन्होंने शुक्ल जी की भाँति वादों का एकतरफा खंडन नहीं किया, उनके मन में वादी तत्त्व काव्य के लिए उपादेय भी था। हजारी प्रसाद द्विवेदी विचारों के समीक्षक हैं। उनमें बोध और पांडित्य का अद्भुत समन्वय है। साहित्य के मूल्यों को बदलने तथा उन्हें नवीन मानवतावादी मूल्यों से जोड़ने में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। डा. नगेन्द्र रसवादी आलोचक है; उन्होंने हिन्दी आलोचना को व्यवहारिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टियों से संबद्धित किया है।

मार्क्सवादी आलोचकों में शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त, रामविलास वर्मा, अमृतराय तथा नामवर सिंह का नाम उल्लेखनीय है।

आदर्श आलोचक की विशेषताएँ:-

1. आलोचक का चिंतन और बोध, प्रौढ़ होना चाहिये।
2. वह कोरा काव्यशास्त्री न होकर ऐसा सांस्कृतिक चिंतक होना चाहिये, जो अपने युग को सही दिशा दे सके।
3. उसे रचना को केवल जीवन के एक संदर्भ में ही न देखकर, अपितु जीवन की समग्रता एवं परिपूर्णता के संदर्भ में देखकर उसका मूल्यांकन करना चाहिये।
4. उसे अपने उत्कृष्ट विचारों द्वारा जीवन और समाज में ऐसे वातावरण का निर्माण करना होगा, जो प्रतिभाशाली रचनाकारों को महान् साहित्य-सृजन की प्रेरणा दे सके।
5. आलोचक को साहित्य, समाज तथा संस्कृति का अधिकारी विद्वान होना चाहिये।

7.4.4 व्यंग्य

साहित्य की प्रकीर्ण/विविध विधाओं के अंतर्गत 'व्यंग्य साहित्य' की गणना की जाती है। सामान्यतः साहित्य की प्रत्येक विधा में किसी-न-किसी रूप में व्यंग्यात्मकता का समावेश रहता है; किन्तु आधुनिक युग में 'व्यंग्य साहित्य' ने स्वतंत्र विधा के रूप में अपना अस्तित्व बनाया है। अंग्रेजी 'सेटायर' से प्रभावित होकर भी हिन्दी के अनेक साहित्यकारों ने अपने विचारों एवं

समाज की विसंगतियों को अभिव्यक्त करने के लिए व्यंग्य विधा का सहारा लिया। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मुकरियों में हमें 'व्यंग्य' की छटा दिखाई देती है-

“एक बुलाएँ चौदह आवें, निज-निज बिपदा रोय सुनावें।

भूखे मरें भरे नहीं पेट, क्यों सखि साजन, नहीं ग्रेजुएटा।”

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात बालमुकुन्द गुप्त ने इस विधा में अनेक रचनाएँ कीं। उनके द्वारा लिखित व्यंग्य 'शिवशंभु का चिट्ठा' ने हिन्दी भाषा के जानकार अंग्रेजों को हिलाकर रख दिया। बालमुकुन्द गुप्त के इस व्यंग्य से प्रभावित होकर बरसाने लाल चतुर्वेदी, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, प्रभाकर माचवे, रवीन्द्रनाथ त्यागी, अमृतराय, केशवचन्द्र वर्मा, आदि ने भी अनेक व्यंग्यात्मक रचनाएँ लिखकर व्यंग्य विधा के विकास में अपना योग दिया।

1970-80 के दशकों में शरद जोशी का 'चिन्तन चालू है' कॉलम अत्यन्त लोकप्रिय रहा। अपनी रचना 'वैष्णव की फ़िसलन' में हरिशंकर परसाई ने पाखंडों के खंडन के लिए व्यंग्य का ही सहारा लिया है। बरसाने लाल चतुर्वेदी ने इसी विधा के माध्यम से पथभ्रष्ट राजनीतिज्ञों पर प्रहार किया।

अभ्यास प्रश्न 5

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति :-

1. आलोचना शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की धातु से हुई है।
2. 'वैष्णव की फ़िसलन' के रचनाकार..... हैं।
3. बालमुकुन्द गुप्त द्वारा लिखित व्यंग्य..... ने अंग्रेजों को हिलाकर रख दिया।

ख) यह कथन किसका है:-

1. “एक बुलाएँ चौदह आवें, निज-निज बिपदा रोय सुनावें।
भूखे मरें भरे नहीं पेट, क्यों सखि साजन, नहीं ग्रेजुएटा।” ये पंक्तियाँ किस रचनाकार की हैं?
2. “साहित्य-क्षेत्र में ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है।”

ग) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

1. आदर्श आलोचक की प्रमुख तीन विशेषताएँ क्या हैं?
2. साहित्य में 'आलोचना' से क्या तात्पर्य है?
3. पाँच आलोचकों के नाम लिखिये।

7.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि :-

- आधुनिक साहित्य की अन्य गद्य विधाओं का विकास आधुनिक काल के पश्चात शुरू हुआ।

- आत्मकथा साहित्य लेखक द्वारा स्वयं के आत्म विवरण एवं आत्म मूल्यांकन का प्रयास है।
- जीवनी विधा किसी लेखक द्वारा अन्य व्यक्ति के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालना है।
- किसी कृति के गुण दोष का परीक्षण कर उसका मूल्यांकन करना आलोचना है।
- व्यंग्य विधा सामाजिक विषमताओं पर प्रहार करने का सशक्त माध्यम है।

7.6 शब्दावली

- जीवनी - किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालने वाली विधा।
- आत्मकथा - अपने जीवन चरित्र पर प्रकाश डालने वाली विधा।
- विश्लेषण - किसी तथ्य, विचार के औचित्य - अनौचित्य पर विचार करना।
- आलोचना - किसी कृति के गुण-दोष पर विचार करने वाली विधा।

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

- क) 1. दो 2. गद्य 3. विश्लेषणात्मक साहित्य 4. निबन्धात्मक
5. आख्यात्मक 6. गद्य-पद्य, चम्पू 7. नाटक-चम्पू

अभ्यास प्रश्न 2

- क) 1. आत्मकथा, कथा, प्रस्तुत 2. गति के साथ
3. 1910, मुझमें देव जीवन का विकास
4. बनारसी दास जैन, अर्द्धकथानक, प्रकाशित, आत्मकथा

अभ्यास प्रश्न 3

- क) सभी कथन हरिवंशराय बच्चन के हैं।

अभ्यास प्रश्न 5

- क) 1. लुच् 2. हरिशंकर परसाई 3. शिवशंभु का चिह्न
ख) 1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 2. श्यामसुन्दर दास

7.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बिष्ट, डॉ. जगत सिंह, साहित्य सृजन के कुछ संदर्भ।

7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गद्य साहित्य से आप क्या समझते हैं? हिन्दी साहित्य की दो प्रमुख गद्य विधाओं का विवेचन प्रस्तुत करें।

इकाई 8 गद्य की अन्य विधाओं का स्वरूप एवं तात्त्विक विवेचन - भाग 2

इकाई की रूपरेखा

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- 8.3 स्मारक साहित्य: अर्थ, परिभाषाएँ एवं उसके विविध रूप
- 8.4 विविध विधाओं का विश्लेषण
 - 8.4.1 संस्मरण
 - 8.4.2 रेखाचित्र
 - 8.4.3 यात्रावृत्त
 - 8.4.4 डायरी
 - 8.4.5 पत्र
- 8.5 सारांश
- 8.6 शब्दावली
- 8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाइयों में आपने 'निबन्ध' शब्द का अर्थ एवं तात्पर्य; उसका स्वरूप; उसके तत्त्व एवं विवेचन पद्धति; तथा साहित्य की अन्य विधाओं से निबन्ध लेखन की भिन्नता को जाना है। इसके साथ ही आपने स्मारक साहित्य के विषय में तथा उसकी विविध विधाओं के विषय में भी जाना, विशेषतः आत्मकथा, जीवनी, आलोचना तथा व्यंग्य लेखन-शैली को विस्तार से जाना।

ब्रिटिश-शासन के आधिपत्य के कारण भारतीय समाज एवं संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति एवं विचारधाराओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था; क्योंकि साहित्य एवं समाज दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं, अतः हिन्दी साहित्य पर भी पाश्चात्य विचारकों की विचारधारा का प्रभाव पड़ा। जन्म एवं विकास प्रकृति का नियम है; समय के साथ-साथ हिन्दी गद्य-साहित्य रूपी वृक्ष भी विकसित, स्थिर एवं सुदृढ़ होता गया और उसके परिणामस्वरूप जन्म हुआ- 'स्मारक साहित्य' का; इसकी विविध शाखाएँ हैं- संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी, यात्रावृत्त, व्यंग्य, आलोचना, डायरी, पत्र, फ्रीचर, रिपोतार्ज, तथा साक्षात्कार।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :-

- हिन्दी गद्य साहित्य की अन्य विधाओं- संस्मरण रेखाचित्र डायरी, पत्र तथा यात्रावृत्त का अध्ययन करेंगे।
- हिन्दी गद्यसाहित्य की अन्य विधाओं के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- हिन्दी गद्यसाहित्य की अन्य विधाओं- संस्मरण रेखाचित्र डायरी, पत्र तथा यात्रावृत्त का तात्त्विक विवेचन कर सकेंगे।
- संस्मरण रेखाचित्र डायरी, पत्र तथा यात्रावृत्त के इतिहास एवं प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।

8.3 स्मारक साहित्य का अर्थ एवं परिभाषा

'स्मारक' का शाब्दिक अर्थ है- स्मृति पर आधारित कोई निर्मिति; अर्थात् जब हम किसी व्यक्ति अथवा किसी घटना विशेष की स्मृति में कोई रचनात्मक कार्य करते हैं, उसे स्मारक कहा जाता है। इस आधार पर स्मृति पर आधारित होने के कारण तथा वर्णन-पद्धति की कुछ विशिष्टताओं के कारण, गद्य साहित्य की नवीन विधाओं को 'स्मारक साहित्य' का नाम दिया गया।

साहित्य की प्रत्येक नवीन विधा का परिचय प्रायः पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही होता है। 'स्मारक-साहित्य' का अस्तित्व भी, सर्वप्रथम द्विवेदी युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं

चर्चित पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से ही सामने आया। परिवर्तित परिस्थिति, परिवेश एवं पर्यावरण का प्रभाव मनुष्य के मन और मस्तिष्क को अवश्य प्रभावित करता है। यही कारण है कि प्रथम स्वाधीनता संग्राम के पश्चात जब रचनाकारों के मनोमस्तिष्क में अनेक भाव व विचार अभिव्यास होने के लिए छटपटाने लगे तब गद्य साहित्य की विविध विधाओं का जन्म हुआ। 18वीं शताब्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं उनके मंडल के लेखक- ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दामोदर शास्त्री, तथा राधाकृष्ण आदि के 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में प्रकाशित धर्म, राजनीति, भाषा आदि संबंधी लेखों से हिन्दी गद्य लेखन का शुभारम्भ हो चुका था। 19वीं शताब्दी में निबन्ध लेखन के विकास के साथ हिन्दी गद्य का स्वरूप उत्तरोत्तर विकसित होता चला गया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की 'फूट डालो और राज करो' की नीति के विरुद्ध साम्प्रदायिक सद्भावना को बढ़ावा देने के लिए गद्य साहित्य- कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, के अतिरिक्त संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी, यात्रावृत्त, व्यंग्य, आलोचना, डायरी, पत्र, फीचर, रिपोर्ताज तथा साक्षात्कार आदि अनेक रूपों में लिखा जाने लगा। कालान्तर में इनमें से स्मृति पर आधारित साहित्य को 'स्मारक साहित्य' के नाम से विभूषित किया गया। स्मारक साहित्य को पारिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि 'जो साहित्य, मनुष्य की अपनी अथवा अपने संपर्क में आए हुए किसी अन्य व्यक्ति की अविस्मरणीय अतीत अथवा वर्तमान की अनुभूतियों से संबंधित घटनाओं के बिम्ब प्रस्तुत करता हो, उसे स्मारक साहित्य कहते हैं।' स्मारक साहित्य की विशेषताएँ- साहित्य लेखन में प्रत्येक विधा की अपनी विशेषताएँ होती है, और उसकी वही विशेषताएँ उसे साहित्य की किसी अन्य विधा से भिन्न करती है। स्मारक साहित्य की भी अनेक विशेषताएँ हैं; जो उसे गद्य साहित्य की अन्य विधाओं से अलग करने में सहायक सिद्ध होती हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. स्मृतिआधारित गद्यात्मक अभिव्यक्ति।
2. कल्पनातत्त्व का अभाव।
3. चित्रात्मकता तथा वर्णनात्मकता।
4. आत्माभिव्यक्ति की छटपटाहट।
5. कथातत्त्व की अनिवार्यता।
6. मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मकता।
7. यथार्थ के प्रति लेखक की नवीन दृष्टि।
8. यथार्थ एवं प्रामाणिकता का संयम-अनुशासन।
9. अनुभूतियों के चित्रण में व्यक्तिनिष्ठता।
10. स्वभुक्त अतीत एवं वर्तमान का यथार्थ चित्रण।
11. सद्यस्फुरित भावों एवं स्मृतियों पर आधारित अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति।

8.4 विविध विधाओं का विश्लेषण

8.4.1 संस्मरण

हिन्दी साहित्य में संस्मरण विधा का प्रादुर्भाव बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से माना जाता है। संस्मरण, स्मारक साहित्य की केन्द्रीय एवं आत्मनिष्ठ विधा है; क्योंकि यह एक आत्मनिष्ठ विधा है, अतः इसमें लेखक ने जो कुछ देखा-सुना तथा अनुभव किया होता है, उसके आधार पर वह किसी व्यक्ति, घटना, वस्तु अथवा, स्थिति में से किसी को भी अपना लेखन-विषय बनाकर, उसके प्रति अपनी संवेदनात्मक अनुभूतियों को प्रस्तुत करता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है- जब कोई साहित्यकार अपने संपर्क में आने वाले किसी व्यक्ति, जीवन की अनुभूति, घटना विशेष, अथवा मनोरम दृश्य आदि का स्मृति के आधार पर साहित्यिक रूप में वर्णन करता है, उसे संस्मरण कहते हैं। संस्मरण के माध्यम से जहाँ एक ओर पाठक को आनन्द की अनुभूति होती है; वहीं दूसरी ओर सहज ही उसे ऐतिहासिक जानकारी भी प्राप्त हो जाती है। संस्मरण के मुख्यतः दो रूप दिखाई देते हैं-

1. आत्मपरक (रेमिनिसेन्सेज़)
2. वस्तुपरक या जीवनापरक (मैमोयर्स)।

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने लिखा है- “भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट बनाकर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त करता है, तब उसे संस्मरण कहते हैं।” संस्मरण के स्वरूप के विषय में महादेवी वर्मा ने कहा है- “संस्मरण में हम अपनी स्थिति के आधारों पर समय की धूल पौछ कर उन्हें अपने मनोजगत के निमृत् कक्ष में बैठकर उनके साथ जीवित रहते हैं और अपने आत्मीय सम्बन्धों को पुनः जीवित करते हैं। इस स्मृति मिलन में मानो हमारा मन बार-बार दोहराता है, हमें आज भी तुम्हारा अनुभव है।” उपर्युक्त कथन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संस्मरण में वर्ण्यविषय प्रमुख होता है, जब कोई लेखक किसी मनोरम दृश्य, अविस्मरणीय घटना, या संपर्क में आए हुए व्यक्ति के विषय में अपनी अनुभूतियों एवं संवेदनाओं के संस्पर्ष से जीवन्त चित्र उकेरता है, तो स्वाभाविक रूप से उसके आधार पर लेखक अपने व्यक्तित्व का परिचय भी देता चला जाता है। सामान्यतः संस्मरणकार का मुख्य उद्देश्य पात्र, अथवा घटना आदि विषयों की उन विशेषताओं को अंकित करना होता है, जिसकी छवि हमारे मनोमस्तिष्क पर अमिट छाप अंकित कर सके। संस्मरण की प्रामाणिकता के विषय में उपेन्द्रनाथ अशक जी की मान्यता है- “मैं संस्मरण की खूबी पूर्णतः सच्चाई मानता हूँ। उपन्यास और कहानी में असत्य से काम लिया जा सकता है, कल्पना की लगामें ढीली छोड़ी जा सकती हैं, लेकिन संस्मरण और आत्मकथा की शर्त मेरे निकट, सच्चाई और शत-प्रतिशत सच्चाई है।”

संस्मरण की प्रमुख विशेषताएँ :-

1. वर्ण्य-पात्र, स्थल, घटना, अथवा विषय से, लेखक का निकटस्थ संबंध होता है।

2. लेखक ने वर्ण्य-विषय को प्रत्येक दृष्टिकोण से देखा-परखा तथा समझा होता है।
3. लेखक अपने वर्ण्यविषय के प्रति किसी पूर्वाग्रह से आक्रान्त नहीं होता।
4. वर्ण्य-विषय के यथार्थ का, मार्मिक एवं संतुलित वर्णन मिलता है।
5. संस्मरण का संबंध अतीत की स्मृतियों से होता है।
6. लेखक की अनुभूतियों एवं संवेदनाओं का रोचक एवं कलात्मक शैली में प्रस्तुतिकरण होता है।
7. इसमें लेखक की दृष्टि वर्ण्यपात्र के साथ-साथ, उसके संपर्क में अपने वाले व्यक्तियों एवं घटनाओं पर भी रहती है।
8. इसका वर्ण्यविषय कोई साहित्यकार, दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ और खिलाड़ी ही नहीं, कोई घसियारिन, किसान, मजदूर, अर्थात् दलित सर्वहारा वर्ग से संबंधित व्यक्ति भी हो सकता है।

स्मारक साहित्य की एक विशिष्ट विधा होने के कारण संस्मरण में स्मृति का विशेष महत्त्व होता है; क्योंकि इसका मूलाधार स्मृति है, इसलिए लेखक जितना कुछ याद करता है, उसके साथ लेखक की भावना, संवेदना, रुचि-अरुचि, दृष्टि तथा उसके आदर्श आदि का जुड़ा होना स्वाभाविक है। अनेक उच्च कोटि के लेखकों ने संस्मरण लिखकर इस विधा को समृद्ध एवं सशक्त किया है। संस्मरण लेखकों में बनारसीदास चतुर्वेदी, रघुवीरसिंह, रामवृक्षबेनीपुरी, शिवपूजन सहाय, काका कालेलकर, हरिभाऊ उपाध्याय देवेन्द्र सत्यार्थी दिनकर निराला, महादेवी, मोहन लाल महतोवियोगी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। संस्मरण साहित्य जहाँ महापुरुषों की एवं नूतन आशा-ज्योति भी प्रदान करता है। संस्मरणात्मक साहित्य का विकास प्रगति पर है, और आशा है कि यह विशेष अंग और भी परिपुष्ट, समृद्ध एवं विकासशील होगा।

अभ्यास प्रश्न 1

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये:-

1. संस्मरणकार का मुख्य उद्देश्य आदि विषयों की उन को अंकित करना होता है, जिसकी छवि हमारे अमिट छाप अंकित कर सके।
2. स्मारक साहित्य की एकविधा होने के कारण.....में स्मृति का विशेष महत्त्व होता है।
3. इसका वर्ण्यविषयही नहीं, कोई.....वर्ग से संबंधित व्यक्ति भी हो सकता है।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न:-

1. स्मारक साहित्य किसे कहते हैं ?
2. स्मारक साहित्य की प्रमुख विधाएँ कौन-सी हैं ?
3. स्मारक शब्द का क्या अर्थ है ?

4. संस्मरण के दो रूप कौन-से हैं ?
5. स्मारक साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं ?

8.4.2 रेखाचित्र

‘रेखाचित्र’ का अंग्रेजी पर्याय ‘स्केच’ है, स्केच का अर्थ है- चित्रकला। ‘चित्रकला’ में ‘स्केच’ उन चित्रों को कहा जाता है- जिसमें केवल रेखाओं के सहारे किसी व्यक्ति या वस्तु का चित्रांकन किया जाता है। रेखाचित्र में साहित्यकार अपने मानसपटल पर अंकित स्मृतियों को, शब्दरेखाओं के माध्यम से उकेरता है। अतः कहा जा सकता है कि वस्तुतः रेखाचित्र एक शब्दचित्र है; जिसमें हमें साहित्यिकता और कलात्मकता का अनुपम संयोग देखने को मिलता है।

परिभाषाएँ - डॉ. रामगोपाल रेखाचित्र के विषय में लिखते हैं- “रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप विधान है, जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्मपर्यवेक्षण दृष्टि, अपना निजीपन उँडेलकर प्राण-प्रतिष्ठा कर देती है।”

डॉ. नगेन्द्र ने रेखाचित्र की परिभाषा में लिखा है- “जब चित्रकला का यह शब्द साहित्य में आया तो इसकी परिभाषा भी स्वभावतः इसके साथ आई; अर्थात् रेखाचित्र एक ऐसी रचना के लिए प्रयुक्त होने लगा, जिसमें रेखाएँ हो, पर मूर्त रूप नहीं अर्थात् पूरे उतार-चढ़ाव के साथ। दूसरे शब्दों में, कथानक का उतार-चढ़ाव आदि उसमें हो, तथ्य का उद्घाटन मात्र नहीं।”

डॉ.भागीरथ मिश्र की मान्यता है- “अपने सम्पर्क में आए किसी विलक्षण व्यक्तित्व अथवा संवेदना को जगाने वाली सामान्य विशेषताओं से युक्त, किसी प्रतिनिधि चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरूप को देखी-सुनी या संकलित घटनाओं की पृष्ठभूमि में, इस प्रकार उभारकर रखना कि उसका हमारे हृदय में एक निश्चित प्रभाव अंकित हो जाए, रेखाचित्र या शब्दचित्र कहलाता है।”

हिन्दी साहित्य में रेखाचित्र विधा का आविर्भाव बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में हुआ। प्रभाकर माचवे को हिन्दी का प्रथम रेखाचित्रकार माना जाता है। उनके द्वारा 1933 लिखित ‘मैं समझता हूँ’ लेख को हिन्दी साहित्य का प्रथम रेखाचित्र माना जाता है। रेखाचित्र को ‘शब्दचित्र’ शब्द भी कहा जा सकता है। रेखाचित्र के प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित हैं-

- (क) वास्तविकता।
- (ख) रागात्मकता।
- (ग) सजीवता।
- (घ) चित्रात्मकता।
- (ङ) सांकेतिकता।

संस्मरण तथा रेखाचित्र में अंतर:- संस्मरण, सामान्यतया किसी साधारण या विशिष्ट व्यक्ति से सम्बन्धित, किसी संवेदनशील स्मृति के प्रत्यक्षीकरण को कहा जा सकता है रेखाचित्र भी प्रायः इसी प्रकार के व्यक्ति का वर्णन प्रस्तुत करता है। बाह्य दृष्टि से देखने पर संस्मरण तथा

रेखाचित्र में समानता-सी प्रतीत होती है; किन्तु है नहीं। संरचना की दृष्टि से इन दो विधाओं के अंतर को निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत स्पष्टतः देखा जा सकता है:-

1. रेखाचित्र साधारण से साधारण व्यक्ति का भी हो सकता है, जबकि संस्मरण प्रायः महान विभूतियों से ही सम्बन्ध रखता है।
2. संस्मरण आत्मनिष्ठ रचना है और रेखाचित्र वस्तुनिष्ठ।
3. यद्यपि संस्मरण में भी चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है; किन्तु चित्रात्मकता रेखाचित्र का अनिवार्य तत्त्व है।
4. संस्मरण का संबंध केवल अतीत से ही होता है; जबकि रेखाचित्र का संबंध अतीत एवं वर्तमान दोनों से हो सकता है।
5. संस्मरण में स्मृति आधारित वर्णन होता है, और रेखाचित्र में रचनाकार शब्द-रेखाओं के माध्यम से वर्ण्यपात्र का चित्रण करता है।

महादेवी ने रेखाचित्र के सम्बन्ध में लिखा है कि “इन स्मृति-चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी है। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुँधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं। उसके बाहर तो वे अंधकार के अंश हैं। मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसे परिचय दे पाते हैं, वह बाहर रूपान्विकता से सजाकर निकट लाता है उसी परिचय के लिए मैं अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकट लाता है, उसी परिचय के लिए मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहनाकर दूरी की दृष्टि क्यों करती? परन्तु मेरा निकटवर्ती जनित आत्म-विज्ञान उस राख से अधिक महत्व नहीं रखता, जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही अंगारों को घेरे रहती है। जो इसके पार नहीं देख सकता, वह इन चित्रों के हृदय तक नहीं पहुँच सकता।”

अभ्यास प्रश्न 2

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

1. संस्मरण तथा रेखाचित्र में क्या अन्तर है?
2. रेखाचित्र को अंग्रेजी में क्या कहते हैं?
3. रेखाचित्र में किन विशेषताओं का होना आवश्यक है? अपने शब्दों में लिखिये।

ख) किसका कथन है:-

1. “रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप विधान है, जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्मपर्यवेक्षण दृष्टि, अपना निजीपन उँडेलकर प्राण-प्रतिष्ठा कर देती है।”
2. “इन स्मृति-चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी है। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुँधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं। उसके बाहर तो वे अंधकार के अंश हैं।”

8.4.3 यात्रावृत्त

स्वभावतः मनुष्य एक जिज्ञासु प्राणी है; यही कारण है कि प्रारम्भिक काल से ही वह यात्राएँ करता रहा है। आज भी वह समय-समय पर कभी ज्ञान की प्यास बुझाने के लिए, कभी आनन्द की अनुभूति के लिए, कभी व्यापारिक लाभ प्राप्ति के लिए, तो कभी जीवन के बहुमुखी विकास के लिए विभिन्न स्थानों का भ्रमण एवं यात्राएँ करता रहता है; क्योंकि यायावरी प्रवृत्ति मनुष्य की एक मूल प्रवृत्ति है। अपनी किसी यात्रा का विवरण प्रस्तुत करने मात्र से ही कोई रचना यात्रावृत्त नहीं बन जाती। यात्रावृत्त के लिए लेखन के आवश्यक है कि लेखक संवेदनशील होकर स्वच्छन्दता, निरपेक्षता एवं आत्मीयतापूर्वक अपनी यात्रा करे; क्योंकि इसके अभाव में यदि वह अपनी किसी यात्रा के विषय में लिखेगा, तो वह उत्कृष्ट कोटि का यात्रावृत्तान्त न होकर, केवल यात्राविवरण बनकर रह जाएगा। यात्रावृत्त, स्मारक साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है; इसे लिखते समय लेखक अपनी यात्रा के चित्रों को इस प्रकार उकेरता है कि उस यात्रावृत्तान्त को पढ़ते समय पाठ, रोमांचित एवं उल्लसित-भावमग्न होकर, मानसयात्रा करते हुए स्वयं को लेखक का सहयात्री-सा अनुभव करता है। यात्रावृत्त की यही रोचकता एवं जीवन्तता, उसे सदैव आकर्षक बनाए रखती है।

निःसंदेह प्राकृतिक सौंदर्य अधिकांशतः लोगों को आकृष्ट करता है, तथा विभिन्न देशों की विविधता, सांस्कृतिक विशिष्टता, ऋतु-परिवर्तन और उसके सौंदर्य के वैचित्र्य से मानव मंत्रमुग्ध एवं उल्लसित होता रहा है; किन्तु प्रत्येक व्यक्ति में यह क्षमता नहीं होती कि वह विभिन्न स्थानों का भ्रमण करके, अपने उस उल्लास, सौंदर्यबोध एवं स्मृतियों को लिपिबद्ध कर सके। जब एक लेखक अपनी यात्रा संबंधी अनुभूति की स्मृतियों को शब्दचित्रों के माध्यम से उकेरता है, तब वह रचना यात्रावृत्त कहलाती है। यात्रावृत्तान्त मुख्यतः निम्नलिखित शैलियों में लिखे जाते हैं-

1. भावात्मक शैली
2. विचारात्मक शैली
3. आलंकारिक शैली
4. व्यंग्यात्मक शैली
5. चित्रात्मक शैली

यद्यपि यात्रावृत्तान्त अनेक शैलियों में लिखे जाते हैं, किन्तु लेखक के लिए यह बाध्यता नहीं है कि वह अपनी किसी यात्रा का वृत्तान्त लिखते समय, आदि से अन्त तक उसे एक ही शैली में लिखे; तथापि यह अवश्य कहा जा सकता है कि किसी यात्रासाहित्य लेखन की उत्कृष्टता एवं सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें सामान्यतः यात्रावृत्त की सभी शैलियों का संतुलित प्रयोग किया गया हो। यात्रा साहित्य द्वारा जहाँ एक ओर पाठकों के ज्ञान में अभिवृद्धि होती है, वहीं दूसरी ओर उन्हें कथा साहित्य जैसी आनन्द की अनुभूति भी होती है। यही कारण है कि आज भी साहित्यकारों द्वारा यात्रा साहित्य को लालित्य प्रदान करने के लिए अभिनव प्रयोग किए जा रहे हैं।

भारतेन्दु युग के अनेक लेखकों- बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीमती हरदेवी, दामोदर शास्त्री आदि ने यात्रावृत्त-लेखन की दिशा में योग दिया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'सरयूपार की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा' तथा 'हरिद्वार की यात्रा' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

द्विवेदी युग के यात्रावृत्त-लेखकों- देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, ठाकुर गदाधरसिंह तथा स्वामी सत्यदेव परिव्राजक आदि ने न केवल अपनी पूर्व परम्परा को जीवित बनाए रखा, वरन् भावी विकास की दिशा में भी अविस्मरणीय सहयोग दिया। प्रारम्भिक एवं मध्यकाल में अधिकांश लेखक, सहृदयता एवं भावुकता के सहारे यात्रावृत्त लिखा करते थे; किन्तु भौतिक विकास के साथ हृदयपक्ष गौण और बुद्धिपक्ष प्रबल होता चला गया, परिणामस्वरूप वर्तमान साहित्यकार यात्रावृत्त लिखते समय भाषा की कलात्मकता को अधिक महत्त्व नहीं दे रहे हैं।

आधुनिक युग के यात्रावृत्त लेखकों में जवाहरलाल नेहरू, राहुल सांकृत्यायन, सेठ गोविन्ददास, हीरानन्द सचिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय, मोहन राकेश, राजेन्द्र अवस्थी, निर्मल अवस्थी, रामधारी सिंह 'दिनकर' विष्णुप्रभाकर, नेत्रसिंह रावत आदि के नाम प्रमुख हैं। राहुल सांकृत्यायन एक ऐसे यायावर थे, जिनका अधिकांश जीवन भ्रमण में ही व्यतीत हुआ; यात्रावृत्त लेखन में उनका अनन्यतम स्थान है।

अभ्यास प्रश्न 3

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

1. यात्रावृत्त-लेखन की प्रमुख शैलियाँ कौन-कौन सी हैं?
2. यात्रावृत्त तथा यात्राविवरण में क्या अंतर है?
3. अधिकांश जीवन भ्रमण में व्यतीत करने वाले लेखक का क्या था?

8.4.4 डायरी

'डायरी' अथवा 'दैनन्दिनी' में किसी व्यक्ति के जीवन का व्यक्तिगत विवरण अंकित होता है। जिसमें वह अपने जीवन के किसी विशेष दिन, महीने अथवा साल की किसी विशिष्ट घटना, स्मृति, अथवा उससे संबंधित अनुभूति और विचार को लिखता है। यह सत्य है कि मूलरूप में 'डायरी' व्यक्ति के जीवन का निजी दस्तावेज़ होती है; किन्तु उसमें कुछ ऐसी बातें भी होती हैं जिसे सार्वजनिक करने में लेखक को कोई आपत्ति नहीं होती। यही कारण है कि अधिकांशतः डायरी अपने मूलरूप में प्रकाशित न होकर संपादित रूप में प्रकाशित होती है।

हिन्दी साहित्य में 'डायरी-विधा' के सूत्र हमें आधुनिक युग से पूर्व 1885 में प्रकाशित राधाचरण गोस्वामी की 'दैनन्दिनी' से ही मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। उसके बाद 1909 में सत्यदेव की 'मेरी डायरी'; 1930 में नरेन्द्रदेव शास्त्री वेदतीर्थ की 'जेल डायरी'; 1940 में घनश्यामदास बिड़ला की 'डायरी के कुछ पन्ने'; 1952 में इलाचन्द्र जोशी की 'डायरी के कुछ नीरस पन्ने'; सियारामशरण गुप्त की 'दैनिकी'; 1958 में धीरेन्द्र वर्मा की 'मेरी कॉलेज डायरी' 1972 में पदुमलाल पुन्नलाल बख्शी की 'मेरी डायरी'; 1977 में जयप्रकाशनारायण की 'मेरी जेल डायरी' तथा 1985 में मोहन राकेश कृत 'डायरी साहित्य' आदि का, डायरी लेखन के विकास में महत्त्वपूर्ण योग रहा है।

अपने समय को प्रतिबिम्बित करने के कारण डायरी, लेखक का नितान्त व्यक्तिगत दस्तावेज़ होते हुए भी, उसके समय को प्रतिबिम्बित करने वाला दस्तावेज़ भी बन जाती है। रचनाकारों की दैनन्दिनी से हमारे समक्ष यह सत्य उद्घाटित होता है कि रचनाकार भी आम व्यक्ति

की तरह ही अपने जीवन में व्यथा, असंतोष, अवसाद की स्थितियों से गुजरता है। यही कारण है कि लेखकों की डायरी, हमारे लिए उनके समय, परिवेश, व्यक्तित्व और कृतित्व को जानने-समझने की दृष्टि से नितान्त उपयोगी सिद्ध होती है।

8.4.5 पत्र

सामान्यतः पत्र-व्यवहार जीवन का आवश्यक अंग रहा है; किन्तु कुछ पत्र अपनी कलात्मकता के कारण भाषा के साहित्य की अमूल्य निधि होते हैं। पत्र साहित्य आधुनिक काल की नवोदित विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। पाष्चात्य विचारकों भी साहित्य के क्षेत्र में पत्रों के महत्त्व को स्वीकारा है।

डॉ. जॉनसन ने अपनी शिष्या को लिखा था - “पत्र लेखक के हृदय का दर्पण होते हैं।”

डॉ. रिचर्ड का कथन है - “पत्र, पत्र-लेखक के जीवन का अध्ययन करने में प्रमाणिक आधार होते हैं।”

साहित्य में केवल उन पत्रों को सम्मिलित किया जाता है, जो वैयक्तिक एवं अनौपचारिक होते हैं। जिन पत्रों के माध्यम से हमें किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के व्यक्तित्व और कृतित्व को जानने-समझने में सहायता मिलती है; जिनमें कोई युग विशेष अपनी विविधता में प्रतिबिम्बित होता है, या जिनमें हमें कलात्मकता के दर्शन होते हैं, उन्हीं पत्रों का साहित्यिक महत्त्व होता है। ऐसे पत्र जब पत्र-पत्रिकाओं में, अथवा पुस्तकों में संकलित होकर प्रकाशित होते हैं; तब पत्र साहित्य अस्तित्व में आता है। पत्र अनुसंधान-कार्य में भी बहुत सहायक होते हैं। आधुनिक काल से पूर्व पत्रों को संकलित करके उन्हें प्रकाशित कराने की परम्परा नहीं थी; कदाचित्, यही कारण है कि इस युग से पूर्व हमें पत्र साहित्य के सूत्र अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं।

सर्वप्रथम 1928 में ‘चाँद’ पत्रिका का ‘पत्र विशेषांक’ प्रकाशित हुआ, उसके बाद 1953 में ज्ञानोदय, 1963 में सम्मेलन-पत्रिका, 1982 में सारिका, 1989 में विश्वभारती आदि पत्रिकाओं के भी पत्र विशेषांक प्रकाशित होते रहे हैं। पत्रिकाओं की तरह ही साहित्यकारों के अभिनन्दनग्रंथ, स्मृतिग्रंथ, जीवनी आदि में भी उनके पत्रों को भी प्रकाशित करने की परम्परा बनी हुई है। इसके अतिरिक्त अनेक साहित्यकारों ने आत्मकथा में भी पत्र प्रकाशित किए हैं।

‘पत्रों के आइने में स्वामी दयानन्द सरस्वती’ में संगृहीत पत्रों को पढ़कर हमें, आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती की सुधार-भावना, उनका हिन्दी और संस्कृत-प्रेम, फ़ारसी-विरोध, गोवंश की रक्षा, आर्थिक अनुशासन आदि के विषय में ज्ञात होता है।

पत्रों के विषय में कहा जा सकता है कि वास्तव में पत्र वह माध्यम हैं जिनके द्वारा हमें किसी महापुरुष, साहित्यकार अथवा कलाकार आदि के व्यक्तित्व की विशिष्टता, उनके प्रेरणास्रोत, उनके सरोकार आदि की सहज ही जानकारी प्राप्त हो जाती है।

अभ्यास प्रश्न 4

1. डायरी-विधा के सूत्र हमें किसकी डायरी में मिलते हैं?
2. पहला पत्र-विशेषांक कब और किस पत्रिका में प्रकाशित हुआ?

3. पत्र साहित्य में किन पत्रों को शामिल किया जाता है?

8.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि

- स्मृति आधारित साहित्य की विशेषता स्मृति, सूक्ष्म निरीक्षण एवं आकर्षक शैली होती है।
- संस्मरण किसी व्यक्ति, घटना, स्थिति को आधार बनाकर उसके प्रति संवेदनात्मक अनुभूतियों को प्रस्तुत करता है।
- रेखाचित्र का संबंध चित्रकला से है। रेखाचित्र में लेखक शब्द-चित्र के माध्यम से किसी व्यक्तित्व के व्यक्तित्व को उकेरता है।
- यात्रावृत्त विधा का संबंध लेखक द्वारा अपनी यात्रा को सृजनात्मक धरातल प्रदान करना है।
- डायरी लेखक द्वारा अपनी दिनचर्या को सृजनात्मक रूप में प्रस्तुत करने का एक ढंग है।
- पत्र विधा दो व्यक्तियों के बीच हुए आत्मिक पत्र-संवाद को कहते हैं।

8.6 शब्दावली

- कलात्मकता – किसी कार्य को करने का लालित्य पूर्ण ढंग
- अनौपचारिक – सहज, हृदयगत
- सांकेतिकता – हृदयगत लगाव
- सजीवता – जीवंत

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति:-

1. संस्मरणकार का मुख्य उद्देश्य पात्र, अथवा घटना आदि विषयों की उन विशेषताओं को अंकित करना होता है, जिसकी छवि हमारे मनोमस्तिष्क पर अमिट छाप अंकित कर सके।
2. स्मारक साहित्य की एक विशिष्ट विधा होने के कारण संस्मरण में स्मृति का विशेष महत्त्व होता है।

3. इसका वर्ण्यविषय कोई साहित्यकार, दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ और खिलाड़ी ही नहीं, कोई घसियारिन, किसान, मजदूर, अर्थात् दलित सर्वहारा वर्ग से संबंधित व्यक्ति भी हो सकता है।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

1. संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी, यात्रावृत्त, डायरी, पत्र।
2. स्मृति पर आधारित होने के कारण, तथा वर्णन-पद्धति की कुछ विशिष्टताओं के कारण, गद्य साहित्य की नवीन विधाओं को 'स्मारक साहित्य' कहा जाता है।
3. हिन्दी साहित्य में 'गद्य' का आविर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ।
4. 'स्मारक' का शाब्दिक अर्थ है- स्मृति पर आधारित कोई निर्मित; अर्थात् जब हम किसी व्यक्ति अथवा किसी घटना विशेष की स्मृति में कोई रचनात्मक कार्य करते हैं, उसे स्मारक कहा जाता है।

5. स्मारक साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. स्मृतिआधृत गद्यात्मक अभिव्यक्ति।
2. आत्माभिव्यक्ति की छटपटाहट।
3. कल्पनातत्त्व का अभाव।
4. कथातत्त्व की अनिवार्यता।
5. मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मकता।
6. यथार्थ के प्रति लेखक की नवीन दृष्टि।
7. चित्रात्मकता तथा वर्णनात्मकता।

अभ्यास प्रश्न 2

क) किसका कथन है:-

1. रामगोपाल वर्मा
2. महादेवी वर्मा

1. संस्मरण सामान्यतया किसी साधारण या विशिष्ट व्यक्ति से सम्बन्धित किसी संवेदनशील स्मृति के प्रत्यक्षीकरण को कहा जा सकता है रेखाचित्र भी प्रायः इसी प्रकार के व्यक्ति का वर्णन प्रस्तुत करता है। रेखाचित्र साधारण से साधारण व्यक्ति का भी हो सकता है जबकि संस्मरण प्रायः महान विभूतियों से ही सम्बन्ध रखता है।

2. स्केच,

3. एक तो, रेखाचित्र काल्पनिक न होकर वास्तविक होते हैं; और दूसरे, रेखाचित्र का सृजन किसी वस्तु या व्यक्ति को लेकर होता है। इसके साथ ही साथ शैली की दृष्टि से रेखाचित्र में चित्रात्मकता भावात्मकता सांकेतिकता और प्रभावोत्पादकता आदि विशेषताओं का होना आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. भावात्मक शैली, विचारात्मक शैली, आलंकारिक शैली, व्यंग्यात्मक शैली, चित्रात्मक शैली;

2. यात्रावृत्त के लिए के आवश्यक है कि वह संवेदनशीलता, स्वच्छन्दता, निरपेक्षता एवं आत्मीयतापूर्ण हो; इसके अभाव में यदि लेखक अपनी किसी यात्रा के विषय में लिखेगा, तो वह उत्कृष्ट कोटि का यात्रावृत्तान्त न होकर, केवल यात्राविवरण बनकर रह जाएगा।

3. राहुल सांकृत्यायन।

अभ्यास प्रश्न 4

1. आधुनिक युग से पूर्व 1885 में प्रकाशित राधाचरण गोस्वामी की 'दैनंदिनी' से।
2. 1928 'चाँद' पत्रिका में।
3. साहित्य में केवल उन पत्रों को सम्मिलित किया जाता है, जो वैयक्तिक एवं अनौपचारिक होते हैं।

8.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, धीरेन्द्र, हिंदी साहित्य कोश I, ज्ञानमण्डल प्रकाशन।

8.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तिवारी, रामचन्द्र, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्मारक साहित्य से आप क्या समझते हैं ? विस्तार से स्पष्ट कीजिए तथा संस्मरण और रेखाचित्र में अंतर बताइये करें।

इकाई – 9 यात्रा साहित्य : तात्त्विक विवेचन

इकाई की रूपरेखा

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 पाठ का उद्देश्य
- 9.3 यात्रा साहित्य: परिचय, स्वरूप एवं इतिहास
 - 9.3.1 यात्रा साहित्य : परिचय
 - 9.3.2 यात्रा साहित्य: स्वरूप
 - 9.3.3 यात्रा साहित्य: इतिहास
- 9.4 यात्रा साहित्य की विशेषता
- 9.5 यात्रा साहित्य: भाषाई मूल्यांकन का प्रश्न
- 9.6 यात्रा साहित्य: अन्य गद्य विधाओं से संबंध
- 9.7 मूल्यांकन/सारांश
- 9.8 शब्दावली
- 9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 9.11 उपयोगी/सहायक पाठ सामग्री
- 9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

यात्रा साहित्य विधा भी है और सांस्कृतिक-कर्म भी। कोई सचेतन लेखक जब राज्य देश-विदेश की यात्रा के बहाने वहाँ के परिवेश-दृश्य, रीति-रिवाज, भाषा-संस्कृति इत्यादि का सृजनात्मक भाषा में परिचय प्रस्तुत करता है तो उसे यात्रा-साहित्य की संज्ञा दी जाती है। यात्रा का उद्देश्य प्राथमिक रूप में 'मन-बहलाव' होता है, यानी कोई व्यक्ति जब एक ही जगह-परिवेश में रहते-रहते अपने आपको थका-अपूजनोन्मुख पाता है, तब वह यात्रा करने के लिए प्रेरित होता है। वह यात्रा प्राकृतिक जगह की भी हो सकती है और सामाजिक मेल-मिलाप (रिस्तेदार-सम्बन्धी के यहाँ) के लिए भी और धार्मिक-सांस्कृतिक भी। अतः यात्रा के प्रयोजन अनन्त हैं और उसी के अनुसार उसके स्वरूप में भी भिन्नता मिलने लगती है। पहले की यात्रा का प्रयोजन राज्य-देश-विदेश को जानने की जिज्ञासा भर होती थी। क्योंकि उस समय न तो आजकल की तरह यातायात के साधन उपलब्ध थे और न ही सामाजिक संप्रेषण के साधन इतने उन्नत थे। उस समय की यात्रा का प्रधानतः उद्देश्य कौतूहल-जिज्ञासा के शमन का साहसिक प्रयत्न करना ही हुआ करता था। इसलिए प्राचीन यात्राएँ प्रधानतः कौतूहल-शमन के लिए हुआ करती थीं या अधिक-से-अधिक धार्मिक-परलोक की प्राप्ति का साधन (जैसे मक्का-येरूसलम इत्यादि की यात्रा.....)। उस समय यात्रा साहित्य नहीं था, ऐसा तो हम नहीं कह सकते क्योंकि सिन्दबाद की यात्रा जैसे विवरण-साहित्य हमें मिलता ही है लेकिन जैसा कि हमने कहा उसका उद्देश्य प्राथमिक रूप में साहित्यिक या सांस्कृतिक नहीं था।

साहित्य के रूप में यात्रा-साहित्य का प्रारम्भ आधुनिक काल की देन है। अन्य गद्य विधाओं के जन्म की प्रक्रिया में यात्रा-साहित्य का भी जन्म हुआ है। जैसे-जैसे मानव-सभ्यता का प्रसार होता गया वैसे-वैसे मनुष्य एक-दूसरे को जानने के लिए उत्सुक होता गया। पहले तो यह जानना भौगोलिक रूप में होता रहा फिर क्रमशः ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप में। अतः इस ढंग से यात्रा-साहित्य न केवल साहित्यिक विधा के रूप में हमारे सामने आया अपितु वह सांस्कृतिक-विस्तार का माध्यम भी बनता गया। एम.ए.एच.एल 202 की यह इकाई यात्रा साहित्य पर केंद्रित है। इस इकाई में हम यात्रा साहित्य के इतिहास, स्वरूप को विस्तार से पढ़ेंगे।

9.2 पाठ का उद्देश्य

एम. ए. एच. एल-202 की यह नौवीं इकाई है। इस इकाई में हम यात्रा साहित्य के परिचय, स्वरूप एवं इतिहास से हम परिचित हो सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् हम-

- यात्रा-साहित्य का अभिप्राय समझ सकेंगे।
- यात्रा- साहित्य के इतिहास से परिचित हो सकेंगे।
- यात्रा-साहित्य के भेद एवं स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- आत्मकथा की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेंगे।

- यात्रा-साहित्य की प्रमुख कृतियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- यात्रा-साहित्य के सांस्कृतिक-कर्म से परिचित हो सकेंगे।
- यात्रा-साहित्य की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- यात्रा-साहित्य की भाषा-शब्दावली को समझ सकेंगे।

9.3 यात्रा साहित्य: परिचय, स्वरूप एवं इतिहास

9.3.1 यात्रा साहित्य : परिचय

प्रस्तावना में हमें यात्रा साहित्य का थोड़ा-परिचय प्राप्त किया। हमने पढ़ा कि यात्रा और यात्रा-साहित्य का मूलभूत अंतर क्या है ? या वह कौन से कारण होते हैं, तत्व होते हैं जब कोई यात्रा यात्रा-साहित्य का रूप ले लेती है ? यहाँ हम संक्षेप में इसे समझने का प्रयास करेंगे।

यात्रा-साहित्य का सीधा सम्बन्ध आधुनिकता से हैं। आधुनिकता के आगमन के पश्चात सामाजिक ढाँचे में मूलभूत परिवर्तन हुए, जिसके परिणामस्वरूप प्रमुखतया पुरानी चीजों को नये ढंग से देखने की दृष्टि का विकास हुआ। एक यात्री और यात्रा-लेखक में मूलभूत अंतर यह होता है कि यात्री जहाँ केवल किसी जगह का अपनी सुविधानुसार प्रयोग करता है। वहीं यात्रा-लेखक किसी जगह का उपयोग सांस्कृतिक संदर्भों में स्थिर करता है। अर्थ यह कि यात्रा के साहित्य ठलने की प्रक्रिया में नवीन दृष्टि का महत्वपूर्ण योगदान है। अगर हम यह कहें कि आधुनिक हिंदी साहित्य का आरम्भ ही यात्रा और संस्कृति के घात-प्रतिघात से हुआ तो उसमें कोई अत्युक्ति नहीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा की गई बंगाल, उड़ीसा की यात्रा ने आधुनिक गद्य विधाओं की पृष्ठभूमि निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, यह हम जानते ही हैं। 'सरयू पार की यात्रा' 'मेहदावल की यात्रा' 'लखनऊ की यात्रा' आदि यात्रा वृत्तान्त भारतेन्दु के प्रारंभिक यात्रा-साहित्य के उदाहरण हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने यात्रा को व्यापक सांस्कृतिक प्रयत्न के रूप में देखा, जो नवजागरणवादी चेतना के नाम क्रम में ही है।

9.3.2 यात्रा साहित्य: स्वरूप

आपने यात्रा-साहित्य का परिचयात्मक अध्ययन किया। आपने अध्ययन किया कि यात्रा साहित्य का सम्बन्ध बदलती अभिरूचि के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। अब हम यात्रा साहित्य के प्रकार, यात्रा व यात्रा-साहित्य का भेद व यात्रा से साहित्य में रूपान्तरण की प्रक्रिया यानी यात्रा साहित्य के गठन एवं स्वरूप का अध्ययन करेंगे।

यात्रा के कारण

यात्रा करने के कई कारण होते हैं। यात्रा करने के कारणों को हम एक आरेख के माध्यम से इस प्रकार समझ सकते हैं।

यात्रा के कारण (आरेख)

कौतूहलवश

सामाजिकता

चिकित्सा

प्रकृति-प्रेम

व्यवसाय

धर्म

ज्ञानार्जन

सांस्कृतिक अध्ययन के लिए

यात्रा के लिए एक नहीं, अनेको कारण होते हैं। आरेख में हमने कुछ यात्रा-कारणों का उल्लेख किया है। मनुष्य का स्वभाव प्रारम्भ से ही कौतूहल-शासन के लिए साहसिक यात्राएँ करने का रहा है। फिर चाहे वह विस्तार नापना हो या दूसरे देशों की संस्कृतियों को जानना। ('देख ले उस पार क्या है' जैसी जिज्ञासा वृत्ति मनुष्य के मूल में है।) सामाजिक दिन-चर्या के क्रम में मनुष्य की सर्वाधिक यात्राएँ होती हैं। परस्पर मेल-मिलाप, विवाहोत्सव, मंगल-कार्यक्रम मनुष्यता की वृद्धि के साधन बनते हैं।

- चिकित्सा के लिए मात्रा-प्रसंग तो चिर-परिचित ही हैं हुनमान द्वारा संजीवनी बूटी का उद्योग तो जग-जाहिर है ही।
- मनुष्य की मात्रा का बड़ा कारण प्रकृति-साहचर्य है। मनुष्य पहले जंगल में रहता था, तब वह प्रकृति के ज्यादा नजदीक था। कालान्तर में नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण वह प्रकृति से दूर होता गया। लेकिन मूल रूप में मनुष्य और प्रकृति का आत्मिक रिश्ता बना रहा। यही कारण है कि मनुष्य प्रकृति के पास जाकर अपने को तरोताण-नवीन महसूस करता है। अतः मनुष्य की प्राकृतिक यात्रा अनिवार्य प्रक्रिया हैं।
- प्राचीन समय में एक ही जगह, समाज में मनुष्य की सभी जरूरतें पूरी हो जाती थीं, किन्तु आज का समाज पूरी तरह बदल चुका है। आज का मनुष्य अच्छे व्यवसाय के लिए संपूर्ण पृथ्वी की यात्रा करता है। आवागमन व यातायात के आधुनिक संसाधनों ने मनुष्य को भौतिक उन्नति के लिए प्रेरित किया है।
- धार्मिक कार्य यात्रा प्राचीन काल से ही की जाती रही है। धार्मिक पुरुष के जन्मस्थान-मृत्यु के स्थल हों या मनुष्य धार्मिक केंद्र यात्रा के बड़े कारण रहे हैं। मक्का-मदीना, यंरूसलम, चार धाम यात्रा, चार पीठ, काशी-प्रयागपुरी-हरिद्वार जैसे स्थलों की यात्रा इसी क्रम में हैं।
- प्राचीन युग में ज्ञानार्जन के कुछ प्रसिद्ध केंद्र हुआ करते थे। तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला, काशी जैसे केंद्र ज्ञानार्जन के प्रसिद्ध केंद्र हुआ करते थे। आज कुछ केंद्र नहीं रहे गये, बल्कि उनका स्थान देश-विदेश के कई केंद्रों ने ले लिया है। अतः परिवर्तित रूप में भी ज्ञानार्जन यात्रा का बड़ा कारण है।

- यात्रा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण सांस्कृतिक-यात्रा है। मनुष्य की भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ अपने स्वरूप में एक-दूसरे से भिन्नता भी लिये हुए हैं और एक-दूसरे को प्रभावित भी करती है। मनुष्य सत्य की प्राप्ति में सांस्कृतिक अध्ययन महत्वपूर्ण सिद्ध होता रहा है। इस कारण सांस्कृतिक यात्रा की प्रासंगिकता हमेशा से ही बनी हुई है।

यात्रा के प्रमुख कारणों के अध्ययन के पश्चात् अब हम उन कारणों व प्रक्रिया की खोज करेंगे, जिसके कारण यात्रा, यात्रा-साहित्य में रूपान्तरित हो जाती है जैसा कि हमने पूर्व में ही संकेत किया कि यात्रा से साहित्य बनने की प्रक्रिया 'दृष्टिगत' है। एक ही यात्रा सामान्य मनुष्य के लिए मनबहलाव का साधन मात्र है, वहीं दूसरी ओर साहित्यकार के लिए सांस्कृतिक-विचार का साधन। उदाहरणस्वरूप यदि इसे हम समझना चाहें तो यात्रा के भौगोलिक व ऐतिहासिक संदर्भों में इसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। जैसे कोई लेखक किसी देश के इतिहास का अध्ययन कर रहा हो.....सामान्यतः पहले वह उस देश के ज्ञात इतिहास की उम्र, प्रमुख घटना इत्यादि का अध्ययन करता है, लेकिन इतिहास से साहित्य में रूपान्तरण की प्रक्रिया में लेखक उस देश के इतिहास का प्रभाव वहाँ के मनुष्यों की चिंतनधार से जोड़ देता है। इतिहास से साहित्य बनने की प्रक्रिया में लेखक कल्पनात्मक ढंग से इतिहास की रिक्तता को पूरा करता है। ठीक इसी प्रकार अगर कोई लेखक भौगोलिक संदर्भ में किसी देश का अध्ययन करता है तो वह उस देश का भौगोलिक विस्तार, घन्त्व, रहन-सहन, वेश-भूषा इत्यादि का अध्ययन करता है, लेकिन जब कोई लेखक कल्पनात्मक ढंग से भौगोलिक संदर्भों का प्रयोग उस देश के मनुष्यों की चेतना पर पड़े असर के रूप में व्याख्यायित करता है तब वह साहित्य बन जाता है।

यात्रा-साहित्य (आरेख-2)

परिचयात्मक

कल्पनात्मक

तथ्यात्मक

तुलनात्मक

सांस्कृतिक

विश्लेषणात्मक

9.3.3 यात्रा-साहित्य: इतिहास

पूर्व में आपने अध्ययन किया कि यात्रा मनुष्य की कौतूहल-वृत्ति से जुड़ा हुआ तत्व है। मनुष्य की यायवरी वृत्ति, अनुसंधान, साहस का संबंध यात्रा से जुड़ा हुआ है। सभ्यता के विकास क्रम में हम देखते हैं कि यात्राओं ने महत्वपूर्ण निभाई है। प्रस्तावना में आपने पढ़ा कि अपने यात्रा-विवरणों को संजोने का प्रयास भी कम नहीं हुआ यात्रा साहित्य या कहें कि यात्रा-वृत्तान्त के पीछे मूल मनोवृत्ति अपने अनुभव को दूसरे से साँझा करने की मनोवृत्ति है। मनुष्य अपने अनुभवों का लाभ दूसरों को देना चाहता है, जिससे दूसरे मनुष्य व समाज उसका लाभ उठा सकें। इस तरह देखें तो यह विधा अनुभव-साँझा करने की प्रक्रिया से जुड़ी हुई है। इस

प्रकार यात्रा साहित्य का इतिहास पुराना है, लेकिन सृजनात्मक रूप में, कल्पनात्मक साहित्य के रूप मेंसांस्कृतिक पाठ के रूप में आलोचनात्मक विधा के रूप में इसका इतिहास आधुनिक काल से प्रारम्भ होता है। हिंदी साहित्य के संदर्भ में तो यात्रा साहित्य या यात्रा का युगान्तकारी महत्व है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की उड़ीसा, बंगाल की यात्रा ने खुद उनके व्यक्तित्व को बदलने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई थी उस यात्रा से पूर्व उनका व्यक्तित्व राजभक्ति का हुआ करता था। भारतेन्दु की सभ्यता की मात्रा.....बंगाल की यात्रा जैसे यात्रा वृत्तों ने बंगाल के नवजागरण से हिंदी क्षेत्र को परिचित कराया। उस यात्रा के प्रभावस्वरूप आधुनिक हिंदी गद्य विधाओं व नवजागरणकालीन चेतना का प्रसार हिंदी साहित्य में हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के यात्रा-वृत्तान्त के अतिरिक्त उस युग के अन्य यात्रा-वृत्त हैं-

देवीप्रसाद खत्री का 'रामेश्वर यात्रा' और बद्री का आश्रम यात्रा पं० दामोदर शास्त्री का मेरी पूर्व दिग्यात्रा। भारतेन्दु युग के बाद के यात्रा वृत्तान्तों में प्रसिद्ध हैं- शिवप्रसाद गुप्त का 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' (1914), स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का 'मेरी कैलाश यात्रा (915) और 'मेरी जर्मन यात्रा' (1926), कन्हैयालाल मिश्र 'हमारी जापान यात्रा' (1931) और पंडित रामनारायण मिश्र का 'यूरोप यात्रा में छः मास' (1932), कौतूहल वृत्ति से आगे जाकर यात्रा वृत्तान्तों ने सांस्कृतिक रूप ग्रहण कर लिया है। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों व चेतना के विकास में भी इस प्रकार के यात्रा-वृत्तान्तों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

हिंदी यात्रा साहित्य के विकास में सबसे बड़ा योगदान राहुल सांकृत्यापन का है। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय यात्रा का उपयोग आपने सांस्कृतिक कोड पढ़ने में किया है राहुल जी के प्रमुख यात्रा संस्मरणों में है- मेरी तिब्बत यात्रा, मेरी लद्दाख यात्रा, किन्नर देश में, रूस में 25 मास, मेरी जापान यात्राआदि।

राहुल जी के पूर्व के यात्रा वृत्तान्त अधिकतर धार्मिक-कौतूहल जैसे तत्वों से ज्यादा आबद्ध हुआ करते थे, राहुल जी ने पहली बार इस विधा को अंतर्राष्ट्रीय-सांस्कृतिक रूप दिया। राहुल जी के बाद के प्रमुख यात्रा-संस्मरणों में रामवृक्ष बेनीपुरी का - पैरों में पंख बांधकर, उड़ते-उड़ते चलो, प्रसिद्ध लेखक यशपाल का लोहे की दीवार के दोनों ओर, अज्ञेय का , अरे यायावर रहेगा याद, एक बूँद सहसा उछली, भगवतशरण उपाध्याय का कलकत्ता से पैकिंग, सागर की लहरों पर, दिनकर का देश-विदेश, प्रभाकर माचवे का गौरी नजरोँ में हम, मोहन राकेश का 'आखिरी चट्टान तक, ब्रजकिशोर नारायण का नंदन से लंदन, प्रभाकर द्विवेदी का 'पार उतरी कहीं जड़हैं', डॉ० रघुवंश का 'हरि घाटी' तथा धर्मवीर भारती कृत 'यादें यूरोप की' हिंदी के चर्चित यात्रा साहित्य है।

.....

9.4 यात्रा साहित्य की विशेषता

अपने यात्रा-साहित्य के प्रकार व इतिहास का अध्ययन कर लिया है। अब हम यात्रा साहित्य की मूल विशेषता का अध्ययन करेंगे।

- देश-काल की जानकारी:- यात्रा साहित्य की मूलभूत विशेषता देश-काल की जानकारी उपलब्ध कराने वाले साहित्य से है। देश-काल का वर्णन करना और पाठकों को उससे परिचित कराना यात्रा साहित्य की प्रमुख विशेषता है। यात्रा साहित्य, किसी देश-काल के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, पर्व-त्यौहार, भाषा-बोली, खेल-कूद, दीनचर्या, साहित्य व विभिन्न सांस्कृतिक कर्म, प्रकृति व परिवेश इत्यादि का सृजनात्मक ढंग से विवरण प्रदान करना यात्रा साहित्य की प्रमुख विशेषता है। देश-काल का विवरण तो इतिहास ग्रन्थ में भी मिल सकता है, लेकिन उससे साहित्य के देश-काल के विवरण-चित्रण में अंतर है। इतिहास का विवरण शुष्क है जबकि साहित्य का यात्रा वर्णन सरस व मनोरंजक होता है।
- तथ्यों और कल्पना का सम्मिश्रण:- यात्रा साहित्य तथ्यों में सृजन की खोज करने वाली विधा है। विवरण को साहित्यिक रूप प्रदान करने की दृष्टि से यात्रा साहित्य, साहित्य की किसी भी अन्य विधा से ज्यादा महत्वपूर्ण है। तथ्यों को कल्पना के रंग से रंगकर यात्रा साहित्य की पृष्ठभूमि निर्मित होती है। यात्रा में कल्पना के प्रयोग को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि वह यथार्थ का विस्तार करता है। दिख रहे परिवेश को सृजनात्मक बनाता है।
- आत्मनिष्ठता व वस्तुनिष्ठता:- यात्रा साहित्य में आत्मनिष्ठता एवं वस्तुनिष्ठता दोनों का गुण एक साथ पाया जाता है। हालांकि प्रधान स्वरूप उसका आत्मनिष्ठ ही होता है। यात्रा साहित्य में चूँकि व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों का वर्णन करना लेखक का प्रधान उद्देश्य होता है, इसलिए उसका स्वरूप प्रायः आत्मनिष्ठता लिये ही होता है। यात्रा साहित्य एक तरह से प्रभाववादी रचना भी है, कम-से-कम लेखक की रचना का प्रस्थान तो है हीफिर भी लेखक रचना में वस्तुनिष्ठ तत्वों का यथासंभव प्रयोग करता ही है। देश-काल-परिवेश को प्रस्तुत करने में लेखक उन तथ्यों को

वस्तुनिष्ठ ढंग से ही हमारे सामने रखता हैहाँ उनकी व्याख्या वह आत्मनिष्ठ ढंग से अवश्य करता है।

- स्थानीयता और सार्वकालिकता का समन्वय:- यात्रा साहित्य में स्थानीयता एवं सार्वकालिकता के प्रश्न से भी सृजनात्मक लेखक टकराता है। यात्रा साहित्य अपने गठन में स्थानीयता या कहें कि आँचलित तत्वों से आबद्ध होता ही है, क्योंकि रचनाकार किसी-न-किसी देश के संदर्भ में ही अपनी बात रखता है.....। लेकिन यात्रा साहित्य का प्रधान उद्देश्य उस खास देश-काल को उसके रीति-रिवाजों, रहन-सहन, परम्परा, धर्म-संस्कृति, विचार-लोकाचार के साथ प्रस्तुत कर भी उसको सार्वकालिक संदर्भ में ही प्रस्तुत करना होता है। किसी खास देश-काल के संदर्भ का प्रभाव अन्य स्थान पर, अन्य संस्कृति पर कैसे पड़ता है ? इस तथ्य को दिखाना ही यात्रा साहित्य का प्रधान उद्देश्य होता है।

9.5 यात्रा साहित्य: भाषाई मूल्यांकन का प्रश्न

यात्रा साहित्य में भाषा का प्रश्न महत्वपूर्ण है। अन्य गद्य विधाओं में यात्रा साहित्य की भाषा सर्वाधिक कल्पनात्मक होती है। अपने यात्रा को सृजनात्मक कैसे बनाये ? यह प्रश्न यात्राकार के सामने हमेशा उपस्थित रहता है। प्रायः मनुष्य जीवन-जगत के कार्य-व्यापार में उपयोगी जीवन की तलाश ही करता रहता है। हर मनुष्य अपने जीवन में भिन्न-भिन्न कारणों से यात्रा करता रहता है.....कुछ मनुष्य जब उसे सृजनात्मक रूप प्रदान कर देते हैं तब वह साहित्य के अंतर्गत आ जाता है। सामान्य यात्रा को यात्रा साहित्य बनाने की प्रक्रिया में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। भाषा जब काल्पनिक हो जाती है, भाषा जब लालिव्यपूर्ण हो जाती है.....तब ही यात्रा साहित्य के लेखन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो पाती है।

9.6 यात्रा साहित्य: अन्य गद्य विधाओं से सम्बन्ध

अन्य गद्य विधा की महत्वपूर्ण विधा होने के कारण यात्रा साहित्य और अन्य गद्य विधाओं से निकट का सम्बन्ध रहा है। यात्रा साहित्य का सम्बन्ध साहित्य की अन्य गद्य विधाओं से होने के कारण कहीं तो यह विधा दूसरी विधा को प्रभावित करती है तो दूसरे खुद प्रभाव भी ग्रहण करती हैं। आइए संक्षेप में यात्रा साहित्य व अन्य गद्य विधाओं के संबंध को देखने का प्रयास करें।

यात्रा साहित्य का संस्मरण:-

यात्रा साहित्य व संस्मरण दोनों गद्य विधाओं का संबंध स्मृति व पुनर्स्मृति से है। दोनों विधाओं में लेखक अतीत की घटनाओं को पुनर्स्मृति के माध्यम से रचता है.....। यात्रा साहित्य में भविष्य न के बराबर है, ठीक उसी प्रकार जैसे संस्मरण में

यात्रा साहित्य व उपन्यास:- साहित्य की सारी विधाएँ कल्पनात्मक तत्वों से आबद्ध होती ही है.....अतः उनमें परस्पर एकषूतता दिखती ही रहती है। जहाँ व्यक्तिगत जीवन एवं समाज-संस्कृति को उर्ववधर्मी चेतना के तहत देखने का कथात्मक प्रयास किया जाता है, वहाँ साहित्य

व्यापक संदर्भ ग्रहण कर लेता है। इस दृष्टि से यात्रा साहित्य, उपन्यास जैसा व्यापक ग्रहण कर लेता है।

यात्रा साहित्य व डायरी:- यात्रा वृत्तान्त व डायरी का निकट का सम्बन्ध होता है। प्रायः यात्रा विवरण दैनंदिनी, दैनिक क्रिया-व्यापार के विवरण के माध्यम से विकसित होता है.....यात्रा लेखक अपने प्रतिदिन के विवरण को डायरी में लिखता चलता है, जिसका आगे चलकर विकास यात्रा साहित्य के रूप में लेखक करता है। इस प्रकार देखें तो डायरी का यायावरी रूप ही यात्रा साहित्य है।

9.7 सारांश

एम.ए.एच.एल- 202 के यात्रा साहित्य पर केंद्रित इस इकाई का आपने अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि-

- लेखक जब राज्य, देश-विदेश की यात्रा के बहाने वहाँ के परिवेश-दृश्य, रीति-रिवाज, भाषा-संस्कृति इत्यादि का सृजनात्मक भाषा में परिचय प्रस्तुत करता है तो उसे यात्रा साहित्य की संज्ञा दी जाती है।
- पूर्व यात्राएँ प्रायः मनुष्य की कौतूहल-वृत्ति एवं धार्मिक उद्देश्य से संचालित होती थीं किन्तु आधुनिक साहित्य की यात्रा का मूल प्रतिपाद्य सांस्कृतिक पाठ का निर्माण करना है।
- यात्रा में लेखक जब आधुनिक भावबोध को जोड़कर उसे लिखित रूप दे देता है तो उसे यात्रा साहित्य कहा गया है।
- यात्रा के कई कारण हैं, जैसे- कौतूहल-वृत्ति के शमन, सामाजिकता के निर्वाह, चिकित्सा संदर्भ, प्रकृति-प्रेम के कारण, व्यवसाय के लिए, धार्मिक संतोष, ज्ञानार्जन व सांस्कृतिक अध्ययन के लिए।
- आधुनिक यात्रा साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु के माध्यम से प्रारम्भ होता है.....जिसमें राहुल सांकृत्यायन, अज्ञेय व मोहन राकेश जैसे लेखकों का महत्वपूर्ण योग है।
- देश-काल की जानकारी, तथ्य-कल्पना का सम्मिश्रण, आत्मनिष्ठता व वस्तुनिष्ठता का सन्तुलन व स्थानीयता और सार्वकालिकता के उचित समन्वय से यात्रा साहित्य का गठन होता है।

9.8 शब्दावली

कौतूहल -
साहचर्य -

जिज्ञासा की वृत्ति
साथ व सहअस्तित्व

मनुष्य सत्य - आदि।	मनुष्य होने का उपकरण-सत्य, धर्म, पवित्रता, अहिंसा
रूपान्तरण -	बदलाव, परिवर्तन
रिक्तता -	कमी, खालीपन।
विश्लेषणात्मक -	वर्गीकरण एवं व्याख्या का प्रयास
यायावरी वृत्ति -	घूमने की वृत्ति
सांझा -	बाँटना
लालित्य -	सरस।

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- 1) (क)
- 1- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
- 2- राहुल सांकृत्यायन
- 3- शिवप्रसाद गुप्त
- 4- रामवृक्ष बेनीपुरी
- 5- आखिरी चट्टान तक

- (ख) 1- सत्य
- 2- सत्य
 - 3- सत्य
 - 4- सत्य
 - 5- सत्य

9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिंदी का गद्य साहित्य - तिवारी, रामचन्द्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गद्य साहित्य 2 एवं प्रयोजनमूलक हिंदी- (सं) शुक्ला, शंशाक, कैड़ा, राजेन्द्र, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय।

9.12 निबन्धनात्मक प्रश्न

1. यात्रा साहित्य की प्रवृत्तियाँ निर्धारित कीजिए।
2. यात्रा साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 10 आत्मकथा विधा : तात्विक विवेचन

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 पाठ का उद्देश्य

10.3 आत्मकथा: परिचय एवं इतिहास

10.3.1 आत्मकथा: परिचय

10.3.2 आत्मकथा: इतिहास

10.4 आत्मकथा साहित्य की प्रवृत्तियाँ

10.5 आत्मकथा साहित्य का अन्य गद्य विधाओं से संबंध

10.6 आत्मकथा साहित्य का आलोचनात्मक मूल्यांकन

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.11 सहायक/उपयोगी पाठ सामग्री

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

आत्मकथा गद्य विद्या है। इसे साहित्य की 'अन्य गद्य विधा' भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि प्राचीन परम्परा में गद्य साहित्य के भीतर उपन्यास, कहानी एवं नाटक को ही सम्मिलित किया जाता रहा है। इसी कारण आधुनिक युग से प्रारम्भ हुई साहित्य की गद्य विधाओं को 'अन्य गद्य विद्या' कहकर सम्मिलित कर लिया जाता है। जैसे आत्मकथा का अर्थ है- लेखक द्वारा स्वयं के जीवन-वृत्त का आलोचनात्मक परीक्षण करना। यानी आत्मकथा लेखक द्वारा स्वयं के बारे में सृजनात्मक ढंग से किया गया गद्यात्मक आत्मपरीक्षण ही 'आत्मकथा' है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो रहा है- आत्म (स्व) की कथा कहना। जाहिर है यह आत्मविश्लेषण, समाजगति से निरपेक्ष नहीं है। अर्थ यह कि लेखक का प्रभाव समाज पर और समाज का प्रभाव लेखक पर कहाँ और किस रूप में पड़ा है, इस विधा में इसका परीक्षण किया जाता है।

'आत्मकथा' की बात वर्षों पुरानी है। आत्मवृत्त प्रस्तुत करने की मनोवृत्ति भी मनुष्य की हमेशा से रही है, फिर भी विधा के रूप में आत्मकथा का प्रचलन आधुनिक काल में ही होता है। इसका कारण क्या है? प्राचीन समाज में सामाजिक रूप में 'स्व' की बात करना आत्मकथा समझा जाता रहा है। यानी हम बातचीत के क्रम के रूप में दूसरों की ही बात करेंगे। चाहे वह रामायण की कथा हो या महाभारत की कथा, दूसरों की कथाएँ ही हैं। 'अरनियन नाइट्स' की कथाएँ इस ढंग से अपवाद ही हैं। जिसमें एक व्यक्ति अपनी बात कहते हुए विखता है। 'जातक कथाएँ' भी अपने मूल रूप में आत्मकथात्मक ही हैं। लेकिन कुल मिलाकर सुचितावादी समाज में 'स्व' की बात करना आत्मश्लाघा व आत्मकप्रलाप ही समझा जाता रहा, इसी के कारण आत्मकथा विधा का विस्तार संभव नहीं हो पाया। आधुनिकता के उदय ने इसी कारण आत्मकथा के उदय में महत्पूर्ण भूमिका निभाई।

10.2 पाठ का उद्देश्य

एम. ए. एच. एल-202 की यह दसवीं इकाई है। आत्मकथा पर आधारित इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- आत्मकथा के उदय के कारणों को समझ सकेंगे।
- आधुनिकता और आत्मकथा के अंतर्सम्बन्ध का समझ सकेंगे।
- आत्मकथा के इतिहास से परिचित हो सकेंगे।
- आत्मकथा की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- आत्मकथा साहित्य और अन्य गद्य विधाओं के अंतर्सम्बन्ध की व्याख्या कर सकेंगे।
- प्रमुख आत्मकथात्मक कृति का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- आत्मकथा के बहाने 'स्व' की समझ पैदा कर सकेंगे।

10.3 आत्मकथा: परिचय एवं इतिहास

10.3.1 आत्मकथा: परिचय

आपने आत्मकथा साहित्य की पृष्ठभूमि का संक्षेप में अध्ययन किया आपने आध्ययन किया कि आत्मकथा का संबंध 'आत्मप्रकाशन' की मनोवृत्ति से है। अब हम इस विधा को और अच्छी तरह समझने को प्रयास करेंगे। हमने पढ़ा कि 'आत्मकथा' एक विधा के रूप में आधुनिक काल की देन है। फिर प्रश्न यह कि आत्मकथा साहित्य मध्यकाल तक क्यों नहीं प्रचलित था ? हमें मालूम है कि मध्यकाल तक के साहित्य में लेखक अपने बारे में कम-से-कम लिखता था। बहुत हुआ तो आत्मानुभूति एवं सामाजानुभूति की प्रक्रिया में लेखक पंक्ति में अपना नाम लिख देता है। अपनी जाति, कुल, वंश, परम्परा का हल्का-सा संकेत-भर कर देता था। कबीर, नानक, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई के काव्य में हमें इस प्रकार क अस्फुट संकेत बखूबी देखने को मिलते हैं। लेकिन इस प्रकार के संकेत देना भर आत्मकथा नहीं है। 'आत्मकथा' तो संपूर्ण समाज की गतिशीलता के बीच लेखक द्वारा अपनी भूमिका की तलाश का सृजनात्मक प्रयास है। आत्मकथा के नाम पर मध्यकाल में भी आत्मकथा मिलती है, लेकिन जिस आधुनिक आत्मकथा साहित्य की यहाँ बात की जा रही है, वह तो मध्यकाल में कैसे संभव है ?

आत्मकथा के मूल में आत्मप्रकाशन की भावना मूल रूप में रहती है। हम जानते हैं कि पूँजीवादी विकास क्रम में व्यक्तित्व के प्रकाशन पर बहुत बल दिया जाने लगा था। पूँजीवादी विकास से पूर्व अपने बारे में कुछ बोलना या लिखना 'अहंकार' का ही सूचक समझा जाता था। आधुनिक युग में सामाजिक विकास की गतिशीलता की प्रक्रिया में एक-दूसरे को अपने अनुभवों से लाभ देने की भावना ने आत्मकथा साहित्य के उत्प्रेरक का काम किया। आज समाज में निरपेक्ष कुछ भी नहीं है। व्यक्ति की निजी अनुभूतियाँ सामाजिकता के स्पर्श से सामाजिक संपत्ति बन जाती है। व्यक्ति/लेखक में 'स्व' की अनुभूति जितनी तीव्र होगी, वह आत्मप्रकाशन की ओर उतनी ही तेजी से मुड़ेगा।

10.3.2 आत्मकथा: इतिहास

आत्मकथा का परिचय प्राप्त करने क उपरान्त अब हम आत्मकथा साहित्य के इतिहास का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे। इस इतिहास में हम विधागत रचनाओं का ही अध्ययन करेंगे।

हिंदी साहित्य की पहली आत्मकथा मध्यकाल में लिखी गई थी। षनारसीदास जैन की आत्मकथा 'अर्द्धकथानक' को हिंदी की पहली आत्मकथा होने का गौरव प्राप्त है। 1641 ई. 'अर्द्धकथानक' का प्रकाशन वर्ष है। कृति में लेखक ने स्वयम् ही रचनाकाल का उल्लेख किया है- "सोलहवै अट्टानवें, संवत् अगहन मास। सोमवार तिथि पंचमी, सुबल पक्ष परगासा।" कृति के नामकरण के संबंध में उन्होंने तर्क दिया है कि चूँकि मनुष्य की उम्र 110 वर्ष के लगभग है, इसलिए उसकी आधी (55 वर्ष) उम्र का विवरण कृति में दिया गया है। अतः ग्रन्थ का नाम 'अर्द्धकथानक' सार्थक ही है। अपनी कृति की भाषा को लेखक ने 'मध्यदेश की बोली' कहा है।

रचना की भाषा का मूल ढाँचा ब्रजभाषा का है। जिसमें खड़ी बोली का पुट है। 'अर्द्धकथानक' 675 छंदों में समाप्त हुआ है। ग्रन्थ का प्रधान छन्द चौपाई और दोहा है। आत्मकथा में ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख हुआ है, जो इतिहास की पूर्ति कर पाने में अक्षम हैं। अपने जीवन के उतार-चढ़ाव का वर्णन हो या तत्कालीन व्यापार व्यवस्था या राजतंत्र सभी का आभाष कृति में मिलता है। 'अर्द्धकथानक' के अतिरिक्त मध्यकाल में किसी अन्य प्रामाणिक रचना की सूचना प्राप्त नहीं हुई है। 'अर्द्धकथानक' का उल्लेख यहाँ मात्र परम्परा और स्रोत तलाशने के लिए ही हुआ है। क्योंकि ब्रजभाषा और पद्य में रचित यह कृति आधुनिक आत्मकथा की शर्तों पर खरी नहीं उतरती।

आधुनिक काल में आत्मकथा साहित्य के प्रवर्तन का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कुछ आपबिती, कुछ जगबीती' नाम से आत्मकथा लिखी है। जो अधूरी है। भारतेन्दु की आत्मकथा उनके जीवन के प्रारंभिक वर्षों के चित्रण व सामाजिक अवरूढ़ता के चित्रण के लिए जानी जाती है। स्वामी दयानन्द जी की आत्मकथा का बड़ा हिस्सा उनके भ्रमण व व्याख्यानों से संबंधित हैं। भारतेन्दु युग के पश्चात् 'द्विवेदी युग' में भी आत्मकथा के छिटपुट प्रयास होते रहे। सन् 1901 ई. में अम्बिकादत्त व्यास ने 'निजतृत्तान्त' नामक आत्मकथा लिखी थी। स्वामी श्रद्धानन्द की आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' नाम से प्रकाशित हुई है। आत्मकथा साहित्य का वास्तविक विकास छायावादी साहित्य के उत्थान काल के बाद शुरू होता है। छायावाद ने पहली बार 'स्व' के प्रकटीकरण का मार्ग प्रशस्त किया। प्रेमचन्द्र के संपादकत्व में 'हंस' पत्रिका का सन् 1932 में प्रकाशित 'आत्मकथा विशेषांक' इस ढंग का हिंदी में पहला प्रयास है। इस विशेषांक के माध्यम से आत्मकथा साहित्य की अनिवार्यता के पक्ष या विपक्ष में विचारात्तेजनक बहस हुई। जिससे इस विधा के प्रचार प्रसार एवं प्रतिष्ठान को काफी बल मिला। यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि सन् 1932 तक 'आत्मकथा' विधा को सामाजिक एवं साहित्यिक स्वीकृति हिंदी समाज एवं साहित्य में नहीं मिल पायी थी। आत्मकथा विधान की दृष्टि से श्यामसुन्दर दास की 'मेरी आत्मकहानी' हिंदी की पहल व्यवस्थित आत्मकथा है। यह आत्मकथा सन् 1941 ई. में प्रकाशित हुई थी। इसी क्रम में राजेन्द्र प्रसाद की 'आत्मकथा' भी महत्वपूर्ण रचना रही है। यह आत्मकथा लेखक के व्यक्तिगत जीवन की सूचना के साथ ही साथ सम्पूर्ण समकालीन घटनाओं, व्यक्तियों एवं आन्दोलनों का ही हमारे सामने प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत रही है। इसी परम्परा में कुछ और चर्चित आत्मकथाएँ रही हैं।

अभ्यास प्रश्न 1)

(क) सत्य/असत्य का चयन कीजिए।

1. आत्मकथा पद्य विधा है।
2. आत्मकथा के मूल में आत्मप्रकाशन की प्रवृत्ति रही है।
3. हिंदी साहित्य की पहली आत्मकथा आधुनिक काल में लिखी गई।
4. अर्द्धकथानक के लेखक बनारसी दास जैन हैं।
5. अपनी खबर के लेखक पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हैं।

(ख) टिप्पणी लिखिए।

1. आत्मकथा साहित्य की दो रचनाएँ

1.

2.

2. आत्मकथा साहित्य की विशेषताएँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.4 आत्मकथा: साहित्य की प्रवृत्तियाँ

अपने अध्ययन किया कि आत्मकथा साहित्य, आधुनिक युग की गद्य विधा है। आत्मकथा या अन्य गद्य विधाएँ पद्य में क्यों नहीं लिखी जा सकती ? इसका उत्तर यह दिया गया है कि आधुनिक जीवन बुद्धि एवं विचार प्रधान युग है और इसके लिए गद्य ज्यादा उपयुक्त माध्यम है। पद्य मूलतः बिम्ब के आधार पर निर्मित होते हैं और मूलतः भाव को लेकर चलते हैं, और गद्य चूँकि विचार को लेकर चलते हैं, इसीलिए सारी आधुनिक साहित्यिक विधाएँ गद्य में ही निर्मित हुई हैं। प्रश्न उठता है कि आत्मकथा साहित्य का प्रारम्भ किन परिस्थितियों में हुआ ? आपने आत्मकथा साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते हुए देखा कि मध्यकाल तक आत्मकथा उस रूप में नहीं लिखी जाती थी जिस रूप यह आज लिखी जाती है। मध्यकालीन कवि कभी-कभार एक-दो पंक्तियों में अपने जीवन संबंधी विवरण दे दिया करते थे, किन्तु यह आत्मकथा नहीं है।

आइए हम आत्मकथा साहित्य की मूल प्रवृत्ति से परिचित हों। 'आत्मकथा' को शब्दों से मिलकर बना है। आत्म \$ कथा, यानी लेखक द्वारा खुद की लिखी गई जीवनी। जिस विधा में लेखक अपने प्रारम्भिक जीवन से लेकर संपूर्ण जिये गये जीवन का सृजनात्मक ढंग से रेखांकन करता है, उसे हम आत्मकथा कह सकते हैं। आत्मकथा के लिए यह शर्त नहीं है कि वह संपूर्ण जीवन का रेखांकन प्रस्तुत करे। हो सकता है कि कोई लेखक अपने जीवन के किसी एक समय को ही रेखांकित करे। जैसे उग्र की आत्मकथा में उनके जीवन के प्रारम्भिक 21 वर्ष ही सम्मिलित किए गये हैं। इसीलिए ज्यादा अच्छा यह होता है कि लेखक जीवन के लम्बे हिस्से को अपनी लेखनी का विषय बनाये। आत्मकथा के लिए कहा गया है कि इसमें लेखक द्वारा अपनी खबर लेना और अपनी खबर पाठकों को देना ये दोनों प्रक्रियाएँ शामिल हैं। आत्मकथा में

लेखक सबसे पहले तो आत्मन्वेषण करता है। इस प्रक्रिया में सामाजिक अन्वेषण एवं सत्यान्वेषण की प्रक्रिया भी साथ चलती रहती है। इसीलिए आत्मकथा का एक बड़ा गुण प्रामाणिकता मानी जाती है। अपनी पुस्तक में लेखक जिन आँकड़ों, तथ्यों को प्रस्तुत कर रहा है, वे सत्य होने चाहिए। चूंकि लेखक के जीवन में घटित घटनाओं का साक्षी स्वयं लेखक होता है, इसीलिए सत्य का एकमात्र प्रामाणिक स्रोत भी स्वयं लेखक ही होता है। इसीलिए आत्मकथा में प्रामाणिकता का होना इसकी बड़ी शर्त मानी गई है। आत्मकथा में जीवन की प्रामाणिक एवं तथ्यपटक घटनाओं की अपेक्षा होती है इसीलिए इसमें कल्पना एवं कृत्रिमता के लिए कोई स्थान नहीं होता। आत्मकथा में अतीत की घटनाएँ ही केंद्र में रहती हैं, इसलिए इसमें कल्पना के लिए स्पेस बहुत कम होता है।

10.5 आत्मकथा: साहित्य का अन्य गद्य विधाओं से संबंध

साहित्य की प्रत्येक विधा अन्य विधाओं से किसी-न-किसी रूप में जुड़ी हुई है। इस ढंग से आत्मकथा विधा अन्य गद्य विधाओं से जुड़ी हुई है। आइए हम आत्मकथा और दूसरी विधाओं के अंतर्सम्बन्ध को समझाने का प्रयास करें।

आत्मकथा और जीवनी-

आत्मकथा और जीवनी के सर्वाधिक निकट की विधा है। आत्मकथा और जीवनी दोनों के केंद्र में जीवन-वृत्त होते हैं। आत्मकथा के केंद्र में लेखक की स्वयं की जीवनी होती है तो जीवनी के केंद्र में दूसरे की जीवनी। सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं को आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखने की पद्धति दोनों विधाओं में मिलती है। दोनों विधाओं में वास्तविक जगत के पात्र होते हैं, इस दृष्टि से आत्मकथा और जीवनी सर्वाधिक निकट की विधाएँ हैं।

आत्मकथा और उपन्यास

आत्मकथा और उपन्यास का सम्बन्ध इस दृष्टि से है कि दोनों में जीवन को व्यापक संदर्भों में देखने का प्रयास किया जाता है। आत्मकथा की तरह की उपन्यास में भी एक कथा संघटना और उसका विकास-क्रम देखने को मिलता है। दोनों में मूल अंतर यह भी है कि आत्मकथा में वास्तविक जगत के पात्र होते हैं, जबकि उपन्यास में कल्पित घटनाएँ व पात्र होते हैं, हाँलाकि उनका संबंध भी जीवन जगत से होता है।

आत्मकथा-डायरी

आत्मकथा, डायरी विधा से इस प्रकार संबंधित है कि दोनों जीवन-जगत की घटनाओं को कालक्रमिक संदर्भों में प्रस्तुत करते हैं। आत्मकथा लेखक जब अपने जीवन वृत्त का लेखन करता है तो वह घटनाओं को एक विशेष घटना क्रम में ही सुनियोजित करता है.....यानि पूर्व की घटनाएँ पूर्व में और उत्तरार्द्ध की घटनाएँ बाद में ही रखता है। ठीक इसी प्रकार डायरी लेखन में भी अनिवार्य रूप से पाई जाती है।

आत्मकथा-संस्मरण

आत्मकथा और संस्मरण दोनों स्मृति आधारित विधाएँ हैं। आत्मकथा अपने जीवन की घटनाओं, उसके जीवन में आये व्यक्तित्वों को अपनी स्मृति के सहारे पुनर्रचित करता है। संस्मरण में तो पूरी कथानक ही स्मृति के सहारे चलता है, इसलिए उसमें ज्यादा सूक्ष्मता आ जाती है।

10.6 आत्मकथा: साहित्य का आलोचनात्मक मूल्यांकन

आत्मकथा विधा का संबंध व्यक्ति और समाज के अंतर्सम्बन्ध और उसकी प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। आत्मकथा का लेखन तब होता है जब किसी व्यक्ति, लेखक को लगता है कि उसकी भूमिका, व्यक्तित्व के सही रूप का मूल्यांकन होना अभी बाकी है दूसरी वजह यह भी होती है कि लेखक को लगता है कि उसकी आत्मकथा के बहाने सामाजिक संघर्ष की गति को बल प्राप्त होगा। व्यक्ति और समाज का संबंध द्वन्द्वात्मक गति से आगे बढ़ता रहता है। व्यक्ति कभी समाज से टकराता है तो समाज कभी व्यक्ति को अनुशासित करता है। इस प्रकार सामाजिक अनुशासन एवं व्यक्तिगत सृजनाकांक्षा की टकराहट से आत्मकथा विधा अस्तित्व में आती है। इस विधा के संदर्भ में यह प्रश्न हमेशा से रहा है कि व्यक्तिगत संघर्ष, सामाजिक गति में सहायक हुआ है या नहीं ? कई बार ऐसा होता है कि आत्मप्रकाशन की तीव्रता में व्यक्ति सामाजिक गति से इतर अपनी सत्ता के स्थापन का प्रयास करता दिखता है।

आत्मकथा के संदर्भ में दूसरा प्रश्न यह है कि वस्तुनिष्ठता और आत्मनिष्ठता का सही सन्तुलन क्या संभव है ? और यदि संभव है तो उसका सन्तुलन कैसे स्थापित होता है ? आत्मकथा चूँकि साहित्य की विधा है और लेखक द्वारा स्वयं के जीवन का परीक्षण है, इस दृष्टि से उसमें आत्मनिष्ठता के तत्व के प्रभावी होने की संभावना हमेशा वर्तमान होती है। लेखक से यह आशा की जाती है कि वह अपने जीवन व समाज को वस्तुनिष्ठ ढंग से देखे। लेकिन क्या यह संभव है ? विज्ञान की तरह की वस्तुनिष्ठता क्या एक साहित्यिक विधा में संभव है ? इस दृष्टि से आत्मकथा लेखक के मन में यह द्वन्द्व हमेशा रहता है कि वह अपनी रचना को आत्मनिष्ठता की अति से कैसे बचाये। आत्मकथा वस्तुतः आत्मनिष्ठता से वस्तुनिष्ठता की यात्रा है इसलिए लेखक में आत्मनिष्ठता के तत्व के प्रभावी होने की संभावना हमेशा वर्तमान होती है। इसी से जुड़ा प्रश्न प्रामाणिकता का भी है। आत्मकथा नीरस, बोझिल न हो जाये, इसलिए लेखक घटनाओं में कल्पना के रंग भरता है। यथार्थ का अंश तो आत्मकथा के केंद्र में है लेकिन उसके साथ ही लेखक यथार्थ को सृजनात्मक रूप प्रदान करने के लिए कल्पना के अंश का प्रयोग करता है। आत्मकथा के संदर्भ में प्रामाणिकता का प्रश्न इसलिए भी उठाया जाता है क्योंकि रचना का भोक्ता और दर्शक लेखक स्वयं है, इसलिए उसमें प्रामाणिक घटनाएँ कितनी हैं और कितना कल्पित, यह केवल लेखक ही जानता है। कई बार इसीलिए आत्मकथा साहित्य विवादित बनता रहा है क्योंकि उसमें प्रामाणिकता खंडित होती रही है। लेखक के जीवन में आये व्यक्तियों का मूल्यांकन और भी सर्तकता की माँग करता है।

10.7 सारांश

एम.ए.एच.एल- 202 की आत्मकथा विधा केंद्रित इस इकाई का आपने अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि-

- आत्मकथा साहित्य का संबंध गद्य के अन्य विधा से संबंधित रहा है। चूँकि गद्य की विधाओं में उपन्यास, कहानी ही माने जाते हैं इस दृष्टि से अन्य गद्य विधाओं में आत्मकथा साहित्य का प्रमुख स्थान है।
- आत्मकथा का संबंध आत्मप्रकाशन की भावना से है। व्यक्ति अपने जीवन संघर्ष के बहाने सामाजिक गति में अपनी भूमिका की तलाश करता है।
- आत्मवृत्त पहले युग की रचनाओं में भी मिल जाते हैं किन्तु एक विधा के रूप में आत्मकथा आधुनिक युग व साहित्य की देन है।
- आत्मकथा लेखन का प्रारंभ भारतेन्दु युग में हुआ, किन्तु छायावादी युग में इस विधा का पर्याप्त विकास हुआ।
- आत्मनिष्ठ रूप होने के बावजूद आत्मकथा लेखक से वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा समाज करता है।

10.8 शब्दावली

- | | |
|-------------------|--------------------------------------------------------------------|
| ● आत्मपरीक्षण - | स्वयं की जाँच करना, मूल्यांकन करना। |
| ● आत्मविश्लेषण - | खुद की प्रवृत्तियों की व्याख्या-वर्गीकरण करना |
| ● आत्मानुभूति - | अपनी अनुभूति की जाँच |
| ● समाज निरपेक्ष - | समाज की गति से इतर |
| ● आत्मन्वेषण - | स्वयं का परीक्षण करना। |
| ● आलोचनात्मकता - | किसी मत, व्यक्तित्व का वस्तुनिष्ठ होकर विश्लेषण करने की प्रवृत्ति। |
| ● वस्तुनिष्ठता - | सन्तुलित ढंग से विश्लेषण करना। |
| ● आत्मनिष्ठता - | स्वयं के प्रति बद्धता का भाव |
| ● द्वन्द्वत्मक - | दो विपरित वस्तुओं में संघर्ष का भाव। |

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1)

(क) 1- असत्य

2- सत्य

3- असत्य

4- सत्य

5- सत्य

(ख) (1)

1- अपनी खबर

2- अर्द्धकथानक

(2) आत्मप्रकाशन, प्रामाणिकता, वस्तुनिष्ठता, सृजनात्मकता

10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गद्य साहित्य- 2 एवं प्रयोजनमूलक हिंदी - (संपादक) शुक्ला, शंशाक, कैड़ा, राजेन्द्र, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

2. साहित्य: विविध विधाएं खंड - 3 इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली,

10.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.12 निबन्धनात्मक प्रश्न

1. आत्मकथा साहित्य का इतिहास प्रस्तुत कीजिए।

2. आत्मकथा साहित्य की प्रवृत्तियाँ निर्धारित कीजिए।